RNI No. MPHIN/2008/25073 डाक प्रेषण : प्रतिमाह की 7 तारीख डाक पंजीयन क्रमांक मालवा डिवीजन/324/2019-2021

प्रेषक : मुकेश वर्मा (प्रधान संपादक)
'समावर्तन' (हिन्दी मासिक)
माधवी, 129, दशहरा मैदान
उज्जैन (म.प्र.) 456 010

पुस्त–प्रेष्य

यहां पते चिपकाएं

स्वामी, प्रकाशक और मुद्रक अजय भट्टाचार्य द्वारा आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन से मुद्रित एवं माधवी 129, दशहरा मैदान, उज्जैन से प्रकाशित। सम्पादक : श्रीराम दवे।

बारह वर्षों से अनवरत प्रकाशित 138 वाँ अंक

ISSN - 2348-8638

समावर्तन®

मासिक पत्रिका

वर्ष 12 ■ अंक 06 ■ पूर्णांक 138 ■ सितम्बर 2019 ■ ₹ 150/–

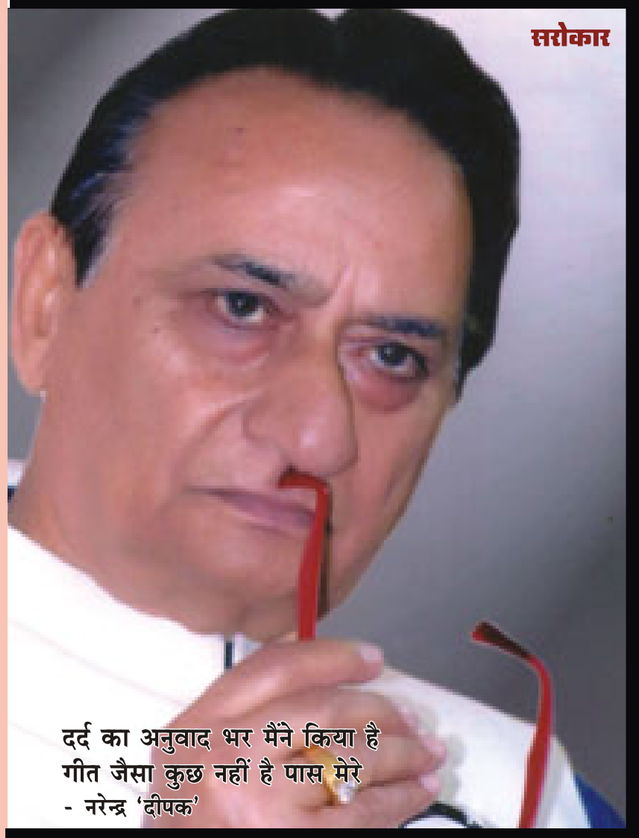

अभिमुख : रमेश दवे
अनन्तिम : मुकेश वर्मा
मेरा नमन : अजय भट्टाचार्य
रेखांकित : अणु शक्ति सिंह की कविताएँ
चयन : निरंजन श्रोत्रिय
कविताएँ : ओम ठाकुर,राजीव 'त्रिगर्ती', अमित कुमार खरे
लघुकथाएँ : संतोष सुपेकर, कमलेश व्यास 'कमल'

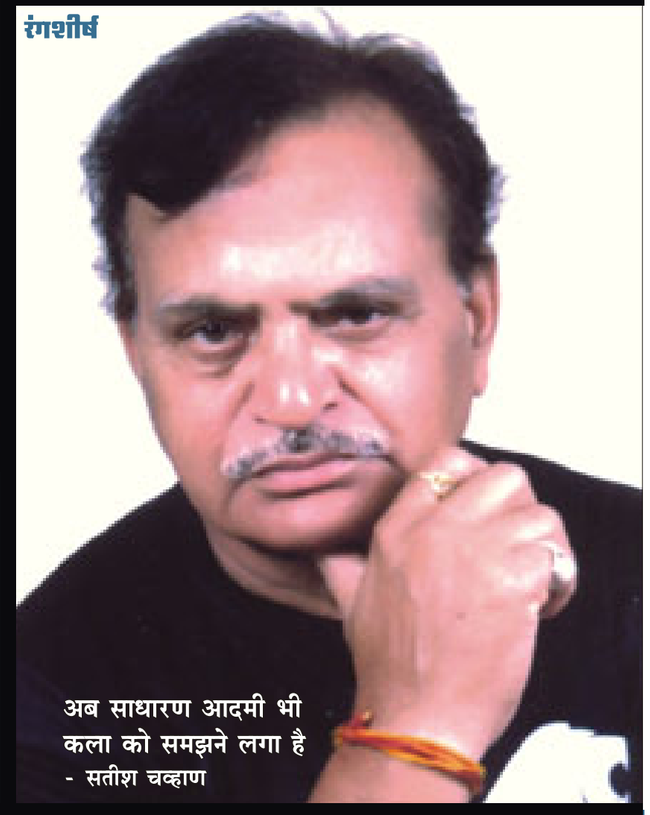

वक्रोक्ति-30
(व्यंग्य केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तम्भ)
इस बार प्रसिद्ध व्यंग्यकार स्व. डॉ.शिव शर्मा को समर्पित
वक्राभिमुख : सूर्यकांत नागर
ज्ञान चतुर्वेदी, अशोक वक्त, कैलाश मण्डलेकर,
रमेशचन्द्र शर्मा, प्रदीप नवीन, पिलकेन्द्र अरोरा,देवेंद्र जोशी
मेरा नज़रिया : हरीश कुमार सिंह

प्रथम पृष्ठ, अध्ययन : आकलन, साहित्यिक हलचल,
समकाल-कथाकाल : अर्पण कुमार की कहानी
कांट्रेक्टर : चयन : मुकेश वर्मा

विशेष आलेख : संतोष चौबे का साहित्य-
कला-चिन्तन और आलोचना-विवेक : धनंजय वर्मा

वर्ष 12 ■ अंक 06 ■ पूर्णांक 138 ■ सितम्बर 2019 ■ रू. 150/-

ISSN - 2348-8638

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नयीदिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त
दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय भोपाल द्वारा कमलेश्वर पुरस्कार वर्ष -2010
महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त

समावर्तन®

मासिक पत्रिका

सम्पादक मण्डल

संस्थापक : सम्पादन समन्वयक
प्रभातकुमार भट्टाचार्य, उज्जैन

अध्यक्ष : सम्पादक मण्डल
रमेश दवे, भोपाल
मो. 94065 23071

निदेशक प्रबन्धन
रमेश सोनी, इन्दौर
मो. 99264 97611

प्रधान सम्पादक
मुकेश वर्मा, भोपाल
मो. 94250 14166

मुख्य सम्पादक
निरंजन श्रोत्रिय, गुना
मो. 98270 07736

सम्पादक
श्रीराम दवे, उज्जैन
मो. 94259 15010

कार्यकारी सम्पादक
हरीशकुमार सिंह, उज्जैन
मो. 94254 81195

प्रबन्ध सम्पादक
सदाशिव कौतुक, इन्दौर
मो. 98930 34149

कला सम्पादक
अक्षय आमेरिया, उज्जैन
फो. 0734 2561120

जनसम्पर्क अधिकारी
प्रकाश बांठिया, उज्जैन
मो.98260 69558

सह सम्पादक
राजीव शुक्ला (संस्कृति), इन्दौर
निवेदिता वर्मा (सरोकार), उज्जैन
राधेश्याम मिश्र (प्रबन्ध), उज्जैन

सहायक सम्पादक
वाणी दवे शर्मा, हरदीप दायले, उज्जैन

कार्यालय सहायक
संजय मालवीय,उज्जैन

सम्पादक मण्डल के सभी पद अवैतनिक है।

सम्पादकीय : प्रकाशकीय कार्यालय
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010
फोन : 0734 2524457
(समय प्रातः 10 से 2 बजे तक)
ईमेल : samavartan@yahoo.com
वेबसाइट : www.samavartan.com

सह संस्थापक : सम्पादन परामर्शी
अभिलाष भट्टाचार्य, मुम्बई

मुख्य संरक्षक
संतोष चौबे, भोपाल

संरक्षकद्वय
ओम अमरनाथ, उज्जैन
राजू पटेल, मुम्बई

परामर्श मण्डल
गिरिराज किशोर (कानपुर), रश्मि वाजपेयी (दिल्ली), नन्दकिशोर नौटियाल (मुम्बई), विश्वनाथ सचदेव (मुम्बई), सादिक (दिल्ली), मंजु तिवारी (भोपाल), उर्मिला शिरीष (भोपाल), महेन्द्र गगन (भोपाल), सत्यमोहन वर्मा (दमोह)

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक
डॉ. अजय भट्टाचार्य, सूरत

समावर्तन का मूल्य
सदस्यता प्रति अंक : 150 रु. मासिक वार्षिक - 1500/-
विदेश के लिए प्रति अंक : 10 $ वार्षिक : 100 $

चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखें तथा चेक अथवा मनिआर्डर निम्नलिखित पते पर भेजें
डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान, उज्जैन (म.प्र.) 456010

वार्षिक सदस्यता हेतु डिजिटल भुगतान
बैंक का नाम - आयडीबीआई
ब्रांच का नाम - फ्रीगंज, उज्जैन
खाता क्रमांक - 0088102000031620
खातेदार का नाम - समावर्तन
आयएफएससी नं. - आय.बी.के.एल 0000088

समावर्तन का संचालक मण्डल
प्रनति भट्टाचार्य - अध्यक्ष, उज्जैन
कृष्णा बैनर्जी - संचालक, मुम्बई
तुहिन भट्टाचार्य - प्रबंध संचालक,सूरत

विशेष सम्पादक- वक्रोक्ति
सूर्यकान्त नागर, इन्दौर मो. 98938 10050

विशेष सम्पादक- नाट्यराग
भारतरत्न भार्गव - नयीदिल्ली, मो.98116 21626

विशेष परामर्शी - घरोंदे
प्रतापसिंह सोढ़ी, इन्दौर, मो.94795 60623

विशेष परामर्शी -लोकराग
शिव चौरसिया, उज्जैन, मो. 97700 78000

निदेशक - समावर्तन संकुल (प्रतिनिधि मण्डल)
प्रकाश रघुवंशी, उज्जैन, मो. 94250 91114

विशेष सम्पादक- साहित्य विचार
शैलेन्द्रकुमार शर्मा, उज्जैन मो. 98260 47765

दिल्ली ब्यूरो चीफ
परवेज़ अहमद
219, समाचार अपार्टमेन्ट मयूर विहार फेज़-1
दिल्ली-110054, मो. 098111 -54371

मुद्रणालय : आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन (म.प्र.)

© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक एवं प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से 'समावर्तन' का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद उज्जैन न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

समावर्तन
सितम्बर -2019

इस अंक में

प्रथम पृष्ठ : सुनो, वनदेवी! : मुरलीधर चाँदनीवाला 05
अभिमुख : भाषा और शिक्षा : पाखण्ड का प्रदर्शन : रमेश दवे 06
मेरा नमन : समावर्तन के ग्यारह वर्ष (पाँच) : अजय भट्टाचार्य 07

रंगशीर्ष

नरेन्द्र दीपक

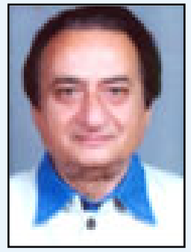

परिचय : नरेन्द्र दीपक : 08
गीत का धर्म है गाया जाना....नरेन्द्र दीपक : 09
गीत, ग़ज़ल, दोहे : नरेन्द्र दीपक : 11
शृंगार और अंगार के कवि नरेन्द्र दीपक : मधु शुक्ला : 13
सुधीजनों की दृष्टि में नरेन्द्र दीपक का कृतित्व : 15
साक्षात्कार : सुश्री निशासिंह की नरेन्द्र दीपक से बातचीत : 16

सरोकर

सतीश चव्हाण

परिचय : सतीश चव्हाण : 51
चित्रकारी के शौक ने मुझसे
कई काम करवाए : सतीश चव्हाण : 52
सतीश चव्हाण के चित्रों पर प्रतिक्रियाएँ : 56
साक्षात्कार : कांतिलाल नागर की
सतीश चव्हाण से बातचीत : 58

रेखांकित : अणु शक्ति सिंह की कविताएँ : चयन : निरंजन श्रोत्रिय : 19
संतोष चौबे का कला चिंतन : धनंजय वर्मा : 23
कविताएँ : ओम ठाकुर, राजीव कुमार 'त्रिगर्ती', अमित कुमार खरे : 32
अध्यन-आकलन : शिक्षा व्यवस्था को आइना दिखाता उपन्यास : लक्ष्मी पाण्डेय : 33

वक्रोक्ति-30
(इस बार स्व. डॉ. शिव शर्मा को समर्पित
समावर्तन के अधबीच व्यंग्य केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तंभ 39-50)

समकालः कथाकालः अर्पण कुमार की कहानी : कांट्रैक्टर : चयन : मुकेश वर्मा : 59
साहित्यिक हलचल : 67, लघुकथाएँ : संतोष सुपेकर, कमलेश व्यास 'कमल' : 69
अनंतिम : मुकेश वर्मा : 70

अक्षर विन्यास : विवेक शर्मा * मुद्रण संशोधक : गरिमा दवे * रेखांकन : संदीप राशिनकर

प्रथम पृष्ठ

सुनो, वनदेवी!

ऋग्वेद के दशम मंडल का 'अरण्यानी सूक्त ' आदिम कविता का अनुपम उदाहरण है। यहाँ कवि जंगल में खड़ा है, और सामने है वनदेवी। वह वनदेवी के प्रति आभार भी व्यक्त करता है, धन्यवाद भी देता है, और उलाहना भी देता है। सूक्त की ऋचाओं में कतिपय देहाती शब्दों के प्रयोग चकित कर देते हैं। चिच्चिक, शकटी इत्यादि। इस कविता में जो ग्रामीण माधुर्य है, नीरवता में डूबी हूई जंगल की साँझ है, वह आस्वाद होने के साथ - साथ नागर सभ्यता के लिये अरण्य के उपकारों को भी रेखांकित करती है।

अरण्यान्यरण्यान्यसौ य प्रेव नश्यसि।
कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दती।।
वृषारवाय वदते यदुपावति चिच्चिकः।
आघाटिभिरिव धावयन्नरण्यानिर्महीयते।।
उत गावइवादन्त्युत वेश्मेव दृश्यते।
उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति।।
गामङ्गैष आ ह्वयति दार्वङ्गैषो अपावधीत्।
वसन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षदिति मन्यते।।
न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति।
स्वादोः फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं नि पद्यते।।
आञ्जनगन्धिं सुरभिं बह्वन्नामकृषीवलाम्।
प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसितषम्।।

ऋग्वेद.अरण्यानी सूक्त, 10,146,1-6

सुनो, वनदेवी !
तुम जंगल में अकेली
कहाँ छिपी हूँई रहती हो ?
अकेले में भय नहीं सताता ?
कभी अपने पास के गाँव का
रास्ता ही पूछ लेती।
सांझ ढले ओझल होती हो,
इतना सोचती हो किसके लिये।।

आवाज गूँजती रहती वृषभ की,
चिच्चिक की चूँ-चूँ से
भरता जाता तुम्हारा घर,
कई बार एक साथ
इतनी झंकार सुनाई पड़तीं,
लगता जैसे कई वीणावादिनियाँ
तुम्हारे आंगन में बैठी
वीणा बजा रही हों एक साथ।।
गायों के झुण्ड देखे हैं मैंने
दूब चरते हुए,
देखी है आते-जाते
लता-गुल्मों से बनी एकाकी कुटिया,
गोधूलि में छकड़ों की चरड़-चूँ से
टूटता सन्नाटा,
और तुम भेजती बस्तियों में
अपना कुशल संदेसा,
तब तुम कितनी मधुर लगती हो।।

गायों को टेरती हूई
चरवाहे की प्रतिध्वनि से
तुम्हारा घर कैसा जी उठता है,
लकड़हारे के कुठार की खट्-खट् से
श्रम का गान गूँजने लगता,
लगता तो यही है शाम के समय
कि तुम बुला रही मुझे, मेरी माँ।।

चोर-लुटेरों को अपने पास
आने भी नहीं देती,
हम बस्ती के लोग जब भी आते
तुम्हारे आँचल से लिपट जाते
और तुम रसीले फलों से
सबका मुँह मीठा कर देती।।

तुम्हारे आजू-बाजू हल जोतता किसान,
शस्य श्यामला हो जाती यह धरती,
तुम सुगंध बिखेरने लग जाती,
सुनो वनदेवी !
तुम कहलाती निर्भीक मृगों की माँ,
माँ ! हमें भी निर्भय बना दे।

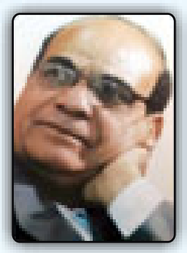

डॉ.मुरलीधर चाँदनीवाला
मधुपर्क, 7, प्रियदर्शिनीनगर, रतलाम

अभिमुख

भाषा और शिक्षा : पाखण्ड का प्रदर्शन

रमेश दवे

सितम्बर का महीना दो प्रकार के औपचारिक पाखण्डों से ग्रस्त है। पाँच सितम्बर को जो शिक्षक दिवस मनाया जाता है, वह प्रजातंत्र का सरकारी प्रचारतंत्र मात्र है। जिस शिक्षक की महिमा का एक दिन के लिए सरकारी-गैर-सरकारी मंचों से बखान होता है, उस शिक्षक के प्रति सच्ची श्रद्धा एवं सम्मान-भाव है ही कहाँ? शासन, समाज, शिक्षा-विभाग, एनजीओ और छात्र-किसी के पास जब शिक्षक केवल एक नौकर, आज्ञाकारी सेवक और नाना प्रकार के अपमानों का टारगेट है, तो शिक्षक की प्रतिष्ठा ही कैसे हुई? डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन तो ऐसे शिक्षक थे जिन्हें इंग्लेण्ड से मदनमोहन मालवीय बनारस विश्व विद्यालय में यह कह कर लाए थे कि भारत में भी अब विश्व विद्यालय है, चलो, अंग्रेजों की नौकरी छोड़ो और अपने देश की ज्ञान-सेवा करो। राधाकृष्णन ऐसे शिक्षक थे कि जब वे सोवियत रूस के राजदूत पद से निवृत्त हुए तो स्टालिन जैसा क्रूर तानाशाह भी उनसे प्रभावित होकर उन्हें विदा देने आया था। एक आदर्श शिक्षक, दार्शनिक, लेखक, विचारक का यह जन्म दिन शिक्षकों को तो समर्पित स्वयं राधाकृष्णन कर गए लेकिन न तो आज के प्राथमिक शिक्षा से उच्च विश्व विद्यालय तक की शिक्षा में वैसा समर्पण है, न ज्ञान और न आचरण। कुलपतियों का पद ज्ञान के बजाय राजनीतिक घुड़दौड़ बन गया है। स्कूलों के शिक्षक, कालेजों और विश्वविद्यालयों के अधिकांश प्राध्यापक अपने कर्त्तव्य के प्रति वफादार और ईमानदार नहीं है। शिक्षा के प्रति वाजिब चिन्ता के बजाए, चेतना के बजाए, उसे अज्ञान, अपराध और अन्याय की चिता पर लेटा दिया गया है। ऐसे में शिक्षक का यह एक दिवसीय गुणगान या कीर्तन किस काम का?

शिक्षा व्यवस्था सर्वाधिक नीति-विरोधी व्यवस्था बनती जा रही है। गांधी से लेकर देश के हर बड़े नेता और शिक्षाविद ने प्रारंभिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को माना, आयोगों ने भी सिफारिश की, मगर न सरकार ने इस नीति का पालन किया, न समाज ने और न शिक्षा-प्रबंधन ने। देश में नकली अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की ऊँची फीस की ऐसी बाढ़ आ गई है कि जिसमें मातृभाषा और हमारी अपनी भाषाओं की पहचान और स्वाभिमान डूब गए। हम अंग्रेजों की गुलामी से तो मुक्त हुए, मगर अंग्रेजी की गुलामी से आज तक मुक्त नहीं हुए।

शिक्षा उत्कृष्टता का कोई ऐसा मानक नहीं रच पाई जिससे देश, समाज, जन और छात्रों के जीवन में कोई ऐसा बड़ा परिवर्तन आता कि वे देश से प्यार करते, जन-जन से प्यार करते, धर्मान्ध और अंधविश्वासी न बनते और हमारे देश की बहुलता-वादी संस्कृति का सम्मान करते। यदि शिक्षण-संस्थाएँ आपराधिक गतिविधियों और परीक्षाओं के भ्रष्टाचारों से ग्रस्त है तो वह राष्ट्रीय चरित्र की शिक्षा कैसे होगी, बल्कि ऐसी शिक्षा और शिक्षण-संस्थाएँ अराजकता, अपराध और अन्याय ही पैदा करेंगी। शिक्षक-दिवस यदि शिक्षक, समाज और सरकार सबके लिए आत्म-मंथन का दिवस बनता है और शिक्षा के प्रति सबकी वफादारी और ईमानदारी बढ़ती है तो यह दिवस सार्थक होगा।

जहाँ तक हिन्दी का प्रश्न है, यह सत्य है कि वह देश के सर्वाधिक लोगों की भाषा है। यह भी सच है कि स्वतंत्रता के बाद हिन्दी का प्रचार-प्रसार व्यापक स्तर पर हुआ है लेकिन यह सब पाखण्ड है। हिन्दी दिवस बैंकों, केन्द्रीय संस्थाओं में सप्ताह, पक्ष या मास के रूप में औपचारिक रूप से मनाया तो जाता है लेकिन इस पाखण्डपूर्ण उत्सव में उत्साह न होकर केवल मंचीय प्रदर्शन मात्र रहता है। बैंकों और केन्द्रीय संस्थाओं के पास हिन्दी के नाम पर कुछ धनराशि रखी जाती है लेकिन दफ्तरों के गलियारों में हिन्दी पर प्रवचन ऐसा होता है मानों हिन्दी एक भिखारी, अनाथ और दुर्बल भाषा हो। भाषा के स्वाभिमान से रहित आयोजन, पोस्टर, पत्र-पत्रिकाएँ और नेताओं, अफसरों, भाषाविदों के भाषण आज तक किसी ऐसे आन्दोलन या अभियान का रूप नहीं ले सके जिससे यह लगता कि हमारी भाषा-निष्ठा सचमुच संवेदनशील है।

हिन्दी को विश्वभाषा बनाने के बजाय शिक्षा की विषयभाषा बनाने, उसे संयुक्त राष्ट्र की भाषा बनाने के बजाय भारतीय जन मानस की संयुक्त भाषा बनाने और हर सरकारी काम कम से कम हिन्दी क्षेत्र में हिन्दी में करने की अनिवार्यता करने के ही अगर निर्णय ले लिए जाएँ और कठोरतापूर्वक यह आदेश प्रसारित कर दिया जाए कि निजी हो, या सरकारी, सभी स्कूलों में प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में होगी, तो इस भाषा को कुछ तो सम्मान मिलेगा। इसी प्रकार माध्यमिक से उच्च शिक्षा तक, तकनीकी और चिकित्सा शिक्षा तक एक पेपर हिन्दी भाषा का अनिवार्य होगा तो भाषा की समझ बढ़ेगी और भाषा रोजगार के नए मार्ग खोलेगी।

शिक्षक और हिन्दी हमारे गर्व हमारे कर्म और हमारे आचरण का जब हिस्सा बनेंगे तो वास्तव में वह दिवस सम्मान का दिवस होगा शिक्षक दिवस पर सभी शिक्षकों को शुभकामनाएँ और हिन्दी दिवस भारत का भाषा गौरव दिवस बने इस भावना से हिन्दी प्रेमियों को बधाई। हिन्दी दिवस और शिक्षक दिवस हमारे त्योहारों की तरह उत्सव दिवस का आनंद बनेंगे तो हिन्दी और शिक्षक दोनों की जन-प्रतिष्ठा होगी।

इस अंक में साहित्यिक पत्रिका 'पहला अंतरा' के सम्पादक लोकप्रिय गीतकार श्री नरेन्द्र दीपक के कृतित्व व्यक्तित्व पर 'सरोकार' केन्द्रित है तो 'रंगशीर्ष' में ख्यात चित्रकार सतीश चव्हाण के कृतित्व पर पठनीय सामग्री दी गई है। टेपा सम्मेलन उज्जैन के संस्थापक स्व.डॉ.शिव शर्मा को श्रद्धांजलि स्वरूप लोकप्रिय स्तम्भ 'वक्रोक्ति' भी इस अंक को समृद्ध कर रहा है। सभी रचनाकारों के प्रति आभार। स

(अध्यक्ष, सम्पादक-मण्डल)
मो.94065-23071

मेरा जमन...

समावर्तन के ग्यारह वर्ष (पाँच)

समावर्तन के संपादक मण्डल की चर्चा अपने उरूज़ पर है। जितना-जितना मैं लिखता हूँ सम्पादक मंडल पर उतना उतना ही कुछ न कुछ छूट गया सा लगता है। ऐसा है अनोखा वैभव सम्पादक मंडल का।

समावर्तन के प्रवेशांक से ही एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यंग्य से जुड़े स्तम्भ **'वक्रोक्ति'** का शुभारंभ हुआ- प्रारंभ में त्रैमासिक के रूप में। इसके **विशेष सम्पादक हैं प्रख्यात बहुआयामी वरिष्ठ साहित्यकार स्वनामधन्य श्री सूर्यकांत नागर।** क्या समां बांधा सूर्यकांत नागरजी ने कि 'वक्रोक्ति केवल एक स्तंभ नहीं बल्कि एक संपूर्ण पत्रिका के स्वरूप में ग्यारह वर्षों से निरन्तर जारी है। **जिस प्रकार समावर्तन में 'एकाग्र' और 'रंगशीर्ष' हैं ठीक** उसी के समान्तर **'वक्रोक्ति'** में 'व्यंग्याग्र' और 'व्यंगशीर्ष' है। इन ग्यारह वर्षों के **तीस** अंकों में 'व्यंग्याग्र' के लिए सूर्यकांतजी ने **तीस** व्यंग्यकार शामिल किये और आश्चर्यजनक चमत्कार के रूप में 'व्यंग्यशीर्ष' के लिए **तीस** कार्टूनिस्ट खोज निकाले। भारत के समस्त प्रथम पंक्ति के कार्टूनिस्ट ने 'वक्रोक्ति' को अद्भुत स्तम्भ मात्र नहीं बल्कि एक पत्रिका के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इतना ही नहीं वक्रोक्ति के हर अंक में व्यंग्य से जुड़ी अन्य रचनाएँ तथा अतिरिक्त कार्टून्स भी निरन्तर छपते रहते हैं। ऐसी अविश्वसनीय चमत्कारी उपलब्धि मात्र एक व्यक्ति के एकल प्रयासों से सम्पन्न हुआ है। **हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं ऐसे वरिष्ठ बहुआयामी साहित्यकार श्री सूर्यकान्त नागर के प्रति। विगत दस वर्षों से वक्रोक्ति के विशेष सहयोगी श्री श्रीराम दवे वक्रोक्ति के हर अंक में 'और अंत में' स्तम्भ के लिए निरन्तर गद्य अथवा पद्य लिखते रहे हैं। चूंकि अब प्रख्यात व्यंग्यकार श्री हरीशकुमार सिंह कार्यकारी संपादक के रूप में समावर्तन के साथ जुड़ गये हैं, इसलिए सम्पादक श्री श्रीराम दवे ने यह स्तम्भ उन्हें सौंप दिया है जिसके लिए वे एक वर्ष से निरन्तर लिख रहे हैं। मेरी नज़रिया।**

श्री हरीशकुमार सिंह का समावर्तन सम्पादक मंडल में शामिल होना समावर्तन की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

हम कई बार लिख चुके हैं और इसे बार-बार दोहराना हमारे लिए फक्र की बात है कि **समावर्तन के सम्पादक श्री श्रीराम दवे समावर्तन के मेरूदण्ड है।** प्रतिदिन तीन-चार घण्टे के लिए समावर्तन कार्यालय में बैठते हैं। उनकी सम्पादकीय मेज़, उनके एकल प्रयासों से जुटायी गयी विविध सामग्री से पटी रहती है। सामग्री जुटाने में यद्यपि सम्पादक मंडल के हर सम्पादक की हिस्सेदारी होती है। **किन्तु मुख्यतः दो वरिष्ठतम सम्पादको प्रोफेसर रमेश दवे और श्री सूर्यकांत नागर जी का विशेष सहयोग रहता है।** समावर्तन में हर माह ठीक समय पर निरन्तर बारहवें वर्ष में भी छपने का अधिकतर श्रेय सम्पादक श्री श्रीराम दवे को जाता है। वे न हो तो समावर्तन प्रकाशित भी नहीं हो सकता। अपनी मेज़ पर तो श्रीराम दवे कार्यरत रहते ही हैं, वरिष्ठ कम्प्यूटर ऑपरेटर श्री विवेक शर्मा के साथ उनकी मेज़ पर भी आसन जमाते हैं। यहाँ तक कि वे अपने घर पर भी समावर्तन के कार्य में व्यस्त रहते हैं। निरन्तर पत्र-व्यवहार और टेलिफोनिक चर्चा उनके ही दम पर निर्भर है। हर माह छपने वाली हर सामग्री को तो देखते ही हैं, यहाँ तक कि फाइनल री-चेकिंग भी वे ही करते हैं। **श्री श्रीराम दवे विशेषतया दो स्थायी स्तम्भों 'काव्यराग' और 'लोकराग' के विशेष सम्पादक हैं जिसकी पूरी जिम्मेदारी उन पर है।**

'काव्यराग' के 16 अंकों में 16 महत्त्वपूर्ण कवियों को केन्द्रित करने के साथ-साथ एक विशिष्ठ स्तम्भ ग़ज़लों पर केन्द्रित किया जिसे 'भूले-बिसरे' के नाम से **श्री ज़हीर कुरैशी** पूरे एक वर्ष तक संकलित करते रहे। फिर उन्होंने संपूर्ण सामग्री को पुस्तकाकार छपवा लिया और ग़ज़लों का स्तम्भ स्थापित हो गया। 'लोकराग' के 37 अंक ऐसे संग्रहणीय बन गये और आकर्षण का केन्द्र के रूप में धरोहरधर्मी हो गये हैं। इन 37 अंकों में श्रीरामजी ने भारत के दस राज्यों के विभिन्न अंचलों को ऐसा समेटा कि **लोकराग** रंगारंग हो गया। तमाम आंचलिक लोकगीत, **लोक नृत्य, लोक नाट्य, लोक नाट्य, लोक चित्रांकन आदि** को सूझबूझ के साथ समेटा।

इन दोनों स्तम्भो के अलावा जो भी **फुटकर सामग्री** निरन्तर प्रकाशित होती रहती है, वीक्षा, साहित्यिक हलचल, चिट्ठी-पत्री, सामाजिक सूचनाएं श्रीराम जी ही एकत्रित करते हैं। **तथा अन्य सम्पादकों द्वारा भेजी गयी सामग्री को भी यथा स्तम्भ प्रकाशित करते हैं।**

प्रबंध सम्पादक हैं बहुआयामी साहित्यकार **श्री सदाशिव कौतुक** जो पत्रिका का प्रबंधन सम्हालते हैं और समावर्तन के लिए लिखते भी हैं। **खासतौर पर समावर्तन द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में इनकी विशिष्ट भूमिका रहती है।**

सम्पादक मंडल के दोनों **सहायक सम्पादक** पूरी निष्ठा और समर्पण से अपना अपना क्षेत्र बखूबी सम्हाल रहे हैं। **वाणी दवे शर्मा** सम्पादक श्रीरामजी की सहायता तो करती ही है किन्तु वे एक द्विमासिक स्तम्भ **'घरोंदे'** का विशेष सम्पादन भी करती हैं जो **नौ अंकों** में अत्यन्त लोकप्रिय हो गया है। प्रत्येक **'घरोंदे'** में **वाणी** एक लघुकथाकार की 6-7 या अधिक भी लघुकथाओं को अपनी विस्तृत टिप्पणी और उनके परिचय के साथ सम्पादित करती हैं। **वाणी स्वयं लोकप्रिय लघुकथाकार है।**

दूसरे सहायक सम्पादक हैं **कवि, नाटककार, रंगकर्मी श्री हरदीप दायले** सम्पादक श्रीराम जी की सहायात करने के अलावा हरदीप प्रख्यात उपन्यासों का नाट्य रूपान्तरण करते हैं। ऐसा ही **एक नाट्य रूपान्तरण डॉ.कुसुम अंसल के बहुचर्चित उपन्यास तापसी पर हरदीप कर चुके हैं जो समावर्तन में छप चुका है।**

दो कम्प्यूटर ऑपरेटर हर माह टाइपिंग का काम बखूबी सम्हालते हैं। एक हैं **मिलिन्द रत्नापरखी** जिनकी पत्नी **श्रीमती मिताली रत्नापारखी** समावर्तन के प्रारंभिक कई वर्षों तक टाइपिंग का कार्य करते हैं। **वरिष्ठ कम्प्यूटर ऑपरेटर श्री विवेक शर्मा टाइपिंग तो करते ही हैं किन्तु उनका खास योगदान है, संपूर्ण पत्रिका की हर माह सेटिंग जिसमें उन्हें महारत हासिल है।**

प्रूफ रीडिंग का दुरूह कार्य **अकेली सुश्री गरिमा दवे** बखूबी सम्हालती हैं। वे संस्कृत साहित्य में पी-एच.डी. उपाधि हेतु शोध कार्य कर रही है।

कार्यालय सहायक श्री संजय मालवीय कार्यालयीन कार्य तो सम्हालते हैं किन्तु साथ ही वे समावर्तन के **वाहन के सारथी भी हैं।** स

(क्रमशः)

डॉ.अजय भट्टाचार्य
स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक 'समावर्तन'

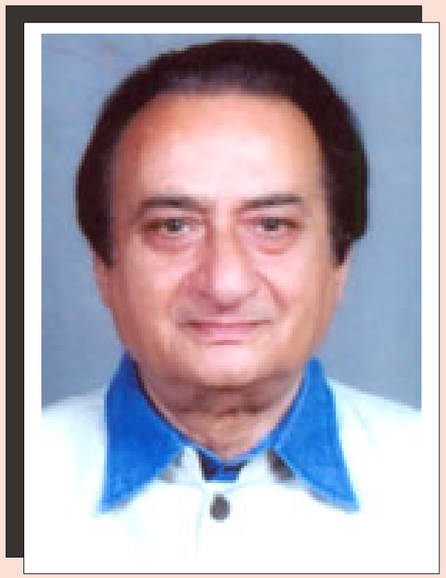

नरेन्द्र दीपक

सम्पर्क : 4 पारिका, फेस-2, चूना भट्टी, कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.) 462016
दूरभाष 0755-2463873, मो. 09425011510
Email : narendradeepak1@yahoo.com

पूरा नाम : नरेन्द्र कुमार पबरा
जन्मतिथि : 03-09-1938

शिक्षा : एम.ए. (हिन्दी),एलएलबी **कार्यक्षेत्रः** भारतीय रेल से यातायात अधिकारी के पद से सेवानिवृत्त। कुछ समय तक भारत भवन भोपाल में वागार्थ के निदेशक एवं मुख्य प्रशासनिक अधिकारी। म.प्र. साहित्य अकादमी की पाठक मंच समिति में शासन द्वारा दो बार सदस्य मनोनीत। राजस्थान साहित्य अकादमी एवं अनेक साहित्यिक संस्थाओं की पुरस्कारों की चयन समिति में कई बार मनोनीत, दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय की मासिक पत्रिका 'विचार आकलन' के पूर्व प्रधान सम्पादक एवं 'अन्तरा' साहित्यिक पत्रिका के तीन वर्ष तक सम्पादक।

लेखन : मूल रूप से हिन्दी गीतकार। पिछले पचास वर्षों से गीत, गजल, कविता, आलेख, समीक्षा आदि विधाओं में नियमित लेखन। विगत शताब्दी के प्रमुख गीतकारों के दस्तावेज के रूप में श्री कन्हैयालाल नंदन द्वारा सम्पादित एवं साहित्य अकादमी दिल्ली द्वारा प्रकाशित हिन्दी गीत की ऐतिहासिक पुस्तक, 'श्रेष्ठ हिन्दी गीत संचयन' में सम्मिलित।

प्रकाशित पुस्तकें : 1. गीत-गंध' (गीत संग्रह) - 1966, (सम्पादित) प्रकाशक- नवोदित साहित्य संस्थान, दमोह (म.प्र.)
2. 'दर्द मुस्कुराता है' (गीत संग्रह) - 1981, प्रकाशक- प्रगति प्रकाशन, आगरा।
3. 'अँजुरी भर चाँदनी' (गीत संग्रह) - 1991, प्रकाशक- आत्माराम एण्डसंस, दिल्ली।
4. 'और सोच में तुम' (गीत संग्रह) - 2010, प्रकाशक - इन्द्रजीत प्रकाशन, भोपाल।
5. 'देर रात तक' (गजल संग्रह) - 2014, प्रकाशक - पहिले-पहल प्रकाशन, प्रेस काम्पलेक्स, एम.पी. नगर, जोन-1, भोपाल (म.प्र.)

पुरस्कार : * भारत सरकार द्वारा 'अँजुरी भर चाँदनी' पर सन् 1993 में 'मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार'। * म.प्र. शासन की म.प्र. हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा सन् 2014 में गजल की पुस्तक, 'देर रात तक' पर 51,000/- रु. का 'अखिल भारतीय, पं. भवानी प्रसाद मिश्र पुरस्कार। * दिल्ली की ख्यातनाम साहित्यिक संस्था 'परम्परा' द्वारा सन् 2015 में 51,000/- रु. का अखिल भारतीय 'परम्परा ऋतुराज सम्मान', पुस्तक 'और सोच में तुम' पर।

प्रसारण : दूरदर्शन-दिल्ली, जम्मू, लखनऊ, भोपाल एवं आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से काव्य गोष्ठियों में भागीदारी।

विदेश भ्रमण : अमेरिका, केनेड़ा, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, स्वीटजरलैण्ड, मलेशिया, थाईलैंड, अमान, मसकट, नेपाल, सिंगापुर, यू.ए.ई. (दुबई, शारजाह आदि) हाँगकाँग, मकाऊ आदि की साहित्यिक यात्राएँ। लंदन के नेहरू सेंटर में कवि सम्मेलन का संचालन एवं काव्य पाठ।

सम्प्रति : स्वतंत्र लेखन के अतिरिक्त हिन्दी त्रैमासिक पत्रिका 'पहला अन्तरा' के सम्पादक।

गीत का धर्म है गाया जाना, वह गाया जायेगा.....

नरेन्द्र दीपक

कविता मेरे लिये साँसें लेने जैसी बहुत जरूरी है। कविता मुझे घुट्टी में नहीं मिली। पिता, दादा, परदादा किसी ने कविता नहीं लिखी। सब गाँव के कम पढ़े-लिखे लोग थे। पिताजी मैट्रिक तक पढ़े थे, लेकिन हाँ, मैं भावुक बचपन से ही था। जब मैं दूसरी-तीसरी कक्षा में पढ़ता था, एक पागल महिला को पेड़ के नीचे गाते सुनता था। शायद मीरा के भजन गाती थी, उसके शब्द व स्वर हृदय को गहराई तक छूते थे। फिर हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों में सूर, तुलसी, कबीर आदि को पढ़ा और कविता के प्रति रुचि जागृत हुई। कॉलेज में आते-आते कविता का बीज मेरे मन में रोंपा, उन दिनों आयोजित होने वाले कवि सम्मेलनों ने। मैं उन दिनों गुना इंटर कॉलेज में पढ़ता था, वहाँ पहली बार नीरज, सुमन, वंशीधर पण्डया, रामकुमार चतुर्वेदी, आनंद मिश्र आदि को सुना। फिर एक बार कॉलेज में डॉ. शिवमंगलसिंह सुमन आये। उनका एकल काव्य पाठ था। 'पथ भूल न जाना, पथिक कहीं।' पहली रचना थी जिसकी स्मृति आज भी है। कविता ही नहीं, सुमन जी का कविता पाठ का ढ़ंग भी इतना अनूठा था, जिसकी छाप आज भी मेरे काव्यपाठ में है। नीरज से तो मैं प्रभावित था ही। कह सकता हूँ कि कविता का पौधा जो मेरे मन में जन्मा उसको खाद-पानी सुमन और नीरज से मिला। पिछले दिनों मैंने एक गजल लिखी है, जिसका मक्ता है- दीपक की रचनाओं में है/'नीरज' और 'सुमन' की खुशबू।

वैसे बच्चन, नेपाली, रामावतार त्यागी और मुकुट बिहारी सरोज का भी कुछ-कुछ प्रभाव मेरे प्रारंभिक गीतों में दिखाई देता है। उन दिनों भवानीप्रसाद मिश्र भी मंचों पर काफी प्रभाव छोड़ रहे थे। उनकी अपनी एक अलग शैली थी, जिससे उन दिनों बहुत से प्रभावी कवि भी आतंकित थे, जिनमें शिव कुमार श्रीवास्तव, आनंदी सहाय शुक्ल, राजेन्द्र अनुरागी, दिनकर सोनवलकर आदि का नाम गिनवाया जा सकता है। भवानी भाई की एक बहुत प्रसिद्ध रचना थी- 'जी हाँ हुजूर मैं गीत बेचता हूँ/मैं किसम किसम के गीत बेचता हूँ।'

इसी तर्ज पर मैंने पहली रचना लिखी- 'जी हाँ मैं मरघट के उस पार रहा करता हूँ'। गुना के गोपाल मंदिर में आनंद मिश्र की उपस्थिति में यह मेरा पहला काव्यपाठ था जिसे खूब सराहना मिली और मैं कविता के मैदान में चल निकला। सुमन जी उन दिनों श्रृंगार और वीर रस की कविताओं/गीतों के अतिरिक्त मुक्तक भी खूब लिख रहे थे। वैसे भी उन दिनों मंच पर मुक्तक खूब चलते थे और मेरा प्रारंभ भी मुक्तकों से हुआ। सात-आठ ही लिखे थे कि कॉलेज में प्रसिद्ध हो गया। प्यार/श्रृंगार मेरे मुक्तकों का मुख्य विषय था, जिसे लड़के-लड़कियाँ खूब पसंद करते थे। कॉलेज के गर्ल्स कॉमन रूप में मेरी धाक जम गई थी। यह सन् 57-58 की बात है, उसी साल मैं कॉलेज में विद्यार्थी परिषद् के पैनल से चुनाव लड़ा और साहित्य मंत्री चुन लिया गया। उसी संदर्भ में कविता प्रतियोगिता में भाग लेने होल्कर कॉलेज इन्दौर गया, जहाँ मुझे बालस्वरूप राही, मुकुट बिहारी सरोज आदि के साथ कॉलेज के मंच से कविता पढ़ने का मौका मिला। सौभाग्य से मुझे ठीक-ठाक सुना गया और दूसरे दिन मैं इन्दौर में ही सेक्सरिया कॉलेज के मंच पर था, जहाँ चन्द्रसेन विराट और नीरज से ऐसी मुलाकात हुई जो आज तक बरकरार है। सेक्सरिया कॉलेज में मेरे मुक्तकों की ऐसी धम मची कि लगभग एक दर्जन लड़कियों ने मेरे आटोग्राफ लिये। वह दृश्य आज भी स्मृतियों में है।

उसके बाद कवि सम्मेलनों का दौर चल निकला। जहाँ-जहाँ मैं रहा कवि सम्मेलनों का सिलसिला शुरू करवाया। कटनी में 'बमचक' का पहला कवि सम्मेलन मेरे ही संयोजन में हुआ। न्यू कटनी का एक कवि सम्मेलन तो अविस्मरणीय था, जिसका संयोजन-संचालन मैंने किया था और नीरज जी के ना आने पर भीड़ मेरे ऊपर टूट पड़ी थी, मुश्किल से मैंने जान बचाई थी। रमेश यादव के 'पीला वासंतिया चाँद' ने उस दिन मेरी लाज रखी थी। मैहर का 'कीर्तिमान' का कवि सम्मेलन जो लगभग चालीस वर्ष पूर्व मैंने प्रारंभ किया था, आज भी चल रहा है। जिसका बहुत शान से डॉ. कैलाश जैन सफलतापूर्वक संचालन कर रहे हैं। देश का शायद ही कोई प्रमुख कवि होगा, जिसने मैहर के मंच पर जाकर गौरव का अनुभव न किया हो। अतिश्योक्ति न होगी, यह जिक्र करने में कि भोपाल मेले का कवि सम्मेलन, स्वर्णीय श्री रमेशचन्द्र अग्रवाल व चौधरी जी के आग्रह पर मैंने शुरू करवाया था और पहले कवि सम्मेलन का संचालन भी मैंने ही किया था, जिसमें सर्वश्री रमानाथ अवस्थी, विट्ठलभाई पटेल, सुरेन्द्र शर्मा, कुँवर बेचैन जैसे कवियों को आमंत्रित किया गया था। चीन और पाकिस्तान के आक्रमण के समय मुझे प्रदेश के अनेक कवि सम्मेलनों में भागीदारी व संचालन का अवसर मिला। म.प्र. शासन की ओर से श्री ब्रजभूषण सिंह आदर्श के नेतृत्व में कवियों की एक टीम बनाई गई थी, जिसमें मैं भी था। दमोह का कवि सम्मेलन अविस्मरणीय था, जिसमें बच्चन जी की उपस्थिति उल्लेखनीय थी उसी समय से बच्चन की कृपादृष्टि मुझ पर आजीवन रही। साप्ताहिक हिन्दुस्तान में मेरा एक गीत पढ़कर बच्चन जी ने मुझे खत लिखकर मेरे गीत की प्रशंसा की थी और लिखा कि ऐसे दो-चार गीत मुझे भेज दो, मैं अपने पास रखूँगा। मेरे लिये यह भी अविस्मरणीय घटना थी। बच्चन जी के साथ मैंने किशोर समिति सागर और मुम्बई में भी काव्यपाठ किया। मुम्बई में हमारे साथ धर्मवीर भारती भी थे। बाद में रामरिख मनहर ने भी याद किया था, वह कवि सम्मेलन मातुश्री भवन में आयोजित था, जिसमें नीरज, माणिक वर्मा और रवीन्द्र जैन मेरे साथ मंच पर थे। मध्यप्रदेश के अतिरिक्त उत्तरप्रदेश, दिल्ली, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात और जम्मू-कश्मीर तक कवि सम्मेलन के सिलसिले में भ्रमण किया। विदेशों में भी साहित्यिक कार्यक्रमों में जाने का अवसर मिला। लंदन के नेहरू सेंटर हॉल में भारत के विदेश मंत्री श्री शर्मा एवं इंग्लैण्ड में भारतीय राजदूत की उपस्थिति में मैंने कार्यक्रम का संचालन एवं काव्यपाठ किया, जिसमें भोपाल के कवि श्री राजेन्द्र जोशी व महाराष्ट्र की सुश्री मीनाक्षी जोशी भी थीं।कवि सम्मेलन मैंने बहुत अधिक नहीं किये केवल स्तरीय कार्यक्रमों में ही गया, क्योंकि मेरी प्राथमिकता कवल साहित्य के प्रति लगाव था, आर्थिक दृष्टिकोण नहीं। यदाकदा अभी भी चला जाता हूँ। पिछले एक वर्ष में दिल्ली तीन बार गया। पहली बार आकाशवाणी दिल्ली द्वारा आयोजित वर्षगाँठ के अवसर पर आयोजित कवि सम्मेलन में। मध्यप्रदेश से मेरे साथ मेरे मित्र शिवकुमार अर्चन भी थे। उसके तीन माह बाद आकाशवाणी व दूरदर्शन दिल्ली द्वारा आयोजित अटल बिहारी वाजपेयी पर केन्द्रित एक विशेष कार्यक्रम में था, जिसमें मेरे साथ बालस्वरूप

राही, यश मालवीय के अतिरिक्त अनेक कवि थे। साहित्यिक संस्मरणों की एक लम्बी फेहरिस्त मेरे पास है। मित्रों का बहुत समय से आग्रह है कि इतने सुंदर संस्मरणों का जखीरा पुस्तक में कैद होना चाहिए। देखिये, कभी समय मिलेगा और अवसर आयेगा तो यह जोर आजमाइश भी करेंगे। एक छोटा-सा संस्मरण शेयर कर लेते हैं। सन् 1964 के आसपास मेरी मुलाकात बच्चनजी से पहली बार हुई थी जब उन्हें हमने दमोह कार्यक्रम में बुलाया था, उसके बाद परिचय बढ़ता गया, पत्रों का आदान-प्रदान भी। बच्चनजी का पहला पत्र जब मिला, उस समय तक मैं उनकी लिखावट से परिचित नहीं था। बहुत संक्षेप में पत्र लिखते थे वे। उनकी लिखावट की अलग ही शैली थी। पहले पत्र की पहली पंक्ति थी- प के लिये 'ध'। मैं यहीं अटक गया। प के लिये का अर्थ बुद्धि को मथ देने के बाद भी नहीं लगा सका। इस समय दमोह में मेरे प्रिय मित्र थे दिनकर सोनवलकर। उनसे बच्चन जी का पत्र व्यवहार पहले से था। मैं सीधा उनके पास पहुँचा। वे पत्र देखकर और मेरी समस्या को सुनकर मुस्कराये और बोले- प के लिये ध का अर्थ है, 'पत्र के लिये धन्यवाद'। मैंने अपना माथा ठोका, उन्हें कहा 'क के लिये ध' (कष्ट के लिये धन्यवाद) और दोनों काफी पीने के इरादे से एवरेस्ट रेस्टारेंट की ओर बढ़गये। यह संस्मरण उन दिनों 'धर्मयुग' ने 'अविस्मरणीय' स्तम्भ के अंतर्गत छापा था, जिसमें देश के दिग्गज साहित्यकारों के संस्मरण छपते थे। 'धर्मयुग' ने मेरे चित्र के नीचे लिखा था- 'हिन्दी गीतकार-नरेन्द्र दीपक' तभी से मेरे गीतकार होने पर मुहर लग गई। वैसे 'साप्ताहिक-हिन्दुस्तान' और देश की चर्चित पत्र-पत्रिकाओं में मेरे गीत 1960 से ही छपना शुरू हो गये थे। मेरे इस संस्मरण को भोपाल के मेरे मित्र चर्चित कथाकार सुबोध श्रीवास्तव आज भी खूब तहत में चटखारे लेकर सुनाते हैं।

पहली गीत पुस्तक 'गीत गंध' नाम से मेरे सम्पादन में सन् 1966 में आई। 'तार सप्तक' की तर्ज पर उन दिनों दिल्ली से भूपेन्द्र कुमारी स्नेही ने 'गीत, गीत, गीत' पुस्तकें तीन खण्डों में सम्पादित की थीं, उनमें मैं भी सम्मिलित था। गीत जगत में उसकी खूब चर्चा हुई। मुझे लगा कि इसी प्रकार मध्यप्रदेश के भी चर्चित कवियों का एक समवेत गीत संग्रह आना चाहिये। चन्द्रसेन विराट के सहयोग से 1966 में हम दोनों ने, 'गीत-गंध' नाम से गीत-कवियों का संग्रह प्रकाशित किया जिसमें सर्वश्री शिवकुमार श्रीवास्तव, नारायण लाल परमार, जयकुमार जलज, विद्यानंदन राजीव, नरेन्द्र चंचल, चन्द्रसेन विराट और मैं नरेन्द्र दीपक सम्मिलित थे। इस संग्रह की खूब चर्चा हुई। अभी पिछले दिनों इसका उल्लेख संकल्प रथ पत्रिका में विद्यानंदन राजीव ने किया था। 'गीत गंध' का विमोचन दमोह में विट्ठलभाई पटेल ने किया और इस संग्रह से मैं सम्पादक के रूप में चर्चा में रहा। इसके बाद मेरा गीत संग्रह 'दर्द मुस्कुराता है' प्रगति प्रकाशन आगरा से 1981 में आया, जिसमें मेरे प्रारंभिक पैंतालीस गीत थे। यद्यपि बच्चन जी, रामावतार त्यागी, वीरेन्द्र मिश्र आदि ने इसकी काफी प्रशंसा की, किन्तु इस संग्रह का फैलाव बहुत अधिक नहीं हो सका। मेरी तीसरी गीत पुस्तक 'अँजुरी भर चाँदनी' नीरज एवं रमानाथ अवस्थी की अनुशंसा पर उन दिनों दिल्ली के ख्यातनाम प्रकाशक आत्माराम एण्ड संस ने छापी जो खूब बिकी और पढ़ी गई। उसके दो संस्करण निकले। इसी पुस्तक पर मुझे भारत सरकार का, 'मैथिलीशरण गुप्त' पुरस्कार भी मिला, जिसे लेने के लिये मुझे दिल्ली बुलाया गया।

चौथी पुस्तक 'और सोच में तुम' सन् 2010 में इन्द्रजीत प्रकाशन भोपाल से आई जिसे मैं अपने श्रेष्ठ गीतों की पुस्तक कह सकता हूँ। इसी पुस्तक पर मुझे दिल्ली की ख्यातनाम साहित्यिक संस्था, 'परम्परा' ने सन् 2015 में इक्यावन हजार रुपये का 'ऋतुराज परम्परा सम्मान' प्रदान किया। मेरी पाँचवी और अभी तक की अंतिम पुस्तक 'देर रात तक' गजल संग्रह है जो 'पहले पहल' प्रकाशन से आई है। इसमें मेरी चालीस गजलें संग्रहीत हैं। इसमें सभी चर्चित गजलें हैं, जो देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। इस पुस्तक पर मुझे मध्यप्रदेश शासन, साहित्य अकादमी द्वारा इक्यावन हजार रुपये का 'अखिल भारतीय पं. भवानी प्रसाद मिश्र' पुरस्कार प्रदान किया गया। मेरी सभी पुस्तकें ख्यातनाम प्रकाशकों ने छापी व सभी राष्ट्रीय और प्रादेशिक स्तर पर पुरस्कृत हुई। साहित्य लेखन के अतिरिक्त मैं पिछले कुछ वर्षों से साहित्यिक पत्रिकाओं के सम्पादन व प्रकाशन से भी जुड़ा हूँ। दुष्यंत कुमार पाण्डुलिपि संग्रहालय की पत्रिका 'विचार आकलन' के कुछ अंकों का सम्पादन किया और फिर अपना स्वयं का, 'इन्द्रजीत प्रकाशन' प्रारंभ कर 'अन्तरा' नाम से त्रैमासिक पत्रिका का सम्पादन प्रारंभ किया, जो अब 'पहला अन्तरा' के नाम से है और पत्रिका गीत को समर्पित है। गीत पर भी आजकल 'नवगीत' का ग्रहण लगा हुआ है। गीत का अर्थ होता है, जो गाया गया है। नवगीतकार गेयता के पक्षधर नहीं है। उनका कहना है कि गेयता नवगीतों के लिये आवश्यक नहीं है। मजेदार बात है कि जितने भी नवगीतकार मंचों पर जाते हैं, अधिकांश गाकर पढ़ते हैं। गायें नहीं तो हूट हो जायें, क्योंकि रचना में तो कुछ होता ही नहीं, जो कुछ है, स्वर में है और भी कहा जाये तो तथाकथित दो-तीन चर्चित प्राणी तो नवगीतकार है ही नहीं। वे सिद्धहस्त गीतकार हैं, इन्हें तो मार-मार कर...। बुद्धिनाथ मिश्र का नाम तो खुलकर लिया जा सकता है, ऐसे कुछ और नाम भी हैं। इनका कहना भी ठीक है जब यह भीड़ हमारी जय जयकार करती है, तो हमें एतराज भी क्यों होना चाहिए। यह भी सच है कि इस भीड़ को ये न भीख देते हैं ना चन्दा। आप हँसें नहीं यह सुनकर कि प्रसिद्ध गीतकार बालस्वरूप राही को भी नवगीतकार बनाने के औजार तैयार किये जा रहे हैं। चन्द्रसेन विराट जिनने गीत लिखना लगभग छोड़ दिया है और आजकल गजल के पाले में हैं, उन्हें भी कोई महाशय अपने नवगीत संग्रह में शामिल कर रहे हैं या शायद कर ही लिया है। नचिकेता ने मेरे लिये स्वीकार किया है कि आपको इस जमात में शामिल नहीं करेंगे। वैसे नचिकेता के खिलाफ भी बोल जाते हैं। आजकल शायद जनवादी हैं। उन पर गीत चोरी का इल्जाम भी है, जिसका खण्डन उनने आज तक नहीं किया। खुद भी बहुत विश्वसनीय नहीं है, पाले बदलते रहते हैं नवगीतकार। मेरे मित्र राधेश्याम बन्धु ने मुझे एक पत्र लिखकर स्वीकार किया है कि गीत और नवगीत एक ही हैं और मुझसे कुछ अपेक्षायें भी की हैं। समय आने पर पत्र आप तक पहुँचाऊँगा। अगर 'नवगीत' शब्द से बहुत मोह हो गया है और लोग गीत को, 'नवगीत' ही कहकर खुश हैं, तो इसका भी कोई विरोध नहीं होना चाहिए, लेकिन फिर नवगीत, गीत की कसौटी पर खरा उतरना चाहिये, उसके मानकों में शिथिलता नहीं होनी चाहिये और उसमें नव्यता भी होनी चाहिए। आज जिस तरह का कूड़ा-कचरा नवगीत के नाम पर परोसा जा रहा है, वह विचारणीय तो है ही, निंदनीय भी है। जो रचना कहीं से भी गीत नहीं है, उसे नवगीत कहा जा रहा है। गीत का विकल्प इसलिये तलाशा गया, क्योंकि गीत भी रूढ़िवादी हो चला था, उसमें दुहराव बहुत हो रहा था, वह बासी लगने लगा था, उसमें नव्यता की तलाश की जाने लगी थी। हुआ उल्टा ही, बचा-खुचा गीत भी नवगीत के नाम पर उस स्थिति में पहुँच गया कि वह मंचों से तो गया, पत्र-पत्रिकाओं को भी ले डूबा। आज गीतों या तथाकथित नवगीतों की पुस्तकें कबाड़ी भी नहीं खरीदता, जबकि बेचारे नवगीतकार भीख माँग-माँगकर, चन्दा कर या अपने बच्चों के मुँह का निवाला छीनकर पैसा जुटा रहे हैं, संग्रह पर संग्रह छपवा रहे हैं और मुफ्त में बाँट रहे हैं, जिन्हें आज का पाठक या समाज स्वीकार नहीं कर रहा। वैसे यह कथ्य भी तथ्यपरक है कि गीत कभी मर नहीं सकता। जब तक सृष्टि में मानव नामक जीव है, जब तक पक्षियों की चहचहाट है, जब तक झरनों की झर-झर और नदियों की कल-कल है, गीत जीवित रहेगा। उसे किसी विशेषण की आवश्यकता नहीं है, गीत, गीत ही रहेगा उसका धर्म है गाया जाना, वह गाया जायेगा।

4, पारिका, फेस-2, चूना भट्टी,
कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.) 462016 मो. 09425011510

गीत, ग़ज़ल, दोहे : नरेन्द्र दीपक

गीत : आँसू की चर्चा में अक्सर

एक दृष्टि भर समय और दो,
आधी बात रही जाती है
इतनी पीड़ा इतना अपयश
मेरे जैसा कौन धनी है,
सुख से इस नालायक मनकी
जनम जनम से तनातनी है
आँसू की चर्चा में अक्सर
मेरी कथा कही जाती है
बिखरे केश उँनींदी पलकें
अधरों पर जलते अंगारे,
ये सब अक्सर उन्हें मिले हैं
चाहे जिन ने चाँद सितारे
रूपवती पीड़ा की उँगली
सब से नहीं गही जाती है
आधी बात कही है मैंने
तुम क्यों माँग रही हो पूरी
ये कैसी संयम की भाषा
ये कैसी मन की मजबूरी
मेरे दुख के ताजमहल की
क्यों दीवार ढही जाती है।

मन नहीं लगता

बात यह किससे कहें हम
किस जगह जाकर रहें हम
कूल पर तो मन नहीं लगता
धार में बहते नहीं बनता
इस कदर घेरे विवशताएँ
साँस तक लेना हुआ दूभर
यूँ हुई असहाय यह पीढ़ी
ठीक जैसे बिना छत के घर
छटपटा कर दिन गुजारें
रात भर चीखें पुकारें
रोशनी मन को नहीं भाती
और तम सहते नहीं बनता
दर्द ये कहते नहीं बनता
सुलगती चिनगारियाँ मन में
तन मगर उल्लास ओढ़े है
तृप्ति का हर घट स्वयं में ही
एक गहरी प्यास ओढ़े है
दोहरे व्यक्तित्व सारे
कौन अब किसको पुकारे
बोलने को जी नहीं करता
मौन भी रहते नहीं बनता
दर्द ये कहते नहीं बनता

पाती आई है

तन पर अजब उदासी है
तबियत घबराई है
बहुत दिनों से नहीं
तुम्हारी पाती आई है
सूनापन देहरी दरवाजे आँगन सूनापन
इस पर ताने मार रहा है यह पागल मौसम
क्या होता है ऐसे में बोलो समझाने से
गाज गिर गई मन पर एक तुम्हारे जाने से
अस्त-व्यस्त सारा घर, जैसे पारा बिखर गया
आँगन के गुलाब गुमसुम तुलसी मुरझाई है
धूल हवा के काँधों चढ़, जा बैठी आलों पर
जाले बुनने लगीं मकड़ियाँ फिर दीवालों पर
चित्र तुम्हारा सुधियों के घर ढोने लगा मुझे
और तुम्हारे होने का भ्रम होने लगा मुझे
प्यार तुम्हारा रामायण सा मैंने बाँचा है
याद तुम्हारी गीत बना कर हर हमदम गाई है
किससे जाकर कहूँ भला अब मन की बातों को
कौन जहर दे दूँ पहाड़-सी लम्बी रास्तों को
खाक डरेंगे अँधियारे मेरे धमकाने से
कतराता हूँ अब कोई भी शपथ उठाने से
काट दिया मुझको सुख के सारे संदर्भों ने
दुख के गंगाजल में मैंने आँख डुबाई है।

ग़ज़ल : हम पुकारे जायेंगे

क्या पता था इस तरह भी दिन गुजारे जायेंगे,
नाम लेकर दूसरों का हम पुकारे जायेंगे।

आसमाँ से इस कदर अपनी रही नजदीकियाँ,
साथ मेरे झिलमिलाते कुछ सितारे जायेंगे।

बा-इरादा आपने छोड़ा हमें मझधार में,
पूछते हो क्यों, कि अब हम, किस किनारे जायेंगे।

इस तरह से दुख हमारी सोच में शामिल हुआ,
प्रण अधूरे जायेंगे, सपने कुँआरे जायेंगे।

क्या पता था इस कदर दिल पर खरोंचे आयेंगी,
क्या पता था इस तरह दिल से उतारे जायेंगे।

होड़ बच्चों में लगी है, चन्द तिनके झील के,
इस किनारे जायेंगे, या उस किनारे जायेंगे।

देख लेना आँसुओं की पैरवी के वास्ते,
भरी महफिल नाम लेकर हम पुकारे जायेंगे।

आप को काँटे बिछाने का हुनर मालूम है,
इल्म है हमको कि कैसे पथ बुहारे जायेंगे।

आपका चेहरा दिखेगा, आप की परछाइयाँ,
घाव 'दीपक' जब कभी, अपने उधारे जायेंगे।

चाँदनी रख दी

धूप अँधेरे में अचानक रोशनी रख दी,
फिर किसी ने मेरी छत पर चाँदनी रख दी।
मेरी चाहत थीं दो चार टुकड़े धूप के,
उफ ये किसने जुल्फ की छाया घनी रख दी।
प्यार से माथे पे उसने हाथ क्या रखा,
यूँ लगा जैसे किसी ने जिन्दगी रख दी।
अधबनी तस्वीर मेरी देखकर उसने,
मुस्कुराकर यूँ कि यूँ ही अधबनी रख दी।
पहले तो सुख का समन्दर रख दिया उसने,
फिर डिठौने के लिये दुख की कनी रख दी।
जिन्दगी में खूबसूरत मोड़ तब आया,
मेरी पलकों पर किसी ने कुछ नमी रख दी।
आ रहे हैं, आने को हैं, आ गये 'दीपक',
इस खबर ने पूरे घर में सनसनी रख दी।

सफर में रहे

आँधियों की नजर में रहे,
इस तरह हम सफर में रहे
कश्तियाँ सब किनारे लगीं,
एक हम ही भँवर में रहे
हर मुकाँ पर मकाँ ही मिले,
हम कभी भी न घर में रहे
जिन्दगी का पता पूछते,
जिन्दगी भर सफर में रहे
मत अधरों की बातें करो
हम हमेशा अधर में रहे
अधबुझे से दिये की तरह
यार तेरे शहर में रहे
वो नजारे कहाँ खो गये
जो नजारे नजर में रहे
देवता का भरम पालकर
पत्थरों के शहर में रहे
दोस्तों ने दी मायूसियाँ,
दुश्मनों के जिगर में रहे
आँधियाँ, बिजलियाँ, बारिशें,
साथ अक्सर सफर में रहे
हम मुकम्मल गजल ना हुए
पर हमेशा बहर में रहे

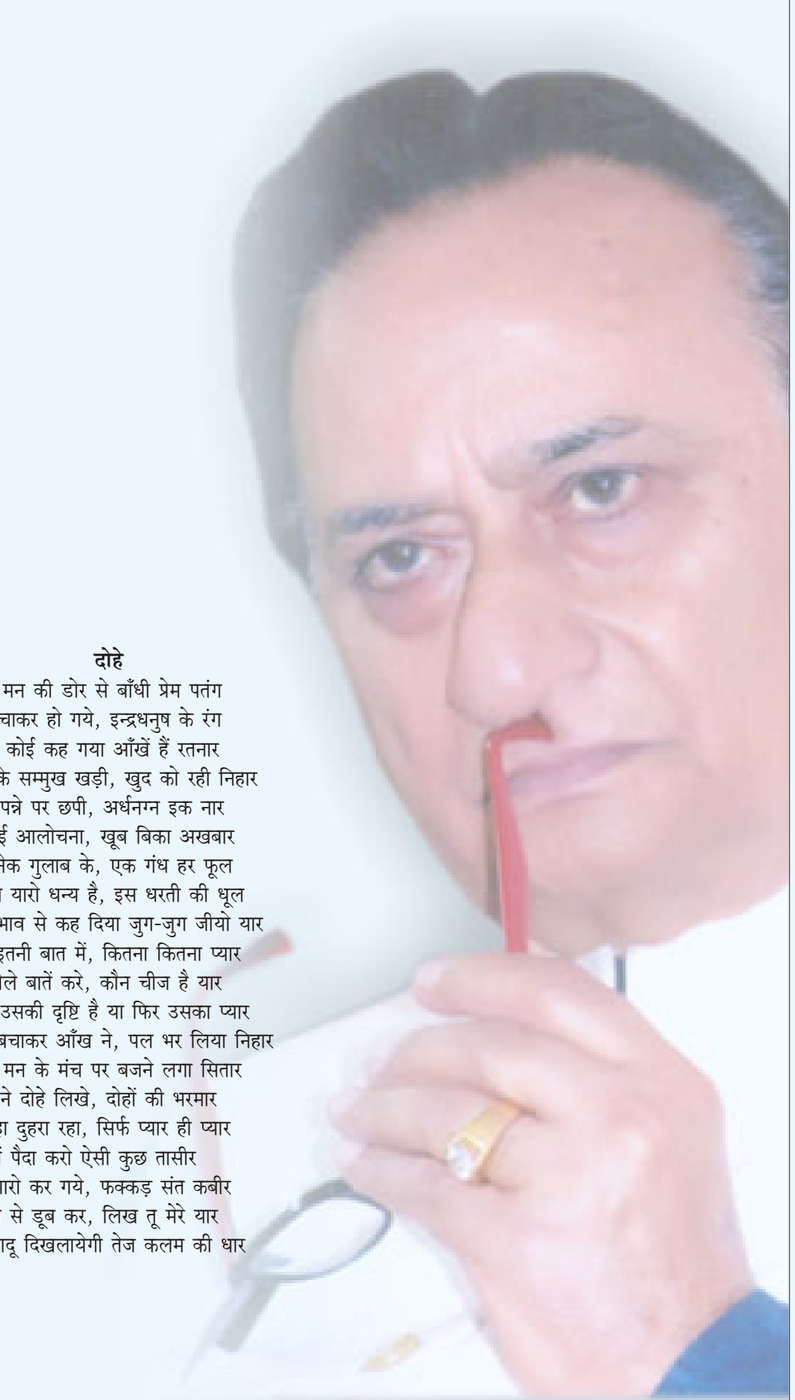

दोहे

जिसने मन की डोर से बाँधी प्रेम पतंग
उसके चाकर हो गये, इन्द्रधनुष के रंग
जब से कोई कह गया आँखें हैं रतनार
दर्पण के सम्मुख खड़ी, खुद को रही निहार
पहिले पन्ने पर छपी, अर्धनग्न इक नार
खूब हुई आलोचना, खूब बिका अखबार
रंग अनेक गुलाब के, एक गंध हर फूल
सचमुच यारो धन्य है, इस धरती की धूल
सहज भाव से कह दिया जुग-जुग जीयो यार
इतनी इतनी बात में, कितना कितना प्यार
बिन बोले बातें करे, कौन चीज है यार
या तो उसकी दृष्टि है या फिर उसका प्यार
आँख बचाकर आँख ने, पल भर लिया निहार
तब से मन के मंच पर बजने लगा सितार
दीपक ने दोहे लिखे, दोहों की भरमार
हर दोहा दुहरा रहा, सिर्फ प्यार ही प्यार
दोहों में पैदा करो ऐसी कुछ तासीर
जैसी यारो कर गये, फक्कड़ संत कबीर
पूरे मन से डूब कर, लिख तू मेरे यार
फिर जादू दिखलायेगी तेज कलम की धार

शृंगार और अंगार के कवि नरेन्द्र दीपक

मधु शुक्ला

नरेन्द्र दीपक के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की चर्चा चलते ही मेरे स्मृतिपटल पर सुविख्यात गीतकार कीर्तिशेष डॉ. शिवबहादुर सिंह भदौरिया जी की ये पंक्तियाँ स्वत ही कौंध उठती हैं- *आघात आँधियों के हर पेड़ पर पड़े हैं/जिनकी जड़ें हैं गहरी है वो आज तक खड़े हैं।*

क्योंकि ये पंक्तियाँ दीपक जी पर अक्षरशः सटीक बैठती हैं उनके आकर्षक व्यक्तित्व एवं उल्लेखनीय कृतित्व के पीछे प्रारंभिक संघर्षों की वो गहरी जड़े हैं, जिनकी तपन ने उन्हें तराशकर चमकदार बनाया है, बिना तपे सोना कुंदन नहीं बनता, उसी कसौटी में तपकर ही उनके बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है, साथ ही उनके सौम्य मुख्य मण्डल पर निर्भीकता व स्वाभिमान की चमक एवं व्यवहार में सहजता व आत्मीयता की झलक भी इन्हीं जमीनी संघर्षों की देन है।

दीपक जी ने जीवन के तमाम पक्षों को एक साथ साधा है, चूँकि दूसरी पंक्ति में रहना उन्हें कभी स्वीकार नहीं था इसलिए जब नौकरी की दौड़ में आगे बढ़े तो लेखनी गति मंदि हो गई, वे जिस काम में लगे उसे पूरी लगन,परिश्रम और शक्ति के साथ किया। भारतीय रेलवे विभाग के प्रतिष्ठित पदों पर न सिर्फ समर्पित भाव से काम किया, वरन् अपने अधिकारियों के बीच अपना प्रभाव व वर्चस्व भी कायम रखा। आगे बढ़ने की इस दौड़ और हौड़ के चलते कविता को थोड़ा पीछे छूटना तो स्वाभाविक ही था, क्योंकि कुछ पाने के लिए कुछ खोना तो पड़ता ही है, पर दीपक जी को कुछ खोना नहीं पड़ा, बस प्राथमिकताएँ तय करनी पड़ीं, समय को साधना पड़ा। अतः गीत की धारा को प्रवाहमान बनाये रखने के लिये जिस समय और साधना की दरकार होती है, वह नहीं मिल पायी, परन्तु प्रतिभा के अंकुर तो जरा-सी धूप और पानी का स्पर्श पाते ही जमीन तोड़कर निकल ही आते हैं, हाँ उनकी बुद्धि और समृद्धि उसके उपयुक्त वातावरण और रखरखाव पर ही निर्भर करती है। दीपक जी के मन में फूटने वाले गीतों के तमाम अंकुर समयाभाव के कारण सूखते और मुरझाते रहे, पर यदा-कदा भावातिरेक के दबाव और सघन अनुभूतियों के प्रभाव के चलते कुछ गीत बीज लेखनी का स्पर्श पाकर शब्दाकार होकर पल्लवित-पुष्पवित भी होते रहे। वही गीत, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, धर्मयुग, वीणा, कादम्बिनी, भारती में कवि की उपस्थिति दर्ज कराते रहे और उसकी सृजनशीलता को मुख्य मार्ग से नहीं तो पगडन्डियों के सहारे ही आगे बढ़ाते रहे।

दीपक जी की उम्र जब लगभग उन्नीस वर्ष की थी, तभी अचानक उनके सिर से पिता का साया उठ गया, इसे किस्मत कहें या सच्ची साधना का फल कि संघर्षों से वे कभी हारे या टूटे नहीं, अपने साहस व परिश्रम से वे कठिन समय की सभी बाधायें पार करते चले गये। दीपक जी की काव्य प्रतिभा का परिचय तो विद्यार्थी जीवन से ही मिलने लगा था, सन् 1958-59 में शास. महाविद्यालय गुना (म.प्र.) में उन्हें विद्यार्थी परिषद् के पैनल से साहित्य मंत्री चुना गया। प्रारंभ में दीपक जी मुक्तक व वीर रस की रचनाएँ लिखा करते थे, वीर रस की रचनाओं का मंचों से पाठ भी करते थे, चूँकि वो चीन युद्ध का समय था, इसलिये वीर रस की रचनाएँ बहुत सराही जातीं।

'ओ सीमा पर चिल्लाने वाले सावधान/लो गीतकार ये पाती तुझे पठाता है।/गौतम गाँधी का देश अहिंसा का पूजक,/ यदि वक्त पड़े तो अंगारा बन जाता है।' उसी दौर में कुछ बाल गीतों की भी रचना की, जो 'नन्दन', 'पराग' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। *'हम भारत माँ के लाल हैं - (साप्ताहिक हिन्दुस्तान) माँ मुझको बन्दूक दिला दे' - (पराग)*

बांग्लादेश की लेखिका तस्लीमा नसरीन के साथ दीपक जी।

उसके बाद दीपक जी की काव्य यात्रा क्रमशः आगे बढ़ती गई। वे देश के मंचों में प्रथम श्रेणी के कवियों के बीच काव्य पाठ करते रहे एवं उनके गीत देश की शीर्षस्थ पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे, 'बच्चन', नीरज, रमानाथ अवस्थी, गोपाल सिंह नेपाली, रामावतार त्यागी, बालस्वरूप राही, वीरेन्द्र मिश्र जैसे कवियों की उन्हें बहुत प्रशंसा व प्यार मिलता रहा।

रेलवे अधिकारी के रूप में भी उन्होंने रेलवे में अनेक कवि सम्मेलन करवाये, जिससे वे देशभर के गीतकारों के सम्पर्क में आये, जिससे उन्हें गीत सीखने और समझने का सुअवसर प्राप्त हुआ और उन्होंने बहुत कम समय में अपनी पीढ़ी के कवियों के बीच अपना स्थान बना लिया। साथ ही एक सफल आयोजक और संचालक के रूप में भी उनकी पहचान बनी। भोपाल मेला उत्सव के प्रथम कवि सम्मेलन का आयोजन दीपक जी ने ही किया था, जो आज तक चला आ रहा है। यह 60-70 और 80 के दशक का वो समय था, जिसे हम हिन्दी गीत और कविता के मंचों का स्वर्ण युग कह सकते हैं। इस युग में अच्छे गीत रचे गये, छापे गये, पढ़े गये और मंचों से सुनें और सराहे गये, आज यही गीत हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर है, जिसने गीत को लोक से जोड़ा और नये आलोक से भर दिया।

गीत की उसी मशाल के जो दो-चार दीप अभी भी झिलमिला रहे हैं और अनुयायी गीतकारों को राह दिखा रहे हैं - वे हैं नीरज, माहेश्वर तिवारी, बालस्वरूप राही, सोम ठाकुर, बुद्धिनाथ मिश्र।

दीपक जी भी इसी मशाल के एक दीप हैं, जिन्होंने गीत विरोधी आँधियों के बीच अपना दीया जलाये और बचाये रखा।

दीपक जी के पास गीत कृतियों की बहुत लम्बी, फेहरिस्त तो नहीं है, परन्तु उन्होंने जो कुछ लिखा, उल्लेखनीय लिखा। वैसे भी गीत संख्या से नहीं शक्ति से आँके जाते हैं।

कवि प्रदीप चौबे की पंक्तियाँ हैं- *'कवि इतना मत लिखो कि कविता मर जाये।/ और इतना कम भी नहीं कि कवि मर जाये।।'*

दीपक जी ने अपने 'कवि' और कविता की 'शक्ति' दोनों को बचाये रखा है। उनकी आज तक पाँच कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं, 'दर्द मुस्कराता है' उनका प्रथम काव्य संग्रह है, 'गीत गंध' उनके द्वारा सम्पादित पुस्तक है। 'अंजुरी भर

माधवराव सिंधिया और श्री मोतीलाल वोरा आदि के साथ श्री दीपक।

ओशो (रजनीश) और नीरज के साथ दीपक जी।

चाँदनी' एवं 'और सोच में तुम' उनके गीत संग्रह हैं, 'देर रात तक' उनकी गजलों का संग्रह है।

उनकी सभी कृतियाँ चर्चित और पुरस्कृत हुईं।

दीपक जी, बच्चन, नीरज, नेपाली, सुमन, रमानाथ अवस्थी और रामावतार त्यागी की परम्परा के कवि हैं या कहें कि इन कवियों का उन पर गहरा प्रभाव रहा है, जिसे वे निःसंकोच स्वीकार करते हैं- दीपक के गीतों में आती 'नीरज'और 'सुमन' की खुशबू उन्होंने इसी धारा को आगे बढ़ाया है। उनके गीतों में परम्परा और नवीनता का अद्भुत समन्वय है। वे परम्पराओं की उँगली थामें हुये ही नवीनता का स्वागत करते हैं, अनेक गीत अपने शिल्प कथ्य, भाषा और तेवर के कारण नवगीत की श्रेणी में आते हैं जैसे- *'लछुआ की देहरी में सटे खड़े ढोर/बरखा की भोर' या मिल गया होगा हमारा खत,* उत्तर की प्रतीक्षा है।

नरेन्द्र दीपक के गीतों का मुख्य तत्त्व प्रेम है। इसी भाव के इर्द-गिर्द उनकी अधिकांश रचनाओं का ताना-बाना है। 'प्रेम' एवं 'शृंगार' उनकी रचनाओं का मूल स्वर है, शृंगार में भी वियोग शृंगार में उनकी कलम कुछ ज्यादा ही रमी है। 'संयोग' जहाँ प्रेम पथ की मंजि है, विराम है, वहीं 'वियोग' प्रेम की एक अनन्त यात्रा है, जो मानव मन को सतत् गतिशील बनाये रखती है और उसके हृदय में आशा का दीपक जलाकर प्राणों को तापयुक्त और ऊर्जावान बनाये रखती है, तभी तो वे कहते हैं-

दर्द का अनुवाद भर मैंने किया है,/गीत जैसा कुछ नहीं है पास मेरे। यही भाव उनकी गजलों में भी परिलक्षित होता है- *आँखों में रहा इंतजार देर रात तक/नींदें मेरी रही फरार देर रात तक।* प्रेम और शृंगार की गहरी भावभूमि, प्रभावी कथन सहज-सरल, भाषा, लयात्मक छन्द, चमत्कृत बिम्ब विधान से रचे-बँधे दीपक जी के ये गीत पाठकों के मन में एक गहरी और अकल्पनीय अनुगूँज छोड़ जाते हैं। हजता इन गीतों का मुख्य आकर्षण है, साथ ही भाषा में मुहावरों का सटीक प्रयोग इन गीतों के सौन्दर्य को द्विगुणित प्रभावी बना देता है। *सर-सर दौड़ रहे पुरवा के झोंके बिना लगाम।/याद मुझे हो आई फिर वह भूली बिसरी शाम। एक उड़ती नजर तो चलो ठीक थी/उसने देखा दुबारा-तिबारा मुझे।* दीपक जी के गीत अपने पाठकों को सहज रागानुभूति से जोड़ते हैं और रंग, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श से समायुक्त होकर जीवन और प्रकृति के साथ पाठकों का सीधा सम्बन्ध स्थापित कराते हैं। उनकी गजलों में भी गीतों की लयात्मकता और हिन्दी छन्दों का प्रभाव दिखाई देता है। बावजूद इसके ये गजलें बड़ी साफगोई से अपनी बात कहती हैं और पाठक का मन छू लेती है- *आँधियों की नजर में रहे/इस तरह हम सफर में रहे।* दीपक जी, बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न रचनाकार हैं, उन्होंने मुक्तछन्द, गीत, गजल, आलेख, समीक्षा आदि सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलायी है, फिर भी उनकी पहचान गीतकार के रूप में ही दर्ज है। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के और भी कई आयाम हैं। वे रेलवे के प्रशासनिक पद से सेवानिवृत्त होकर लगभग 7 वर्षों तक राजनीति से भी सक्रियता से जुड़े रहे, परन्तु उनके बिंदास ओर सहृदय मन को राजनीति रास नहीं आई और वे पुनः कविता की ओर उन्मुख हो गये। उन्होंने कई देशों की साहित्यिक यात्राएँ कीं, लंदन, अमेरिका, दुबई आदि देशों में काव्य पाठ किया। भारत भवन में कुछ समय के लिये वागर्थ के निदेशक एवं मुख्य प्रशासनिक अधिकारी रहे। सम्प्रति स्वतंत्र लेखन के साथ-साथ वे 'पहला अन्तरा' पत्रिका का कुशल सम्पादन कर रहे हैं और साहित्य सेवा के साथ ही देशभर के रचनाकारों व लेखकों से निरंतर सम्पर्क बनाये हुए हैं।

दीपक जी ने भले ही जीवन में कितनी विषम परिस्थितियाँ और उतार-चढ़ाव देखे हों, पर उन्होंने सदैव अपना लक्ष्य बड़ा रखा, बड़े सपने देखें और उनके सम्बन्ध बड़े लोगों से रहे। बच्चन, नीरज, रमानाथ अवस्थी से उनकी बहुत निकटता थी। परिस्थितियों से उन्होंने बहुत कुछ सीखा, हारना उन्हें कभी स्वीकार नहीं और यदि पराजित हो जायें, तो विचलित नहीं होते, सहज और मिलनसार स्वभाव के कारण वे अपने मित्रों के बीच बहुत लोकप्रिय हैं और उनके मित्रों की संख्या भी अधिक है। आज उनके पास वो सब कुछ है, जिसकी चाह हर आदमी रखता है। धन, प्रतिष्ठा, मनोनुकूल पत्नी और आज्ञाकारी बच्चे और अनेक उपलब्धियाँ।

उम्र के अस्सी वें सोपान पर खड़े होकर वे अपने बीतें दिनों को बडी शिद्दत से याद करते हैं, उनके पास अनुभवों की थाती है, संस्मरणों की निधियाँ हैं, चिंतनपरक दृष्टि है और है गीत वाला मन जिसके साथ वे अक्सर अपने फार्म हाउस जाकर फुरसत के कुछ लम्हें बिताते हैं। वहाँ की हरी-भरी पहाड़ियों और लहलहाती फसलों के सुरम्य वातावरण में गीतों की कुछ नई पंक्तियाँ रचते और गुनगुनाते रहते हैं-*सूरज डूब रहा उस पार पहाड़ी के/इस पार लान में, मैं बैठा गुमसुम/और सोच में तुम/देख रहा हूँ थका थका सूरज/देख रहा ढल रही शाम को मैं/जीवन को परिभाषित कर न सका/जीवित भर हूँ सिर्फ नाम को मैं/कुछ ऐसा खो गया स्वयं में ही/भरी भीड़ में हो जाये, ज्यों कोई बच्चा गुम/और सोच में तुम।*

6, साँई हिल्स, कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.) 462042
मोबा. 09893104204

सुधीजनों की दृष्टि में नरेन्द्र दीपक का कृतित्व

पाठक सोच रहे होंगे कि आज के दौर में जब इतनी पुस्तकें आ रही हैं, हर तुकबन्दी करने वाला व्यक्ति स्वयं को गीतकार बता रहा है तो आखिर नरेन्द्र जी के गीतों में ऐसा क्या है जो उन्हें श्रेष्ठ बता रहा हूँ। तो मैं ये बता दूँ कि ये बहुत आम बात होती है जब गीतकार के नाम से उसका कोई गीत संग्रह छपता है, परन्तु एक स्थिति ऐसी होती है, एक वक्त ऐसा आता है जब गीत खुशबू देने लगते हैं और वो खुशबू गीतकार का पता देने लगती है। हम गीत को पढ़ते ही बता देते हैं कि ये गीत फलाना गीतकार के हैं। गीतकार की एक अलग शैली विकसित हो जाती है। कुछ मिलाकर गीतकार से गीत नहीं, गीत से गीतकार पहचाना जाता है, गीत गीतकार से बड़ा हो जाता है और जब ऐसा होता है तो कहने की बात नहीं कि ये स्थिति बहुत विशेष होती है। मैं बेजा तारीफ नहीं कर रहा, लेकिन सत्य यही है कि जब आप दीपक जी के गीतों को पढ़ेंगे तो सत्य से स्वयं परिचित हो जायेंगे।

गोपालदास 'नीरज'

प्यार के दीप जलाने वाले, दर्द को पालने वाले तथा भाग्यवाद में विश्वास करने वाले गजलकार नरेन्द्र दीपक हैं जिन्होंने दर्द लिखने की प्रतिज्ञा की है, क्योंकि उनका आत्मविश्वास है कि 'दर्द ना लिखें वो कलम न हों' तथा 'दुःखन जब रहें यार हम न हों।' दर्द से उनका जीवन भर का रिश्ता है - जिन्दगी दर्द भरी कहानी के अतिरिक्त कुछ भी तो नहीं। नन्हें दिए की नरम रोशनी में रातभर पिघलने वाले रचनाकार ने महफिल सजाने में भी रातें गुजारी हैं। मुस्कान के साथ जिन्दगी गुजारने वाले, औरों के लिए जीने वाले, सुख का पड़ाव खोजने वाले, आसपास बिखराव पाने वाले तथा सर्वत्र रास्ते ही रास्ते की अभिव्यंजना करने वाले रचनाकार हैं।

डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय

नरेन्द्र दीपक सदाबहार युवा कवि-मन का वह अद्भुत गीतकार है जिसने प्रेम की आत्माभिव्यक्ति से शुरूआत की और आज भी प्रेमराग ही साध रहा है। प्रेम को लेकर उसके खुले मन में कोई दुराव छिपाव नहीं है और न किसी प्रकार का ढ़ोंग या पाखण्ड है।

चन्द्रसेन विराट

आदिम अनुभव से सांस्कृतिक अनुभव तक की प्रकाश यात्रा के जादुई अक्स बिखेरता नरेन्द्र दीपक का गीत संसार हमारे हर चेतन कार्य में अपनी अनुपस्थिति या उपस्थिति के साथ झिलमिलाता है। हम अपनी सत्ता, अस्मिता का प्रदर्शन रोशनी से ही करते हैं। हर दुःख और आपदा को काटने का हमारा अंतिम हथियार यही गीत रोशनी है। हम इससे प्राण पाते हैं। गीत के इन अग्नि मंत्रों में जिंदगी की आस है। हम सभी की स्मृतियों में गीतों के कुछ ऐसे क्षण, गुनगुनाहट के कुछ ऐसे पल जरूर होंगे जो हमारे भीतर जमा होती कालिख को बुहारते होंगे। जब हम माटी के दीये में नन्हीं-सी बाती जलाते हैं या मोम की नाजुक घड़ियों को पिघलते देखते हैं, वही वस्तुतः इंसानियत को कायम रखने का संघर्ष और गीत को समझने की जद्दोजहद है, जिसमें हम जाने-अनजाने शरीफ रहते हैं और व्यक्तिगत सीमाओं का अतिक्रमण कर संस्कृति की सामूहिकता से खुद को जोड़ लेते हैं। गीत का यही संस्कार है और यह संस्कार भारत की मिट्टी के कण-कण में समाया है जिससे कोई अछूता नहीं रह सकता। साहित्यिक भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए भी कोई न कोई 'अन्ना हजारे' जरूर अवतरित होगा और गीत की समरसता का संविधान लिखा जाएगा।

डॉ. सुरेश गौतम

बालकवि बैरागी, बशीरबद्र आदि वरिष्ठ रचनाकारों के साथ नरेन्द्र दीपक।

''नई कविता की तर्ज पर नवगीत रचा जा रहा है....''

कवि/गीतकार/सम्पादक नरेन्द्र दीपक से सुश्री निशासिंह की बातचीत

गीतों के संक्रान्तिकाल में बहुत मुश्किल है कि कोई मन-भावन गीत कभी/कहीं/सुनने/पढ़ने को मिल जाये/गिने चुने नाम हैं, जिनकी बदौलत हिन्दी गीत आज भी चर्चा में हैं। यद्यपि नीरज जी की उम्र गँवारा नहीं खाती किन्तु फिर भी गीत के लिये वे जीवनभर समर्पित रहे। वे गीत पर बात करते थे, अपने अनुभव बाँटते थे, कभी-कभी अपेन रुँधे कंठ से कुछ सुना भी देते हैं और हर पल गीत के लिये चिंतित रहते हैं। और कुछ नाम गिनवाये जायें तो बालस्वरूप राही, कुँवर बेचैन, जयकुमार जलज, राजकुमारी रश्मि, यश मालवीय, चन्द्रसेन विराट, बुद्धिनाथ मिश्र, किशन सरोज, विनोद निगम, माहेश्वर तिवारी आदि को वाद किया जा सकता है। नई पीढ़ी में भी गिने-चुने नाम हैं, जिनमें जय कृष्ण तुषार, मालिनी गौतम, मधु शुक्ला, वायमारे आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। नरेन्द्र दीपक का नाम गीत के संदर्भ में इन दिनों अलग से लिया जाता है। परम्परा को नया स्वरूप देने, सहज भाषा, ताजा टटके हुए बिम्बों, सटीक मुहावरों, कसे हुए छन्दों और अछूती उपमाओं के लिये वे चर्चा में हैं। गीतों को समर्पित चर्चित त्रैमासिक पत्रिका 'पहला अन्तरा' के सम्पादक के रूप में उनका कद अलग से भी अनुमाना जा सकता है। गीत को लेकर यह पत्रिका इन दिनों उल्लेखनीय बन गई है और कुछ लोगों के लिये परेशानी का कारण भी। नरेन्द्र दीपक 'गीत' नाम से 'नवगीत' के हिमायती हैं। वे गीत में परिवर्तन चाहते हैं, नवापन चाहते हैं, लेकिन विशेषण लगा-लगाकर लोगों ने नवगीत के नाम से जो दुकानें चला रखी हैं, उसके वे घोर विरोधी हैं। पिछले दिनों हिन्दी भवन में उनसे भेंट हो गई,वहीं उनसे की गुफ्तगू को प्रस्तुत कर रही हूँ, एक साक्षात्कार के रूप में। प्रस्तुत है कुछ सवाल-जवाब।

निशा सिंह : नरेन्द्र जी कविता पहली बार आपके मन में कब आई, कहाँ से आई, कैसे आई ?

नरेन्द्र दीपक : इस संदर्भ में स्मृतियाँ 1955 के आसपास की हैं। कॉलेज में वार्षिक स्नेह सम्मेलन में कवि सम्मेलन हुआ करते थे। वे ही धुँधलके आज भी मन-मस्तिष्क में हैं। एक कवि आए थे श्री व्यास (पूरा नाम याद नहीं है) उन्होंने बहुत ही मीठे स्वर में एक गीत गाया था - धीमी-धीमी रोशनी, तारों की रोशनी, धीमी-धीमी रोशनी। मेरे भीतर तक पैठ गया यह गीत, आज भी कभी-कभी गुनगुनाता हूँ। फिर सिलसिले चल निकले। गुना में प्रतिवर्ष मेले में कविसम्मेलन होता था। नीरज को पहली बार सुना था, उस मेले के कवि सम्मेलन में। शायद 1956 था। शिवमंगल सिंह सुमन, बलवीर सिंह रंग, रामुकुमार चतुर्वेदी चंचल, आनंद मिश्र और भी कई कवि थे। बस, यहीं से कविता के प्रति पागल हो गया। कवि सममेलन रात तीन बजे तक चला। बिना बताए गया था घर लौटा तो पिटाई हुई।

इस अविस्मरणीय कवि सम्मेलन का कोई संस्मरण ?

हाँ है। कवि सम्मेलन तो अत्यनत हृदयस्पर्शी था। सभी ने खूब आकर्षित किया, लेकिन एक क्षेपक कथा जुड़ गई। श्रोताओं में एक सरदार जी, शायद गुरुचरण सिंह नशे में बैठे हुए थे और यदाकदा अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे थे। नीरज जी ने एक गीत सुनाया- *'जिंदगी की राह मैं एक पाँव चल रहा अलग अलग/और दूसरा किसी के साथ है'।* नीरज ने गीत पूरा भी नहीं किया था कि सरदार जी खड़े हो गए और चीखे, नीरज जी, बेवकूफ मत बनाओ, ये तीन टाँग की दौड़, खेल का विषय है, कवि सम्मेलन का नहीं, क्यों बँधवा लिया एक पैर किसी दूसरे के साथ, अब भुगतो। हमें क्या सुना रहे हो। सारे श्रोता ठहाके लगाने लगे। कुछ लोगों ने समझाबुझा कर सरदार जी को बैठाया। कवि सम्मेलन फिर शुरू हुआ। नीरज जी ने अपना गीत पूरा किया, फिर फरमाइश हुई की नीरज जी और सुनाएँ। नीरज जी ने दूसरा गीत तहत में शुरू किया। *जी मेरे ताले की कुँजी कहीं खो गई है/फर्क सिर्फ इतना/जो मेरी दुनिया थी बहुत बड़ी/छोटी सी हो गई है।* सरदार जी फिर खड़े हो गए और चिल्लाए...नीरज जी बकवास बंद करो। आप दारू के नशे में हैं और कुँजी कहीं खो आए हैं, अब हमारी जान क्यों खा रहे हैं? लोगों ने फिर सरदार जी को समझाने की कोशिश की, पर इस बार सरदार जी नहीं माने और जोर से चिल्लाने लगे- ताले की कुँजी खो गई तो आसमान सिर पर उठा लिया, हमारी हिम्मत देखो, जिसका ताला ही खो गया, लेकिन किसी से जिक्र तक नहीं कर रहे, ऊपर से आप का रोना गाना झेल रहे हैं। श्रोताओं ने फिर ठहाके लगाने शुरू कर दिए। संयोजकों ने वहाँ पर मौजूद पुलिस के सिपाही को बुला लिया। पुलिस तो समझदार होती है, मौका ए वारदात पर समझ से काम लेती है। सिपाही ने किसी से एक-दो का नोट सरदार जी को दिलवाया और कान में कहा- 'बादशा हो तुसी फिर कलारी पर जाकर ऐश करो।' और सरदार जी दृश्य से नदारद हो गए।

आपने पहली रचना कब और किसकी प्रेरणा से लिखी ?

शायद 1957 ही रहा होगा। उन दिनों भवानी प्रसाद मिश्र कवि सम्मेलनों के एक चर्चित कवि थे। उनकी एक कविता थी- *'जी हाँ, हुजूर मैं गीत बेचता हूँ/मैं तरह तरह के गीत बेचता हूँ/मैं किसम-किसम के गीत बेचता हूँ।'* इसी तर्ज पर मैंने पहली कविता लिखी- 'जी हाँ हुजूर मैं मरघट के उस पार रहा करता हूँ।' गुना के गोपाल मंदिर में एक कवि गोष्ठी में पहली बार पढ़ी। कवि आनंद मिश्र के सम्मान में यह गोष्ठी थी। आनंद जी ने बहुत तारीफ की फिर लेखन का सिलसिला जारी हुआ, वह आप देख ही रहे हैं। एक विशष बात जिसे आप उल्लेखनीय भी कह सकते हैं कि मैंने जीवन में जो कुछ लिखा, शतप्रतिशत छपा। मेरी पहली रचना जिसका मैंने अभी उल्लेख किया, वह कोटा के एक साप्ताहिक पत्र में छपी थी।

आपका पहला कवि सम्मेलन ?

सन् 57 में इंटर में पढ़ता था। लिखने का भुत बुरी तरह सवार था। उम्र भी खतरनाक थी। 'प्यार' मेरे लेखन का अहम् विषय था, वेसे... और राष्ट्रीय रचनाएँ भी लिखता था। नीरज जी को सुनकर खूब रुबाइयाँ लिखीं, कुछ सही, कुछ गलत। कॉलेज की ओर से कविता प्रतियोगिता में होल्कर कॉलेज इन्दौर गया। गुना में मेरे साथ भगवानशरण 'उन्मन' थे। (उस वक्त तक मैंने उपनाम नहीं रखा था।) इन्दौर पहुँचते ही बस स्टाप पर हमारी मुलाकात कवि चंद्रसेन विराट से हो गई, जो उन दिनों बहुत अच्छे गीत लिख रहे थे और छप भी खूब रहे थे। मुलाकात का माध्यम थे, ग्वालियर के युवा कवि प्रकाश कौल, जिनसे हमारी मुलाकात बस में ही हुई थी। जो अगले दिन आयोजित एक कवि सम्मेलन में भाग लेने इन्दौर आए थे, जिसका संचालन विराट को करना था। विराट जी ने औपचारिकतावश हमसे कहा कि अगर आप कल रूकें तो हमारे कवि सम्मेलन में आएँ, जो सेक्सरिया इंजीनियरिंग इंस्टीट्यूट में था। हम इसे कवि सम्मेलन का निमंत्रण मानकर दूसरे दिन बिना कहे, कूद कर कवि सम्मेलन के मंच पर चढ़गए। कवि सम्मेलन में नीरज जी थे। प्रकाश कौल के अतिरिक्त और भी चार-पाँच कवि। युवा लड़के-लड़कियों की भीड़। कवि सम्मेलन जम नहीं रहा था, दो-तीन कवि हूट हो गए। हमारा नाम कवियों की फेहरिस्त में था ही नहीं। विराट जी पर मैंने पढ़ने का दबाव बनाया तो उन्होंने संचालन नीरज को दे दिया। कवि सम्मेलन हूटिंग के खतरनाक दौर से गुजर रहा था। मैंने एक चिट पर अपना नाम लिखकर नीरज जी को दिया, ये कहते हुए कि इसके बाद उन्हें पढ़वाएँ। नीरज जी कुछ समझ नहीं पाए और मेरा नाम पुकार दिया। मैंने खड़े होते ही प्यार की एक चतुष्पदी पढ़ी- 'जीतने वाले के सर पर ताज होता है/तुम्हारी हर बात में कुछ राज होता है/हँसी होती है उनकी किसी के लिए/पर कइयों को उस पर नाज होता है।'

हाल में वाहवाह हो उठी। युवा लड़के, लड़कियाँ झूमने लगे। मैंने एक-दो रुबाइयाँ और पढ़ीं और बैठ गया। हॉल में हल्ला मच गया। वन्स मोर, वन्स मोर की आवाजें गूँजने लगीं। नीरज जी ने माइक पर फिर मेरा नाम पुकारा और मैंने जी भर कर पाँच-छः मुक्तक और पेल दिये। कवि सम्मेलन के बाद लड़कियों का हुजूम टूट पड़ा, मेरे हस्ताक्षरों के लिए, ये मेरा पहला कवि सम्मेलन था और इससे भी बड़ी उपलब्धि मेरे लिए यह थी कि कि यह मेरी नीरज जी से पहली मुलाकात थी और फिर ऐसे सम्बन्ध बने, जिन्हें आज भी जमाना जानता है।

आपके जीवन का उल्लेखनीय कवि सम्मेलन?

कवि सम्मेलन मैंने बहुत तो नहीं पर काफी किए। नरेन्द्र चंचल मेरे कॉलेज के दिनों में मित्र थे। दोनों ने लिखना भी साथ-साथ ही शुरू किया। वे आकाशवाणी, भोपाल पर प्रोड्यूसर थे। बड़े यारबाज आदमी। बहुत इंटेलीजेंट, शार्प। उन्होंने आकाशवाणी पर कवि सम्मेलन का विशेष आयोजन किया। आमंत्रित कवि थे सर्वश्री रामेश्वर शुक्ल अंचल, रमानाथ अवस्थी, वीरेन्द्र मिश्र, शंभूनाथसिंह, गोपालकृष्ण कौल, देवराज दिनेश, कन्हैयालाल नंदन और नरेन्द्र दीपक। मुझे लेकर शिकायत हुई कि देश के इतने ख्यातनाम कवियों के बीच नरेन्द्र दीपक को कैसे लिया जा रहा है, जबकि मध्यप्रदेश में एक से एक बड़े कवि उपलब्ध हैं। भोपाल में ही महेश संतोषी, राजेन्द्र अनुरागी जैसे मुझसे वरिष्ठ कवि उपलब्ध थे। चंचल जी की पेशी हुई। स्टेशन डायरेक्टर शुंगलू जी ने चंचल जी से कहा, चंचल जी आपने बहुत अच्छे और वरिष्ठ कवियों को बुलाया है, मैं सभी को जानता हूँ और आश्वस्त हूँ, किन्तुयह जो फेहरिस्त में अंतिम नाम है नरेन्द्र दीपक, मैं इन्हें नहीं जानता और कुछ अन्य लोगों के भी इस नाम को लेकर अलग विचार हैं। चंचल जी ने कहा, सर आप नरेन्द्र दीपक को छोड़कर बाकी नामों से तो संतुष्ट हैं? शुंगलू जी ने कहा, हाँ, तो चंचल जी बोले इस आखिरी नाम के लिए मैं आश्वस्त हूँ, यह जिम्मेदारी आप मेरे ऊपर छोड़िए।

कवि सम्मेलन में मैंने 'आधी बात रही जाती है'' गीत पढ़ा, जिसने कवि सम्मेलन का माहौल ही बदल दिया। रमानाथ अवस्थी और शंभूनाथ सिंह जी से मेरी पहली मुलाकात थी जो प्रगाढ़ सम्बन्धों में बदल गई। उसी के बाद मुझे दिल्ली दूरदर्शन के राष्ट्रीय कवि सम्मेलन में बुलाया गया और शंभूनाथ सिंह जी ने अपने नवगीतों के संकलन में सम्मिलित करने की पहल की, जो बाद में उपनाम 'दीपक' न स्वीकार करने की स्थिति में बात अधूरी रह गई। यह मेरा एक उल्लेखनीय कवि सम्मेलन था।

बहुत सुन्दर संस्मरण कोई और रोचक प्रसंग ?

'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में मेरी एक हास्य कविता छपी, 'ओ मेरी प्रिया' और मेरे हास्यकवि होने की कीर्ति फैल गई। इसी गलतफहमी में बरगढ़(उड़ीसा) से एक कवि सम्मेलन का निमंत्रण मिला। संयोजक कोई वकील साहब थे। मैंने स्वीकार कर लिया, स्वीकृति भेज दी। जिस दिन जाना था, बरगढ़ देखकर ध्यान में आया कि कटनी-इलाहाबाद सेक्शन में मानिकपुर के पास एक रेल्वे स्टेशन है बरगढ़। पत्र में शायद उड़ीसा नहीं लिखा था। निश्चिंत होकर कटनी पहुँच गया। मेल में जाना था, पता लगा मेल बरगढ़ खड़ा नहीं होता। सोचा, मानिकपुर उतर कर किसी बस या ट्रेन से बरगढ़ पहुँच जाऊँगा। मानिकपुर उतर गया। शाम के सात बजेथे। पता लगा कोई बस नहीं जाती और उस समय कोई ट्रेन भी नहीं थी। चूँकि रेल्वे में काम करता था, इसलिए सीधा स्टेशन मास्टर के पास पहुँचा। उन्होंने कहा एक इंजिन पौड़ी (इलाहाबाद) जा रहा है, उससे चले जाओ, मैं इंजिन पर सवार हो गया। थोड़ी देर में ड्रायवर ने इंजिन रोका और कहा बरगढ़ आ गया। घुप अँधेरा। आदमी तो आदमी, कुत्ते-बिल्ली की आवाज भी नहीं। इंजिन चला गया। मैं रेल की पटरी के किनारे घुप अँधेरे में। सामने एक छोटे से कमरे के बाहर मिट्टी के तेल का लैम्प जल रहा था, यही था स्टेशन मास्टर का कमरा। मैं समझ गया कि कुछ गलत हो गया। स्टेशन मास्टर मुझे देखकर चौंक गए। बोले, इंजिन से आप ही उतरे हैं। मैंने पूरा किस्सा सुनाया, तो बोले आप गलत आ गए। बरगढ़ गाँव यहाँ से करीब तीन किलोमीटर है और वहाँ सिर्फ पचास-साठ घर की बस्ती। मैंने संयोजक वकील साहब का जिक्र किया तो बोले, गाँव में वकील कहाँ, हो सकता है। इस गाँव के कोई वकील हों और वो इलाहाबाद में प्रेक्टिस करते हों। मैं परेशान हो गया, पूछा अब क्या करूँ? बोले बगल में एक कोठरी है, उसमें एक पलंगपड़ा है, उस पर विश्राम करें, सुबह पाँच बजे पेसेंजर आएगी, उससे कटनी चले जाएँ। स्टेशन पोर्टर ने बताया कि महीनों से उस कोठरी में कोई नहीं ठहरा है। पलंग पर एक पुराना गद्दा बिना चादर के। मिट्टी के तेल के छोटे से लैम्प की मद्म रोशनी में देखा तो गद्दे पर दो छिपकलियाँ विश्राम कर रही थीं। मैं छिपकलियों से वैसे ही बहुत डरता हूँ। पास ही रखी एक टूटी कुर्सी को रूमाल से झाड़ा और बैठ गया। स्टेशन पोर्टर लैम्प रखकर चला गया। करीब एक घंटा बैठा रहा, रुँआसा हो गया। फिर भी मन कहता रहा कि कवि सम्मेलन तो गाँवों में भी होते हैं। उठकर ऑफिस गया तो स्टेशन मास्टर कुर्सी पर अधलेटे सो रहे थे। पोर्टर ने पूछने पर बताया कि गाँव करीब तीन किलोमीटर है, मैंने उससे रास्ता पूछा तो पगडंडी बता दी। सोचा बैठने से बेहतर है कि गाँव जाया जाए। शायद कवि सम्मेलन हो रहा हो, नहीं भी हो रहा होगा तो एक-दो घंटे का समय तो कट ही जाएगा। रास्ते में ऊबड़-खाबड़ जमीन पर दो-तीन बार गिरा। घुटनों और हाथों में हल्की-सी खरोंचें भी आईं। घनघोर अँधेरा सर्दी का मौसम। मैं मन को समझाता रहा कि कवि सम्मेलन जरूर हो रहा होगा, लेकिन ये क्या, मस्तिष्क बिल्कुल ब्लैंक। एक भी कविता याद नहीं आ रही। कविता की डायरी बैग में ही स्टेशन पर छोड़ गया। भरी सर्दी में माथे पर पसीना। अचानक अजूबा हुआ। सामने थोड़ी दूर पर रोशनी दिखाई दी और थोड़ा आगे गया तो माइक की आवाज। मुझे ईश्वर याद आने लगा और आगे गया, तो मंच दिखाई दिया मंच पर सात-आठ लोग, थोड़ी-सी भीड़ भी। मंच से थोड़ी ही दूर पर था कि फिर पसीना आ गया। मंच पर हनुमान जी कूद रहे थे, रामलीला चल रही थी मैं चुपचाप वापस लौटा। रास्ते में फिर एक-दो जगह लड़खड़ाया और गिरा। पाँच बजे की गाड़ी पकड़ी और घर वापस। बाद में पता चला कि ग्वालियर के कवि मोहन अंबर उस रात इलाहाबाद प्लेटफार्म पर घूमते रहे। लौट के बुद्धु....

दीपक जी आपने साहित्य की अनेक विधाओं में लेखन किया है, किन्तु आपकी पहचान एक गीतकार के रूप में है, आप संतुष्ट हैं ?

मैं अपने लेखन से पूरी तरह संतुष्ट हूँ। मेरी छवि एक गीतकार की है, शौकिया एक कहानी लिखी जो अपने समय की प्रसिद्ध पत्रिका 'आदर्श' में छपी थी। करीब तीस-चालीस किताबों की समीक्षा की। कुछ संस्मरण भी लिखे, इक्का-दुक्का व्यंग्य भी, लेकिन मन रमा कविता में और वह भी गीत में। मैंने गीतों में शृंगार और अंगार, दोनों तरह की रचनाएँ लिखीं। चीन और पाकिस्तान के आक्रमण के समय मेरी छवि एक वीर रस के कवि की थी, किनतु मैं रचा-बसा शृंगार-गीतों में, वह भी वियोग में। 'पीड़ा' मेरा केन्द्रीय विषय रहा। दुःख ही दुःख गाया। निशा जी, गीत को मैंने पूरे मन से जिया है, पूरे मन से डूबा उतराया हूँ इसमें। गीत लिखने के बाद मन को जो संतुष्टि मिलती है, उसको मैं पूरी तरह से बयान भी नहीं कर सकता।

परम्परावादी गीतकार के रूप में आपकी पहचान है, आप स्वीकार करते हैं?

मैंने परम्परा को जिया है, यह सही है। हमें, हमारी परम्पराओं के सहारे तो चलना ही चाहिए, लेकिन परम्पराओं में अपने अनुभव और समय के साथ नवीन अवधारणाओं को भी अंगीकार करना चाहिए, स्वीकार करना चाहिए। सामान्य शब्दों में कहूँ तो हमें परम्परा को आगे बढ़ाना चाहिए। अपने अनुभव के आधार पर उनमें नए प्रयोग किए जाने चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि हम अपनी परम्पराओं को छोड़कर कुछ भी अनैसर्गिक प्रयोग करें। जैसा गीतों में 'नवगीत' के नाम पर हो रहा है। मुक्त छंद में नई कविता की तर्ज पर 'नवगीत' पर काम किया जा रहा है, जिसमें न कोई गहराई है, न कोई विचार सौंदर्य। नवगीत के नाम पर छंदों को तोड़ा-मरोड़ा जा रहा है, अनर्गल बिंब विधानों की रचना की जा रही है, गीतों से गीतात्मकता समाप्त हो रही है, गीतों के प्रति आम आदमी की रुझान बहुत कम हो गई है, इन्हीं सब कारणों से गीत भी हाशिए पर जा रहा है, किन्तु निराश होने की आवश्यकता नहीं है, ऐसा संक्रांति काल हर क्षेत्र में आता है, परम्पराओं को जीवित रखते हुए गीतों में नए प्रयोग हो रहे हैं, नई परम्पराएँ उद्घाटित हो रही हैं। अश्वघोष, यश मालवीय, कुमार रवीन्द्र जैसे अनेक गीतकार हैं, जो गीत को नई पहचान दे रहे हैं। और भी लंबी फेहरिस्त है, जिसमें आप चाहें तो मेरा नाम भी जोड़ सकते हैं।

दीपक जी, आपने हिन्दी गजल को लेकर कई विवादास्पद वक्तव्य दिये, जिस पर आपका काफी विरोध हुआ। आप हिन्दी गजल के विरोध में भी हैं और आपने स्वयं का गजल संग्रह भी प्रकाशित करवाया है, यह दुहरे मापदण्ड नहीं हैं क्या ?

निशा जी, आपके प्रश्न को मैं सहजता से लेता हूँ। गजल के बारे में मैंने कोई वक्तव्य नहीं दिए, न ही वक्तव्य देने की स्थिति में मैं अपने को मानता हूँ। मैं एक बहुत ही

साधारण-सी त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका प्रकाशित करता हूँ 'पहला अन्तरा' नाम से, मैं उसका संपादक हूँ। मेरा अपना विचार है और जिस पर अब सहमति बन चुकी है कि गजल का हिन्दी से कोई सरोकार नहीं है, हिन्दी काव्य में गजल नाम की कोई चीज नहीं है। कुछ भूतपूर्व गीतकारों ने और अगर भूतपूर्व शब्द से ऐतराज हो तो कुछ अभूतपूर्व गीतकारों ने गीत छोड़कर उर्दू बहरों में गजलें लिखना शुरू कर दिया और उसे 'हिन्दी' से जोड़ने का प्रयास करने लगे, क्योंकि शायर (सही शब्द शाइर) कहलाने में उन्हें कुछ परेशानी महसूस हुई। समस्या सिर्फ इतनी-सी है। अगर इसे सही मान लिया जाए, तो उर्दू के शाइर, हिन्दी के कवि कहलाने लगेंगे, क्योंकि वे भी गजलें हिन्दी लिपि में छपवाते हैं, अरबी, फारसी के शब्दों से बचते हैं और हिन्दी के शुद्ध शब्दों का प्रयोग भी वे धड़ल्ले से करते हैं। वे भी केवल छंद शास्त्र उर्दू का अपनाते हैं, ऐसी स्थिति में आप शाइर और कवि में अंतर कैसे करेंगे। अब तो गजलों में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी शुरू हो गया है। इसलिए मैंने निवेदन किया था कि गजल की पोप्यूलेरिटी का उपयोग हिन्दी कविता में करने पर विचार किया जाना चाहिए, जिसके अंतर्गत नए फारमेट की चर्चा थी और साधारण शब्दों में कहूँ तो मेरा तात्पर्य था और है कि हिन्दी की काव्य रचना केवल हिन्दी के छंद विधान के अनुसार होनी चाहिए, जिसे अधिकांशतया स्वीकृत मान लिया गया है। कुछ लोगों को इसमें एतराज है। मेरा निवेदन है कि जिन्हें एतराज है वे यथावत् उर्दू की बहरों में लिखते रहें और मुनव्वर राणा, निदा फाजली, बशीर बद्र, राहत इंदौरी वाली फेहरिस्त में शान से अपना नाम शामिल कर लें। उर्दू बहुत ही लज़ीज़ और दिलकश भाषा है और वह हमारे देश में जन्मी है, इसलिए उसका स्वागत होना चाहिए। अगर हम गीत छोड़कर गजल लिखते हैं, या लिख रहे हैं तो यह भी स्वागत योग्य है। उर्दू के शाइर शब्द से हमें परहेज क्यों होना चाहिए, अब इसमें बहस की गुंजाइश है। अगर कुछ अच्छी हिन्दी पत्रिकाएँ गजलें नहीं छापतीं, तो उसका भी हमें बुरा नहीं मानना चाहिए। मजेदार बात यह है कि जिन हिन्दी कवियों को (अधिकांश) उर्दू लिपि तक का ज्ञान नहीं है, वे भी गजलों के भीष्म पितामह बनने का कौल भरते हैं।जहाँ तक मेरे नए काव्य संग्रह 'देर रात तक' का सवाल है, जिसका आपने जिक्र अपने प्रश्न में किया है, वह सही है। मैंने उसे गजल संग्रह कहा है। उसमें तीन तरह की रचनाएँ हैं। आधी मात्रिक छंदों में है, जो मेरी बाद की प्रस्तुति है। गजलों पर थोड़ा बहुत हाथ साफ मैंने भी किया। बहरों में गजलें लिखीं। कुछ सही, कुछ गलत। मेरे संदर्भित संग्रह में लगभग आधी रचनाएँ बहरों में हैं, उनमें भी आधी या उससे भी ज्यादा बहरों से खारिज हैं। जिसे मैं स्वीकार करता हूँ। कुछ गजलें सही बहरों में हैं, ऐसा उर्दू के उस्तादों का कहना है और वे 'दुष्यंत के बाद' जैसे अनेक संग्रहों में छपा है, इसीलिए पुस्तक को 'गजल संग्रह' कहा गया है। जो मेरी रचनाएँ इस संग्रह में मात्रिक छंद में हैं, वे ज्यादा पंसद की जा रही हैं, यह मेरा एक नया प्रयोग है, इसका स्वागत हो रहा है और होना भी चाहिए। काफी हिन्दी के कवि अब ऐसी गजलनुमा रचनाएँ हिन्दी के छंदों में धड़ल्ले से लिख रहे हैं, जो जगह-जगह छप भी रही हैं। मैं समझता हूँ, सबको प्रयोगधर्मी होना चाहिए, घबराने से या विषय से हटकर घिघियाने से या बकवास करने से कुछ नहीं होगा। मर्म को समझकर कर्म कीजिए।

आप भारत भवन भोपाल के वागर्थ के निदेशक, भवन के मुख्य प्रशासनिक अधिकारी एवं साहित्य अकादमी पाठकमंच पुस्तक चयन समिति से भी जुड़े रहे। साहित्यिक राजनीति और साहित्यकारों की खेमेबाजी के बारे में आपका क्या मत है?

भारत भवन एक अंतरराष्ट्रीय स्तर की साहित्य, संस्कृति और कलाओं की संस्था है,उसका निदेशक रहना, सचमुच मुझे बहुत गौरवपूर्ण लगा। पुस्तक चयन समिति मैं भी मैं बरसों रहा। लेकिन मैं आपके प्रश्न का आशय समझ गया। सचमुच इन स्थानों पर राजनीति तो होती ही है और ये सारी नियुक्तियाँ भी राजनैतिक ही होती हैं, इसीलिए मैंने इन पदों पर जितने दिन भी काम किया, शान से किया और जब राजनीति शुरू हुई तो शान से छोड़ दिया। साहित्य में राजनीति वे ही लोग करते हैं, जिनकी साहित्यिक क्षमताएँ, क्षीण हो जाती हैं या यूँ कहें, जो चुक जाते हैं, जिनमें साहित्यिक प्रतिभा और ऊर्जा होती है वे अखाड़ेबाजी नहीं करते। अखाड़े में क्या होता है, जोर आजमाइश जिसमें हाथ-पैर टूटने के पूरे खतरे होते हैं। साहित्य में जितने अखाड़ेबाज मिलेंगे, अधिकांशतया लँगड़े-लूले। स्वस्थ व्यक्ति कभी अखाड़ेबाजी नहीं करता, यह अपने आपमें एक मानसिक रोग है।

सुना है आप साहित्यिक सम्मानों, पुरस्कारों आदि से बहुत परहेज करते हैं। एक-दो बार आपने सम्मान पुरस्कार लेने से मना भी किया, लेकिन आप भारत सरकार और म.प्र. शासन साहित्य अकादमी तक के पुरस्कार स्वीकार कर चुके हैं, ये दुहरे मापदण्ड कैसे?

यहाँ भी राजनीति है, चाटुकारों को प्रसन्न करने के लिए पुरस्कार बाँटे जाते हैं, यही गैर सरकारी संस्थाएँ भी करती हैं। किसी सम्मानित संस्था द्वारा निष्पक्ष भाव से सम्मान दिया जाता है, तो ग्रहण करने में कोई हर्ज नहीं है। आजकल सम्मान पाने की लालसा भी एक मानसिक रोग की तरह है। मैंने कई ठीक-ठाक लिखने वाले लोगों को भी सम्मान लेने के लिए ऐरे-गैरों के साथ कतार में खड़े हुए देखा है।

मुझे भारत सरकार ने मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार दिया, मैंने सहर्ष स्वीकार किया। म.प्र. शासन साहित्य अकादमी का 'पं. भवानीप्रसाद मिश्र पुरस्कार' और कई अन्य प्रख्यात अखिल भारतीय पुरस्कार मैंने स्वीकार किये। म.प्र. लेखक संघ का मैं आजीवन सदस्य हूँ। उनकी पुरस्कार चयन समिति में रहकर खूब तमाशे देखे ? एक बार चयन समिति के सदस्य के रूप में अध्यक्ष द्वारा मुझे यह काम सौंपा गया कि मैं एक साहित्यकार को इस बात पर राजी करूँ कि इस बार का पुरस्कार तुम्हारी बजाए किसी दूसरे को ले लेने दो, अगले वर्ष यह तुम्हें दे देंगे। मेरे मन ने कहा कि ऐसी संस्था से सम्मान लेना,अपने आपको अपमानित करना है, बस यही वजह थी मना करने की। अच्छी प्रतिष्ठित संस्थाओं के अनेक सम्मान और पुरस्कार मैंने ग्रहण किए हैं। अनेक सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं की चयन समितियों का मैं सदस्य रहा हूँ, लेकिन ऐसी बेईमानी मेरे स्वभाव में नहीं है।

लम्बी साहित्यिक यात्रा के बाद उम्र के इस पड़ाव पर गीत-गजल के लगातार गिरते स्वर से आप कितने चिंतित हैं?

आज हिन्दी साहित्य समाज से दूर होता जा रहा है। नई पीढ़ी का तो साहित्य से कोई सरोकार ही नहीं है। कविता की स्थिति तो और भी खराब है। गजल को लोग पसंद करते हैं, पर वह हिन्दी-उर्दू के झमेले में उलझ गई। लोग समझ ही नहीं रहे हैं कि गजल, गजल ही होती है, हिन्दी-उर्दू गजल नहीं। हिन्दी कवियों की गजलों में गहराई व गजलियत है ही नहीं, वह सिर्फ कागज खराब कर रहे हैं। गीत को नवगीतकारों ने नष्ट कर दिया। उसमें लय-छन्द-गेयता गायब है, नई कविता की तर्ज पर नवगीत रचा जा रहा है, जो नई पीढ़ी क्या, पूरे समाज के मन को स्पर्श नहीं कर पा रहा। गीत को किसी उपनाम या विशेषण की आवश्यकता नहीं है। गीत में गेयता अनिवार्य है, उसकी परिभाषा भी यही है। नवगीत संवेदनारहित सपाट बयानी है। यह गीत या यूँ कहें, हिन्दी साहित्य का संक्रान्ति काल है लेकिन परिदृश्य बदलेगा। मनुष्य संवेदनशील, भावुक प्राणी है, वैसे भी किसी ने ठीक ही कहा है पृथ्वी पर जब मनुष्य नहीं था, गीत प्रकृति में जीवित था और अगर पृथ्वी पर मनुष्य नहीं रहेगा, गीत तब भी जीवित रहेगा।

अंत में दीपक जी आपको मेरे इतने प्रश्नों का उत्तर देने के लिए धन्यवाद। क्या आप पाठकों/साहित्यकारों को कोई संदेश देना चाहेंगे।

मैं इतना बड़ा व्यक्ति नहीं हूँ कि कोई संदेश दूँ, लेकिन इतना निवेदन तो कर ही सकता हूँ कि साहित्यकार को सहृदय और संवेदनशील होना चाहिए। अखाड़ेबाजी और राजनीति से दूर रहकर समाज को स्वस्थ साहित्य प्रदानकरें और साहित्य के प्रति पाठकों की रुचि जागृत करें।

190, सूरज नगर, राधास्वामी सत्संग, भदभदा,
भोपाल (म.प्र.) 462044 मो. 09826040776

अणु शक्ति सिंह की कविताएँ

स्त्री के एकाकीपन के अनेक संस्तर होते हैं-जटिल और पीड़ादायक। एक अनचाहे शून्य से भरी हुई स्त्री एक सुलगता सवाल है जिसे हल भी उसे ही करना है। युवा कवयित्री अणु शक्ति सिंह की कविताएँ औरत के इसी अकेलेपन और उदासी की व्यथा-गाथा है। कवयित्री ने इसके लिए नागर संवेदनों को चुना क्योंकि यही जीवन उनके करीब है। स्त्री के इस अकेलेपन में वेदना, शोक,कसक, नॉस्टैल्जिया, प्रेम और धोखा सब कुछ है। अणु शक्ति ने इन कविताओं में प्रमुखत: एकल मातृत्व (सिंगल मदर या मदरहुड) को केन्द्रीय विषय बनाया है। सिंगल मदर को लेकर लिखी गई ये कविताएँ समकालीन हिन्दी कविता के लिए एक दस्तक भी हैं। 'अकेली माँओं को मरने की इजाजत नहीं' उस अकेली माँ की दास्तान है जिसके लिए मृत्यु का वरण सम्भव नहीं। उसके लिए जिजीविषा किसी दूसरे के लिए शिफ्ट हो चुकी है-'वह सोचती है/ इन रेखाओं को लम्बा होना ही था/ बगल में सोते बच्चे की खातिर।' हालांकि यह बात एकल पिता के लिए भी लागू होती है। 'मेरे पुत्र के पिता' कविता दरअसल विच्छेद का दंश झेलती स्त्री की खूबसूरत प्रेम कविता है। इसमें नॉस्टैल्जिया अपने पति के लिए एक प्रेम और सखा भाव के साथ आता है। यहाँ प्रतिशोध और अवसाद के बजाए त्रासदी को भी सकारात्मक रूप में लेने का आग्रह है-? तुम मेरे पति थे कभी/ मेरे पुत्र के पिता रहोगे सदैव।' 'प्रेमरत स्त्रियाँ' प्यार में डूबी स्त्रियों का बखान है। रेखांकित करने योग्य यह कि ये स्त्रियाँ 'प्यार अंधा होता है' जैसी घिसी उक्तियों के बजाय 'मायोपिक हो जाती हैं' जैसी नई वैज्ञानिक शब्दावली के साथ हैं। अंधत्व की जगह धुँधला विवेक है जो कि एक व्यावहारिक यथार्थ है। 'मार्च क्लोजिंग के इंतजार में' एकदम नया विषय है। यह कविता थोड़ी अंडरटोन अवश्य है लेकिन काव्य-उपादानों और बिम्बों के संयोजन से नितांत नई भाषा गढ़ती है। एकाउंट की भाषा का जीवन क्षणों ये यह तादात्म्य और समांतरता देखते बनती है-'लग गया हो उम्मीद पर उम्मीद से ज्यादा टैक्स।' 'अबोला' भी नॉस्टैल्जिया को केन्द्र में रखकर रची प्रेम कविता है जिसमें छूटे और छूटते हुए को पुन: पा लेने का एक बेचैन प्रश्नाकुल मन है-'क्या तुम तब भी गुनगुनाओगे ?' फिल्मी गीतों और दृश्यों के माध्यम से प्रेम और बेचैन का एक जीवंत दृश्यबंध इस कविता के जरिये रचा गया है। 'तत्वमसि' व्यक्तित्वांतरण को केन्द्र में रखकर लिखी गई प्रेम कविता है। यहाँ एक खिलंदड़ा भाव भी है लेकिन सावधान पाठ के बाद यह प्रेम में अपूर्णता की व्याप्ति की कविता हो जाती है। प्रेम केवल आपके आधे को पूरा तो करता ही है लेकिन वह दो व्यक्तित्वों की परस्पर आवाजाही भी तो हो सकता है। 'बीतना एक भारी दिन का' में भी रिश्तों के टूटन की छाया है जब बच्चा स्कूल से घर के बजाय 'डे केयर' लौटता है। दु:ख और छटपटाहट का यह अनवरत सिलसिला जब दिनचर्या ही बन जाए तो -'एक भारी दिन खत्म होता है/ दूसरे की नींव डाल कर।' यह कविता अपने विक्षोभ से पाठक को जकड़ लेती है।

निरंजन श्रोत्रिय

'एकल माँ-बाप के बच्चे' भी उसी व्यथा का मार्मिक विस्तार है। बच्चों का अधूरा अभिभावक संसार उन्हें किस कदर बचपन विहीन कर देता है, यह कविता उसी यथार्थ को अभिव्यक्त करती है। समय से पहले ही बड़े हो जाने की मजबूरी कविता में ठोस ब्यौरों के साथ आती है-एक मार्मिक अनुभूति से आपको झिंझोड़ती! 'चालू औरत' पुरुष प्रधान समाज द्वारा स्त्रियों की 'मॉरल पुलिसिंग' करती प्रवृत्ति पर सीधा प्रहार है। औरत के स्वातंत्र्य, स्वायत्तता और अस्मिता को प्रचलित मानकों के नीचे कुचलने की साजिशों को यह कविता बेनकाब करती है। 'मित्र पत्नी' मजाहिया अंदाज में लिखी कविता जरूर है जो हमें गुदगुदाती है लेकिन कहीं न कहीं पुरुष दृष्टि का पता भी देती है। 'ऑफिस बॉय' कविता में हमारी दफ्तरी कार्यशैली, अहं और पदानुक्रम की मनोवैज्ञानिक पड़ताल की गई है। हमारे सिस्टम में यह प्रताड़ना एकदिशीय ही होती है। 'घर से लौटना' कविता में नगरीय विस्थापन की विवशताएँ और दर्द है। हमारे सम्बन्धों की ऊष्मा और आत्मीयता किस कदर कंक्रीट जंगल में फैले आर्थिक जंजाल में दम तोड़ रही है, यह कविता उसका सच्चा बयान है। युवा कवयित्री अणु शक्ति सिंह की ये कविताएँ दाम्पत्य जीवन की जटिलताओं, स्त्री के अकेलेपन और छीजते रिश्तों से उपजी उदासी की मार्मिक कविताएँ हैं। एकाकीपन और टूटन की इस अभिव्यक्ति में स्त्री की वेदना तो उभरती है लेकिन इस 'विपत काल' के लिए उनमें कोई गुस्सा या घृणा नहीं है। मुझे गोविन्द निहलानी की फिल्म 'दृष्टि' की डिम्पल कापड़िया का वह संवाद याद आता है-'मैं नफरत करने में माहिर नहीं।' कवयित्री का यह सकारात्मक एप्रोच समाज में 'सुदीर्घ दाम्पत्य' की कामना भी है।

अकेली माँओं को मरने की इजाजत नहीं

आधी रात के बाद भी
नींद आँखों के दूर बहुत दूर है...
बुखार में तपता हुआ बदन
दर्द से अकड़ते हुए
पुकारना चाहता है कई-कई नाम

रात इतनी सूनी है कि
मन का स्वर भी कुंद हो जाता है

ऐसे ही सूने पलों में
सबसे करीब लगती है
मोबाइल फोन की चमकती स्क्रीन
दुनियादारी में मशगूल हो जाना
दर्द को भुलाने का बेहतरीन नुस्खा है।

स्क्रीन पर कई खबरें चमकती हैं
पहली खबर है एक माँ की
जिसे कैंसर लील गया था नींद में
और बगल में सोती रही थी
तीन साल की छोटी बच्ची...

सिहर उठती है फोन थामी उँगलियाँ
खबर पढ़रही एकल माँ की
सहम कर अपना हाथ देखती है
जिन्दगी की रेखा खूब लम्बी है
यह सुकून की बात है...

वह सोचती है
इन रेखाओं को लम्बा होना ही था
बगल में सोते बच्चे की खातिर
ईश्वर एकल माँओं को मरने की इजाजत नहीं देता
उसे भी बनाए रखना है संतुलन!

मेरे पुत्र के पिता

मेरे पुत्र के पिता
कई साल बीत गए हैं
उस दिन को
जब मैं और तुम
आखिरी बार साथ बैठे थे...

पूर्वोत्तर की चढ़ाइयों में महीनों बिताकर तुम
लौटे थे महीने भर की छुट्टी पर
मैंने सूटकेस खोलकर
सबसे पहले निकाला था
तुम्हारा ऑलिव ग्रीन यूनीफॉर्म
तमाम विरोधाभासों के बावजूद
तुम उस यूनीफॉर्म में
भले लगते थे मुझे...

कभी तुम्हारा कॉलर ठीक करते हुए
कभी क्रीज बिठाते हुए
मेरा प्यार उमड़ आता था
हरे रंग से नहाए उस कैमोफ्लॉज पर
हम दोनों के बीच का सारा प्यार
मैं उँडेल देती थी तुम्हारी पोषाक पर
मोड़ने से पहले चूम लेती थी
कंधे के स्ट्रैप,
तुम्हारी जैतूनी बेल्ट और
तुम्हारी टोपी
कि मेरी अनुपस्थिति में
मेरा नेह तुम्हारे इर्द-गिर्द घूमता रहे

अब यह बात पुरानी हुई
अब हम बात नहीं करते हैं
अदालती सम्मन भेजा करते हैं
तारीखों पर तारीख की दुहाई देकर
एक-दूसरे की जीत की
खुशियाँ मनाया करते हैं
पर वह कल से पहले तक की बात थी...

तुम मेरे पति थे कभी
मेरे पुत्र के पिता रहोगे सदैव
उससे पहले सैनिक हो
वही सैनिक जिसकी जैतूनी पोषाक
मुझे सबसे अधिक इंद्रधनुषी लगती थी
मेरे प्रिय सैनिक
हम समानान्तर चल रहे दो लोग हैं
जिन्हें अब कभी नहीं मिलना है
किंतु मेरा नेह मेरी संवेदनाएँ
इस विपत काल में
अचानक ही तुम्हारे साथ हो गई हैं...

मुझसे कह रही हैं
सब इंतजार करेंगे
तलाक के कागजों पर अदद हस्ताक्षर भी
उत्साह बढ़ाने के तमाम शब्द
कहीं लुप्त हो गए हैं
अब बस यही दुआ बची है कि
तुम प्रखर रहना
प्रखर लौटना अपने घर
हर बार छुट्टी में...

वह घर जो कभी मेरा था
वहाँ जाने कौन तुम्हारे सूटकेस खोलता होगा...
तुम्हारा लौटना जरूरी है
मेरे कहीं भी होने से ज्यादा, बहुत ज्यादा।

प्रेमरत स्त्रियाँ

प्रेम में रत स्त्रियाँ
मायोपिक हो जाती हैं
कि धुंधला जाती हैं
दूर की सभी बातें
और उन्हें दिखती हैं
सिर्फ वे चीजें जो सामने हो...

निकट दृष्टि दोष से व्याप्त प्रेमिल आँखें
हर बिम्ब को दोहरेपन में देखती हैं...
आँखें मीचते हुए
सब साफ देखने की कोशिश में
नहीं दिखती हैं वे तमाम चीजें
जिनका प्रेम से वास्ता नहीं...

आधी नजरों से दुनिया देखती इन आँखों में
भर जाती है झुंझलाहट और ईर्ष्या
हर बार
जब भी उनके बिम्ब के मध्य खड़ा दिखता है
कोई प्रतिरोध...
संभवतः अतिशयोक्ति हो किन्तु
साफ-साफ न देख पाने का यह दर्द करीबन
उतना ही कष्टप्रद है
जितना डिमेन्शिया...

प्रेम पीड़ित स्त्रियाँ चाहती हैं उपचार मगर
आँखों पर चढ़ा प्रेम का चश्मा
इतना कारगर नहीं होता कि
मुकम्मल कर पाए
छः बाय छः की नजर...।

मार्च क्लोजिंग के इंतजार में

उस महीने जब पेड़ से पत्ते बिखर रहे होते हैं
कुछ टूटता जाता है हमारे अंदर भी
मार्च की बीतती अफरा-तफरी में
दिन कुछ अजीब-सा होता जाता है
जैसे खीरे की जड़ में कुछ कड़वा-सा रह जाता है
छूट जाते हैं मोह के रास्ते
नेह के दरवाजे किर्र-किर्र करने लग जाते हैं।
सब पा लेने की जिद में
बहुत कुछ छूटता जाता है...
जैसे निवेश की कोई पर्ची भरने को रह गई हो
लग गया हो उम्मीद पर उम्मीद से ज्यादा टैक्स
इसी महीने जब अकाउंट्स वाले
सब निबटा रहे होते हैं...
हमारे भीतर का भी कुछ जल रहा होता है
पार्क में जलाए जा रहे सूखे पत्तों के साथ...।

अबोला

नीम अकेलेपन में
जब मैं खो चुकी होऊँगी
दूर जा चुकी होऊँगी
सारे खयालों से
किसी फिल्मी सीन में
अपने आप को ढूँढरही होऊँगी
तब क्या तुम्हें मेरी याद आ रही होगी ?
कुछ गाने बज रहे होंगे
कुछ तेज, कुछ धीमे
तुम भी कुछ गुनगुना रहे होगे
पर मैं नहीं होऊँगी ...
तुम्हें सुनने को
क्या तुम तब भी गुनगुनाओगे ?

तत्वमसि

कभी-कभी मैं चाहती हूँ 'तुम' हो जाना
जब मैं 'तुम' बन जाऊँ, तुम 'मैं' बन जाना
जब तुम 'मैं' बन जाओगे
थोड़े-से झक्की भी हो जाओगे
थोड़े निर्भीक थोड़े आशिक
जब तुम 'मैं' बन जाओगे
प्यार करना भी सीख जाओगे
तब पता है मैं क्या करूँगी ?
मैं 'तुम' बनकर खुद पर हँसूँगी
दूर से तुम्हें देखूँगी
और पलट कर खो जाऊँगी
किसी भीड़ में
जहाँ मुझे वापस 'तुम' न होना पड़े।

बीतना एक भारी दिन का

सर पर लोहे के भारी हथौड़े-सा बजता हुआ
खत्म होता है एक भारी दिन...
अपने आखिरी लम्हों में
आँखों के किनारे नमी छोड़ता हुआ

भारी दिन औचक ही भारी नहीं होता
कई दिन और महीनों का बहुत कुछ

इकट्ठा हो जाता है अचानक उस दिन
जब हँसने की तमाम कोशिशें दब जाती हैं
गुमनाम लांछनों के आगे

अथाह कामों के बीच
गाड़ी के शोर में
कभी तेजी से बीतता दिन...

कभी बस सरकता दिन
स्कूल बस से घर आने की जगह
डे केयर रवाना हो चुके बच्चे की चिन्ता में
इस कदर भारी होते दिन को थम जाना था
उतार देना था दिमाग से तमाम बोझ
रूक जाना था समय की डोर को पकड़ कर
दे देना था अभयदान चिंता मुक्ति का...
किन्तु धरती की धुरी तक कौन पहुँचा है?
एक भारी दिन खत्म होता है
छूसरे की नींव डाल कर...।

एकल माँ-बाप के बच्चे

कुछ बच्चे सीख लेते हैं
समय से पहले समझदार हो जाना
पार कर लेना अक्ल की वह महीन धारी
जिसे बचपन से ढका रहना था...
इन बच्चों में कुछ होते हैं
एकल माँ-बाप की संतान
कभी ममता से वंचित
कभी पितृत्व रहित
इन बच्चों में छुपा बैठा होता है
कोई समझदार वयस्क ...

ऊँघती माँओं के कमरे की बत्ती बन्द कर देना
बीमार पिता को सुबह की चाय दे जाना
कहना सो जाओ कुछ मिनट
कि मैं रख लूँगा अपना खयाल
लगा लूँगी अपना बस्ता
कि तुम्हें हो थोड़ा आराम

न जाने कहाँ कि जिद पाले ये बच्चे
बन जाते हैं नमक की पोटली-से
पिघल जाते माँ की तकलीफ देखकर
घुल जाते उनके आँसुओं में
ठीक वैसे ही
जैसे माँएँ घुलती हैं बच्चे की चिन्ता में

जाने कहाँ से सीख जाते हैं ये बच्चे
उम्रदराज हो जाना अपने ही पालकों से

जैसे वर्ड्सवर्थ की कविता के बच्चे
होते हैं अपने ही जनक के पिता...।

चालू औरत

लोराती हुई आँखों को
जबरदस्ती सुला कर
हर सुबह वह उठती है
सूजी हुई आँखों के साथ

घर के काम निबटाते
लंच बॉक्स पैक करते
स्कूल-बैग लगाते
देख लेती है अड़ोस-पड़ोस के
सारे अच्छे पिताओं को
अपनी संतानों के हाथ पकड़े
बस के इंतजार में
हँसते-गाते

गेट खोलते हुए वह देखती है
कई जोड़ी आँखें
वह खींचती है अपना शॉर्ट्स
तनिक और नीचे
ताकि बचा सके अपने पैरों को
लोलुप नजरों से और
अपने चरित्र को किसी अतिरिक्त प्रमाणपत्र से...

वह चरित्र जिस परित्यक्ता होने का
लाल ठप्पा दूर से ही टहकता है
इस कदर कि निगाहें बचा कर
उसके भरे-पूरे शरीर पर
नजर गहा रहे मर्द कहते हैं अपनी पत्नियों से
'चालू औरत है,
इससे और इसके बच्चे से दूरी बरतना'।

मित्र-पत्नी

घर से निकलते हुए
मैं अक्सर ठिठक जाता हूँ
जिस वक्त मैं बाहर निकलता हूँ
ठीक उसी वक्त वह बालकनी में होती है
भीगे कपड़े फटकारती हुई...
उसके धुले कपड़े की गंध
भर जाती है मेरे नथुनों में
मदहोश मैं सोचता हूँ कि क्या
उसकी गंध भी ऐसी ही होगी
मैं घड़ी देखता हूँ
मुझे देर बस होने वाली है
वह नीचे झाँकती है
और मैं कनखियों से उसे वापस देखता हूँ
मैं और उसका पति
हम दोनों साथ चल पड़ते हैं
मित्रों की भार्याएँ यूँ ही दूर से रिझाती हैं।

ऑफिस बॉय

जब भी वह मुझे 'यस सर' कहता है
मेरा सीना फूल जाता है
सुबह जब मैं उसकी बनाई चाय को
वापस लौटाता हूँ
रोमांचित हो उठता हूँ
मुझे याद आती है बीती शाम
जब मैं बॉस के केबिन से
टका-सा मुँह लेकर लौटा था..
मैंने झपटे में देखा था
वह ऑफिस बॉय मुस्कुरा रहा था
मुझे याद आता है
मैं भी तो हुक्म चलाने के काबिल हूँ
मैं उसे तीखी, नमकीन,
मीठी चाय बनाने को कहता हूँ
वह हतप्रभ मुझे देखता है...
मैं कहता हूँ 'गेट लॉस्ट'
वह मुँह लटका कर चला जाता है
मैं संतोष से भर जाता हूँ।

घर से लौटना

हर बार घर से लौटते वक्त
माँ पकड़ाती है मुझे
ठेकुए और मठरी का डब्बा
और पिताजी देते हैं
स्नेह का आलिंगन
मैं माँ से डब्बा लेते वक्त देखता हूँ
उसकी उँगलियों की पोर को
जो हो चली हैं
आगे से थोड़ी खुरदरी
शायद सालों पहले
हुई थी उसकी आखिरी देखभाल
पिता से आलिंगन लेते वक्त
मैं महसूस करता हूँ बिछड़ जाने का दुख
मैं रो उठता हूँ अंतर्मन में
मैं फैसला लेता हूँ
अब इस बार
अकेला नहीं जाऊँगा
इस खयाल के साथ ही
मुझे आता है एक और खयाल
दो कमरों के मकान में
कहाँ किसको रख पाऊँगा
मेरी निजता का क्या होगा
क्या होगा आधुनिक सज्जा का
क्या माँ की सूती साड़ी
पिताजी का पुराना पायदान
उसमें खप पाएगा ?
सप्ताहांत की छुट्टियाँ
यूँ ही बर्बाद हो जाया करेंगी
मैं अंदर तक डर जाता हूँ
भूल जाता हूँ
जो भी कुछ पल पहले सोचा था
उठाता हूँ मठरी का डब्बा
और पिता के आलिंगन से
निकल पड़ता हूँ
मेरी मंथर गति त्वरित हो जाती है
मैं वापिस आना चाहता हूँ
अकेला, निरा अकेला।

नाम : अणु शक्ति सिंह
जन्म : 19 अगस्त 1985, सहरसा (बिहार)
शिक्षा : माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय से पत्रकारिता स्नातक
सृजन : कुछ कविताएँ प्रकाशित, एक उपन्यास 'शर्मिष्ठा' प्रकाशनाधीन
सम्प्रति : कॉपी राइटर/ सोशल मीडिया अधिकारी (लव मैटर्स इंडिया)
सम्पर्क : 177 जी, गरूड़ अपार्टमेंन्ट, पॉकेट 4, मयूर विहार 1, नई दिल्ली-91
मोबाइल : 9540282095

॥ 'अपने समय में' 'कला की संगत'॥

(संतोष चौबे का साहित्य-कला-चिन्तन और आलोचना-विवेक)

धनंजय वर्मा

संतोष चौबे ने अपनी नयी पुस्तक 'कला की संगत' में एक उल्लेखनीय बात कही है : ''व्यक्तिगत रूप से उपन्यास को लेकर मेरा पहला क्राइटेरिया है - उसका पाठनीय होना।' यह है तो एक सामान्य-सी बात, लेकिन विशेष रूप से उल्लेखनीय इसलिए है कि अब सामान्य-सी बातों पर भी लोगों का ध्यान अक्सर नहीं जाता। मैं तो कहूँगा कि उपन्यास ही क्यों, किसी भी रचना, किसी भी लेखन को अव्वल तो पठनीय होना ही चाहिए। हाँ, पठनीयता के भी स्तर होते हैं। मसलन् आप रानू-शानू के उपन्यासों को जिस रौ में पढ़जाते हैं, उसी में प्रेमचंद को नहीं पढ़सकते। प्रेमचन्द और रेणु को जिस आवेग में आप पढ़ते हैं, उसी में हजारीप्रसाद द्विवेदी को नहीं पढ़सकते और जिस 'मूड' या मानसिकता में आप उपन्यास पढ़ते हैं, उसी में दर्शन या विज्ञान को नहीं पढ़सकते। बहरहाल, मैं संतोष चौबे को बधाई देता हूँ कि उनकी ये दोनों किताबें न सिर्फ पठनीय हैं, बल्कि विचारोत्तेजक भी हैं। पठनीय तो बहुत-सी किताबें होती और हो सकती हैं, लेकिन कितनी आपको अनुभव-समृद्ध और दृष्टि सम्पन्न बनाती हैं?

सर सी.पी. स्नो ने बहुत पहले 'टू कल्चर्स' की बात की थी- एक कला की और दूसरी विज्ञान की। उनकी शिकायत थी कि कला की संस्कृति के लोग और यहाँ तक कि कलाकार भी विज्ञान की संस्कृति से महरूम होते हैं और विज्ञान में रुचि रखने वाले और वैज्ञानिक भी कला से अनभिज्ञ होते हैं। संतोष चौबे ने भी इस ओर हमारा ध्यान खींचा है।

एक और संस्कृति हमारे जमाने में खूब फली-फूली है - वाणिज्य की संस्कृति बशर्ते उसे संस्कृति कहा जा सके। वाणिज्य के लोग तो विज्ञान और कला-संस्कृति से अछूते तो होते ही हैं, समकालीन परिदृश्य में कला और विज्ञान दोनों क्षेत्रों में वाणिज्य ने दूर-दूर तक आधिपत्य जमा लिया है। संतोष चौबे की इन पुस्तकों में, शुकर है कि, वाणिज्य की संस्कृति ने कोई हस्तक्षेप नहीं किया है। उनके साहित्य-कला-चिन्तन और आलोचना-विवेक में जहाँ कला के मानवीय सरोकार स्पन्दित हैं, वहीं वे वैज्ञानिक सोच की वस्तुपरकता से भी समृद्ध हैं।

मैं शुरूआत करता हूँ 'कला की संगत' की भूमिका 'आलोचना के काम' से। उन्होंने इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में आये परितर्वन की तेज गति का जिक्र किया है। मुझे याद आता है बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ही विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष डॉ. कोठारी ने अपने एक व्याख्यान में 'ज्ञान के विस्फोट' की गति को सरल शब्दों में समझाते हुए कहा था कि विश्व के पटल पर एक दशक में ज्ञान की जो वृद्धि होती है वह दुनिया में अब तक हुई वृद्धि से दुगनी हो जाती है। लेकिन हम गौर करें इस 'भीषण' प्रगति ने सभ्यता का जितना विकास किया है, संस्कृति को निस्बतन उतना ही पीछे धकेला है। संतोष चौबे भी इससे चिंतित हैं ''विज्ञान और तकनीक ने जहाँ मनुष्य को एक स्तर पर शक्तिशाली बनाया, वहीं दूसरी ओर साहित्य और कलाओं से उसकी बढ़ती दूरी ने उससे उन आधारों को छीन लिया जो जीवन में स्थिरता और खुशी प्रदान करते थे।'' मैं इसमें इतना और जोड़ना चाहूँगा कि साहित्य-कला और मानविकी का विकास संस्कृति का लक्षण ही नहीं, कारक भी है जो सभ्यता और तकनीकी प्रगति की अँधी दौड़ में हमसे छूटता जा रहा हैं

आलोचना पर संतोष चौबे को टिप्पणी पहली नजर में आलोचना विरोधी लग सकती है जब वे कहते हैं ''हमारी आज की आलोचना पहले तो कोहरे इत्यादि की बात करती है फिर व्यक्तिगत पर आ जाती है। कभी विद्वता के आतंक से नव रचनाकार को पददलित करे हुए कभी रचना परम्परा से उसे पूरी तरह दूर रखते हुए और कभी उसकी भाषा और अस्मिता का अपमान करते हुए जो उसे इसी देश और समाज से प्राप्त हुए हैं। वह एक ऐसे नकारात्मक की रचना करती है जहाँ से रचनात्मक आनन्द तिरोहित हो जाता है।'' यह एक निश्चित किस्म की आलोचना का विरोध तो है ही और जायज विरोध भी है, लेकिन इस किस्म की आलोचना को हम जेनुइन आलोचना ही कैसे कहें? संतोष चौबे ने साहित्य विशेषकर कविता के सामने 'दृश्य से पूरी तरह घिर जाने', 'बाजारीकरण' और 'भाषा को अनावश्यक प्रभावों से बचाकर अधिक समृद्ध करने की 'जिन तीन चुनौतियों का जिक्र किया है उनसे उन्होंने आलोचना की जिम्मेदारियों, उसकी प्रकृति और प्रक्रिया का भी वाजिब संकेत किया हैं

दोस्तों, मुझे लगता है आलोचना को लेकर हम लोगों के जेहन में कुछ अजब-सी गलतफहमियाँ घर कर गई हैं। अक्सर लोग उसे नुक्ताचीनी समझ लेते हैं, उसे गुण-दोष-कथन तक महदूद कर देते हैं। दरअसल आलोचना का मतलब ही देखना है, मैं उसे समग्रता में देखना कहता हूँ। वह रचना की सहयात्रा ही नहीं, उससे संवाद करती हुई उसकी अन्तर्यात्रा, उसके अन्तरतम में पैठना भी है। संतोष चौबे ने उसे उचित ही विचार प्रक्रिया भी कहा है। वे कहते हैं ''मेरी कोशिश है कि मैं रचनाकार के पास जाऊँ। देखूँ कि वह क्या रच रहा है। उसकी रचना प्रक्रिया क्या है और कैसे वह उसका विस्तार कर सकता है। मैं 'बड़े' और 'छोटे' की बहस में नहीं हूँ, क्योंकि जैसा मुक्तिबोध ने कहा 'हर व्यक्ति में हीरे के कण छुपे हैं और उन्हें पहचाना जा सकता है।'' 'बड़े' और 'छोटे' की बहस से पहले, मैं एक जरूरी बात भी कह दूँ कि इधर आलोचना के प्रति असहिष्णुता बढ़ी है। वह चाहे विचारधारा के नाम पर हो या किसी गैर साहित्यिक वजह से हो हम असहमति का आदर नहीं करते, उसे सहन भी नहीं कर सकते। जो हमसे असहमत हैं उसे हम अपना 'आलोचक' ही नहीं 'विरोधी' और 'दुश्मन' भी समझते हैं और उससे व्यवहार भी उसी तरह करते हैं। राजनीति और समाज में ही नहीं साहित्य में भी असहमति असह्य हो गयी है- यहाँ तक कि खुद आलोचक भी आलोचना के प्रति असहज और बैरभाव पाले होते हैं। 'बड़े' और 'छोटे' की बहस के सन्दर्भ में मुझे दो प्रसंग याद आ रहे हैं - एक मेरा पहला इन्टरव्यू - लेक्चरर का, लोकसेवा आयोग में। मुझसे सवाल किया गया- 'निराला और प्रसाद में बड़ा कवि कौन है?' मैंने भरसक विनम्रता से जवाब दिया था- 'साहित्य में हमें इस तरह से तो नहीं पढ़ाया गया। एम.ए. पूर्वार्द्ध में मैंने प्रसाद के समग्र साहित्य का अध्ययन किया है और उत्तरार्द्ध में निराला के समग्र काव्य पर मेरी यह थीसिस है।' अध्यक्ष महोदय ने शाबासी

दी थी। और याद आता है- राजेश जोशी एक पत्रिका निकालते थे 'इसलिए'। कमलाप्रसाद के साथ हम लोगों ने तय किया कि 'दूसरा सप्तक' के वरिष्ठ कवि हरिनारायण व्यास पर केन्द्रित उसका एक विशेषांक निकाला जाए। उस वक्त मैं संस्कृति विभाग में ओ.एस.डी. था और दादा व्यास 'भारत भवन' के 'वागर्थ' में निदेशक। संस्कृति सचिव कवि आलोचक अशोक वाजपेयी अपनी पहली आलोचना पुस्तक 'फिलहाल' में व्यासजी पर एक टिप्पणी लिख चुके थे। कमलाप्रसाद ने मुझसे कहा तुम अशोक जी से भी लिखने के लिए कहो। मैंने उनसे निवेदन किया। आपको सुनकर हैरानी होगी, मुझे तो हुई थी। उन्होंने कहा- Do you think Hari Narayan Vyas is such a major poet ? मैं चौंका। मैंने भी भरसक विनम्रता से जवाब दिया- No body has authorised me to pronounce such a judgement ! हम लोगों को पहले ही समझ लेना चाहिए था कि एक आई.ए.एस. अफसर अपने मातहत पर कोई लेख कैसे लिख सकता है ?अजब एक तमाशा हमारे यहाँ चला हुआ है- मसलन् अज्ञेय बड़े या मुक्तिबोध ? नरेश मेहता ने एक बातचीत में अच्छी बात कहीथी- 'दरअसल यह अज्ञेय के भक्तों और मुक्तिबोध के भक्तों के बीच का झगड़ा है।' बहरहाल...

एक खासी महत्त्वपूर्ण बात संतोष चौबे ने कही है : ''मुझे लगता है कि कविता संगीत के पास जाती है और संगीत कविता के पास। कहानी नाटक के पास जाती है और नाटक कहानी के पास। कविता कहानी के पास भी जा सकती है और कहानी चित्रकला से भी प्रभाव ग्रहण कर सकती है। विधाओं के बीच ये आवाजाही मुझे बहुत आकर्षित करती है और एक हद तक आवश्यक भी लगती है।''... दरअसल यह विधाओं के बीच आवाजाही भर नहीं है, विधाओं बल्कि कलाओं के बीच अन्तर्निर्भरता भी है। उत्तर आधुनिक विमर्श में इस अन्तर्निर्भरता का बड़ा शोर है। इस अन्तर्निर्भरता की अवधारणा भी मूल रूप से पश्चिम या यूरोप से नहीं, बल्कि भारत से आई है। मैंने अभी-अभी राजीव मल्होत्रा की एक पुस्तक पढ़ी है- इन्द्राज नेट। उसके इस एक उद्धरण पर गौर करें : Originating in Atharvaved, the concept of Indira's net is a powerful metaphor for inter-connectdness. According to this metaphor nothing ultimately exists seperately by itself and all boundaries can be deconstructed. (क्या आपको जाक डेरिडा के विसंरचनावाद की याद आई?) Indira's net symbolises the universe as a web of connections and interdependence among all its members where in every member is both manifestation of the whole and inseperable from the whole. The net is said to be infinite and to spread in all directions with no begining or end. At each nod of the net is a jewel so arranged that every jewel reflects all other jewels. No jewel exists by itself independently of the rest. Everything is related to everything else, nothing is isolated." आप गौर करें, यहाँ विधाएँ और कलाएँ ही नहीं पूरा मानव संसार, यह प्रकृति, पूरा ब्रह्माण्ड ही अन्तर्सम्बद्ध और अन्तनिर्भर है। इसी अन्तनिर्भरता और अन्तर्जीविता को एक दूसरे रूपक जंगल अरण्य से भी समझाया गया है। जंगल में भी वनस्पति-पेड़-पौधों ओर जीव-जन्तुओं तथा प्राणि-जगत् के बीच भी यही अन्तनिर्भरता, पारस्परिकता, अन्तर्सम्बद्धता, अन्तर्जीविता और अन्योन्याश्रयता है।

भारतीय काव्यशास्त्र और पश्चिमी काव्यशास्त्र को भी देखें तो हमारे यहाँ काव्य में सिर्फ कविता नहीं है - यहाँ श्रव्य-काव्य है तो दृश्य काव्य भी है। यहाँ तो ब्रह्मा भी कवि है, जिसकी रचना है - यह संसार-सृष्टि। यहाँ विभाजन नहीं है - समग्रता है। उधर इटली के एक सौन्दर्यशास्त्री हुए हैं - बेनदेतो क्रोचे। वे कहते हैं कि सारी कलाएँ एक ही हैं- एक ही विल टू फार्म 'विल टू क्रिएट' की अभिव्यक्तियाँ हैं। अभिव्यक्ति के प्रकार अलग-अलग हो सकते हैं। उनका वर्गीकरण हम अपनी सुविधा के लिए करते हैं। अपने-अपने माध्यम की वजह से वे अलग दिखती हैं, लेकिन हैं वे एक ही सृजन-इच्छा-सिसृक्षा के परिणाम !

कहानी की बात करते हुए संतोष चौबे ने पूछा है- ''कथा-आलोचक ? वे कहाँ हैं?'' मैं जवाब देना चाहता हूँ कि वे सन् 1950 से ही परिदृश्य पर मौजूद हैं। 'सरस्वती' के सम्पादक पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने परसाई के कहानी-संग्रह की आलोचना लिखी थी। दरअसल उन्होंने ही कहानी और उपन्यास की आलोचना शुरू की। उनकी एक प्रसिद्ध पुस्तक है - 'कथाचक्र'। उसमें देवकीनंदन खत्री से लेकर धर्मवीर भारती के उपन्यासों तक का विश्लेषण किया गया है। हमारे जमाने याने बीसवीं सदी के छठवें दशक में 'नयी कहानी' की आलोचना में डॉ. नामवर सिंह, देवीशंकर अवस्थी थे। खाकसार ने भी तभी कथा-आलोचना लिखी थी और मेरी कथा आलोचना की तीन-तीन किताबें हैं फिर सुरेन्द्र चौधरी हैं, विजय मोहन सिंह हैं। नये-नये कथा आलोचक भी आ रहे हैं।

एक बहुत अच्छी बात संतोष चौबे ने कही है जिस पर हमें गौर करना चाहिए - ''मुझे नये की परिकल्पना करते समय सातत्य अच्छा लगता है। प्रख्यात वैज्ञानिक स्टीफन हॉकिंग की किताब का नाम ही है 'ऑन द शोल्डर्स ऑफ जायन्ट्स' ! अपने पूर्वज महारथियों के कंधों पर खड़े होकर ही अगली पीढ़ी दूर तक देख पाती है।'' इस सातत्य में परम्परा बोध और चेतना तो है ही परिवर्तन की, नये की आकांक्षा और उत्कण्ठा भी है। 'नये' के उत्साह में परम्परा या तात्कालिक परम्परा के नकार का अतिरेक मैं देख चुका हूँ। 'नयी कहानी' आन्दोलन की शुरूआत में 'पीढ़ियों के द्वन्द्व और संघर्ष का बड़ा चर्चा था। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार और जैनेन्द्र वगैरह 'नयी कहानी' को दुकानदारी कह रहे थे और राजेन्द्र यादव उर्ध्वबाहु घोषणा कर रहे थे कि 'हमारी कोई तात्कालिक परम्परा ही नहीं थी जिसका हम विकास करते।' इस विवाद का सबसे सुन्दर और सार्थक समाधान यशपाल जी ने किया था। दिल्ली के चेम्सफोर्ड क्लब में कमलेश्वर की पहल पर नये कहानीकारों द्वारा अपने अभिनन्दन के मौके पर यशपाल जी ने कहा था- 'नयी पीढ़ी हमसे आगे तो है ही इसलिए कि वह हमारे बाद आई है और वो जो हमसे ऊँची भी है क्योंकि वे हमारे कंधों पर बैठी है।' हॉकिंग के रूपक' ऑन द शोल्डर्स ऑफ जॉयन्ट्स'की अन्तर्ध्वनि भी तो यही है। दोनों रूपकों में नयी और पुरानी पीढ़ी, परम्परा और आधुनिकता के अन्तर्सम्बन्ध, अन्तनिर्भरता और पारस्परिकता तथा सातत्य के ऐसे सूत्र पिन्हाँ हैं जो नये और पुराने दोनों को एक सार्थक और सकारात्मक संदेश देते हैं।

संतोष चौबे ने यहीं एक महत्त्वपूर्ण सवाल का जवाब भी दिया है। सवाल है- 'कहानी में नयेपन का अर्थ क्या है?' इस प्रश्न पर मुझे 1955-60 के बीच चली चर्चा की याद आ गयी कि 'नयी कहानी' में नया क्या है? 'कल्पना' के जनवरी 1955 के अंक में दुष्यन्त, डॉ. नामवरसिंह ने 'कहानी' के नववर्षांक 1958 में और 1958 में ही मैंने 'नई धारा' में 'नया' क्या है पर लिखा था। इसीलिए संतोष चौबे का जवाब मुझे बहुत मौजूं लगता है जब वे कहते हैं ''उसे तभी नया समझा जाएगा जब वो हमारे समय तथा समाज को समझने में हमारी मददगार होगी और इसके लिए कुछ नयी वैचारिकता की जरूरत होगी'' और ''समाज से जुड़ाव ही कला में नवीनता पैदा करता है।'' यह सिर्फ कहानी ही नहीं किसी भी विधा की नयी रचना के साथ भी लागू हो सकता है, बल्कि होना चाहिए। मैं कह चुका हूँ कि समय को अभिव्यक्त करने वाली रचना समय में कैद नहीं होती और देश कालांकित होकर ही कोई रचना देश कालजयी होती है।

प्रेम के संदर्भ में कथा लेखन की चुनौतियों के प्रसंग में संतोष चौबे के विचार-विमर्श से मुझे लगा कि कैसे कुछ मुद्दे बार-बार चर्चा में आते हैं। मुझे बेसाख्ता कमलेश्वर द्वारा सम्पादित 'नई कहानियाँ' का प्रेमकथा विशेषांक और उसमें श्रीकान्त वर्मा का प्रेम दर्शन याद आ गया। उस पर आमंत्रित मेरी टिप्पणी से श्रीकान्त वर्मा पर जो प्रतिक्रिया हुई और उसका जो खामियाजा मैंने भुगता वह भी याद आ गया। बहरहाल। 'कहानी में प्रेम' के प्रसंग में ''बलात्कार के बाद स्त्री मानसिकता में परिवर्तन की अभिव्यक्ति, उसकी प्रतिक्रिया और संत्रास इधर की कहानियों के विषय रहे हैं'' से मुझे मोराविया की कहानी पर डिसिका की फिल्म 'टू वीमेन' का वह दृश्य याद आ गया जिसमें माँ-बेटी एक गिरजे में शरण लेती हैं और वहाँ सिपाही बेटी का रेप कर डालते हैं और वह अकेली घटना पन्द्रह-सोलह साल की किशोरी को रात-ही-रात में आमूल बदलकर रख देती है। उनके आपसी रिश्ते बदल जाते हैं और वे अब माँ-बेटी नही केवल दो औरतें रह जाती हैं। इसी प्रसंग में कृष्णा सोबती की 'सूरजमुखी अँधेरे के' की रत्ती की भी याद की जा सकती है। संतोष चौबे का यह निष्कर्ष काबिले गौर है ''मूल चुनौती प्रेम को मुक्ति के एहसास की तरह जीने और उसे कथा में वैसे ही प्रदर्शित करने की है।'' यह चुनौती ही नहीं, कसौटी भी होनी चाहिए किसी भी प्रेमकथा की।

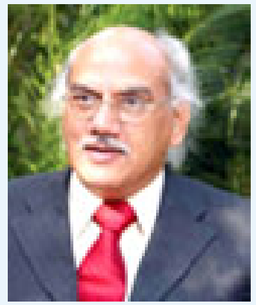

'कहानी और रंगमंच' में संतोष चौबे ने अपने कथाकार शिक्षाविद् तथा विचारक पिता जगन्नाथ प्रसाद चौबे 'वनमाली' जी को याद किया है- ''मैं कहानी में सब बातें छोड़ने को तैयार हूँ पर उसमें 'इन्टेसिटी- और 'ड्रामेटिक एलीमेन्ट' का होना बहुत लाजिमी समझता हूँ। शायद ये दो चीजें ही कहानी की टेकनीक की जान हैं।'' इस प्रसंग में संतोष चौबे ने 'दो तरह के स्कूल्स' का जिक्र किया है- एक कहानी के पाठ को अक्षुण्ण रखे हुए उसकी नाटकीयता को उभारना और दूसरा कहानी का नाट्य रूपान्तर। एक तीसरा रूप भी मराठी में मौजूद है- 'कथा-कथन' जिसमें कहानीकार अपनी नयी-से-नयी कहानी हजारों दर्शकों की मौजूदगी में पढ़ता नहीं, प्रस्तुत (बल्कि परफार्म) करता है। वैसे भी हमारे यहाँ कहानी, वाचिक परम्परा की विधा रही है। वह पढ़ने से अधिक कहने-सुनाने की कला है। कहने से ही तो कहानी बनी है जिसे हिन्दी में साहित्य की स्वायत्तता के संरक्षकों ने पढ़ने तक ही सीमित कर दिया और पढ़ना भी कैसा - 'तू मेरी पढ़, मैं तेरी पढ़ूँ।' बहरहाल संतोष चौबे का निष्कर्ष - 'कहानी का रंगमंच शब्द के द्वारा पैदा किया गया दृश्य-विधान हैं''... कहानी के साथ रंगमंच की भी गहरी समझ का प्रमाण है।

'कहानी में दृश्य' पर विचार विधाओं के स्वीकृत रूढ़ढ़ाँचों को तोड़कर उनमें परस्पर लेन-देन की स्वीकृति है। यह सच है कि माध्यम के बदलाव के कारण विधाओं की कुछ पूर्व शर्तें भी तय हो जाती हैं, लेकिन कलाकार को आजादी होनी चाहिए कि वह नये-नये प्रयोगों के जरिए किसी विधा की नई सम्भावनाओं की खोज भी करे। 'प्रेमचन्द का दृश्य विधान' सम्बन्धी अपने आलेख में मैंने इसी खोज की बात की थी।

उपन्यास में 'सचेत पर्यवेक्षण की अहमियत' को रेखांकित करती टिप्पणी 'किसकी जमीन' शिल्प की चेतना की भी अपेक्षा रखती है। कथाकार का पर्यवेक्षण महत्त्वपूर्ण तो है ही, हेमिंग्वे के अनुसार पर्यवेक्षण का कोण और उसकी समग्रता भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है कि गलत पर्यवेक्षण सच्चाई को भी नजरन्दाज कर सकता है। 'एक टुकड़ा यथार्थ' के प्रसंग में यही कहा जा सकता है कि यथार्थ स्थिर और स्थैतिक भर नहीं होता, वह लगभग हमेशा ही 'होने' की प्रक्रिया में बदलता रहता है। 'कहानी कहाँ है' एक बहुत बुनियादी बात को रेखांकित करती है कि 'कहानी पढ़ने के साथ-साथ कहने-सुनने की भी चीज है इसलिए नवीन सागर का यह प्रश्न कथाकारों को याद रखना चाहिए 'पार्टनर, यह बहुत सारा गद्य है पर इसमें कहानी कहाँ है?' यही प्रश्न मैं कई समकालीन कवियों और उनकी कविताओं से भी पूछ सकता हूँ कि बन्धु, इतने सारे गद्य में आपकी कविता कहाँ है? शशांक की कहानी 'चेखव को भूल जाना' और स्वयं संतोष चौबे की कहानी 'मगर शेक्सपीयर को याद रखना' को महज शीर्षक के साथ ही समानान्तर रख दिया जाय तो एक खासी मानीखेज बात निकलकर आ जाती है।

'नई सदी में उपन्यास' पढ़ते हुए मुझे अनायास अपना बरसों पुराना -'पूर्वग्रह' में छपा-लम्बा लेख 'उपन्यास के सूरते हाल' याद आ गया, इसलिए कि उसके केन्द्र में भी संतोष चौबे की यही चिन्ता है कि ''क्या नई सदी में उपन्यास की किसी नई जमीन की पहचान बनती है?'' यह पूरा विचार-विमर्श और उसके अंत में संतोष चौबे की कविता 'दूसरा उपन्यास' उपन्यास की रचना-प्रक्रिया उजागर करती है। निर्मल वर्मा के शब्दों में 'रचना-प्रक्रिया की -डार्क एण्ड डीप' दुनिया' के कई रहस्यों को 'डी मिस्टीफाई' करती है। यह विमर्श उपन्यास (और कहानी के भी) समकालीन परिदृश्य को उसकी विविधता और मुमकिन समग्रता में देखने-दिखाने की ईमानदार कोशिश है। इसके कई निष्कर्षों में व्यावहारिक सामान्यीकरण है जिन्हें लापरवाह निगाहें सरलीकरण भी कह सकती हैं। प्रसंगवश मैं यहाँ 'अस्मिता की तलाश' पर एक बात कहना चाहता हूँ। राजेन्द्र यादव ने उपन्यास के सन्दर्भ में 'अस्मिता की तलाश'की है और आलोचक प्रवर डॉ. नामवर सिंह ने मुक्तिबोध की लंबी कविता 'अँधेरे में' को 'अस्मिता की खोज' कहा है। मैं अपनी पुस्तक 'परम अभिव्यक्ति की खोज' (मुक्तिबोध के काव्य का पुनर्मूल्यांकन, 2004) में इस पर विस्तार

से विचार कर चुका हूँ। यहाँ संक्षेप में सिर्फ इतना ही कि मुक्तिबोध की अस्मिता का कहीं लोप नहीं हुआ था कि वे उसकी खोज करते। उनकी अस्मिता सर्वहारा से समरस थी। राजेन्द्र यादव का 'अस्मिता का संकट' दरअसल अस्मिता की राजनीति' का संकट है जो अंततः साम्प्रदायिक हिंसा में अपने चरम पर होता है। राजेन्द्र यादव की 'अस्मिता की तलाश' कहीं 'अस्मत की तलाश' तो नहीं है!

इस पुस्तक में 'कविता और संगीत' पर मुझे हिन्दी में पहली बार इतनी गम्भीर और सार्थक बातें पढ़ने को मिलीं। दरअसल कविता और गद्य में फर्क ही क्या है? बुनियादी फर्क है इसी संगीत का। हालाँकि गद्य की भी अपनी एक लय होती है मसलन् महादेवी वर्मा का गद्य या माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' का गद्य, यहाँ तक कि हरिशंकर परसाई का गद्य - इन सबकी अपनी-अपनी लय है। यह लय आती है शब्द विन्यास से और इस विन्यास में ही एक संगीत अन्तर्निहित होता है। अंग्रेजी में आधुनिकता के पुरोधा टी.एस. एलीयट ने ही तो कहा था 'कविता में संगीत उसके शब्दों में अन्तर्निहित होता है' (Music is inheret in words) और कॉलिरिज तो कह ही चुके हैं कि 'सर्वोत्तम क्रम-विन्यास में सर्वोत्तम शब्द ही कविता' है। (Best words in best order) लय की अनिवार्यता बल्कि अपरिहार्यता को नई कवितावादियों तक ने स्वीकार किया था। 'नयी कविता के प्रतिमान' में डॉ. जगदीश गुप्त ने लय को शब्द से हटाकर अर्थ से जोड़ दिया और 'अर्थलय' का शिगूफ़ा चला दिया। संतोष चौबे द्वारा भजन और गरबा के जिक्र से ही मुझे अपने बचपन में सुने वैदिक ऋचाओं के सस्वर पाठ और उसके उदात्त-अनुदात्त और स्वरित संगीत की याद आ गयी। इधर तकनीकी प्रगति का फायदा उठाकर भजन-गायन और गरबा को, गणेश-उत्सवों और दुर्गा पूजा के पंडालों में, सिनेमा के चालू और फूहड़ गीतों की धुन पर कानफोडू शोर से बजाया जाता है, वह उनके व्यवसायीकरण की विकृति है।

'कविता में जीवन दृष्टि' हमारे समय के एक बहुत महत्त्वपूर्ण और संवेदनशील मुद्दे पर बहस का आमंत्रण है। इसके केन्द्र में है ''अशोक वाजपेयी की कविता-आलोचना का केन्द्रीय शब्द-स्वायत्तता''। पहले मैं शब्द स्वायत्तता पर ही विचार करना चाहूँगा। दरअसल अशोक वाजपेयी मूलतः अज्ञेय की उस परम्परा के कवि-आलोचक हैं जिन्होंने पश्चिम-विशेषतः अंग्रेजी कविता और काव्य विमर्श का अनुवाद भावानुवाद कर मौलिकता का छद्म रचना चाहा और चूँकि हिन्दी के अधिकांश कवि-लेखक-आलोचक अपनी राष्ट्रभाषा के दर्प में चूर अंग्रेजी से अनभिज्ञ होते हैं, उन पर उनका आतंक भी खूब चलता रहा। गौर करें तो हर भाषा के अवधारणात्मक शब्दों के अपने बोध और संदर्भ होते हैं। उनके पीछे उनकी संस्कृति और दर्शन भी सक्रिय होते हैं इसलिए जब उनका अनुवाद किया जाता है तब कई बार वह न केवल नाकाफी, बल्कि कई बार भ्रामक भी होता है। मसलन् याद आता है- स्वामी विवेकानन्द का एक व्याख्यान। उन्होंने कहा था- शब्द सृष्टि के लिए अंग्रेजी का शब्द Creation गैर मौजूं है। Creation का अर्थ है To create something out of nothing, which is impossible सृष्टि के लिए कोई मुमकिन निकटतम शब्द हो सकता है तो वह है Projection फिर याद आता है 'फिलासफी' और दर्शन का अन्तर : बकौल राजीव मल्होत्रा : Philosophy resides in the analytic realm, is entirely disembodied and is an intellectual tool driven by the ego. Darshan includes philosophy but goes much further because it also includes embodied experience. It is an interplay of intellectual analysis and Sadhana with no barrier between the two. इसी तरह Freedom का मतलब है Personal liberty या Independence उसमें किसी भी शासन से मुक्ति का भाव है, जबकि स्वतंत्रता का अर्थ है- 'स्व' की 'तंत्रता' - आत्मानुशासन ! Identity का अर्थ है Absolute same ness, individuality, personality, condition of being a specified person लेकिन उसके लिए हिन्दी में प्रचलित है - अस्मिता जो हमारे यहाँ एक मानसिक विकार है, वह पाँच क्लेशों / अभिनिवेश, अविद्या, द्वेष, राग में से एक है। अधिक से अधिक वह व्यक्तित्व, वैयक्तिकता या पहचान है। इसी तरह Autonomy जिसका अर्थ है Personal freedom या Freedom of will या Right of self Government लेकिन उसके लिए प्रचलित स्वायत्तता में 'स्व' का 'आयत्तीकरण' है। यह लगभग स्व-आत्मीकरण है, जिसका उल्लेख मुक्तिबोध ने पर के स्व-आत्मीकरण और स्व के पर-आत्मीकरण की प्रक्रिया में किया है। स्वायत्तता में 'स्व' मूल है और वह इतना 'आटोनॉमस' नहीं है जितना कि कलावादी समझते हैं। 'स्व' की प्रकृति और प्रक्रिया, उसके निर्माण और रूपायन में समाज-परिवेश और आर्थिक परिस्थितियों की निर्णायक भूमिका होती है। बकौल संतोष चौबे ''स्वायत्त होने का अर्थ वैचारिकता से मुक्ति नहीं, बल्कि वैचारिकता की हद का इतना विस्तार करना है कि वह बहुलता का सम्मान कर सके और स्वयं की वैचारिक गरिमा का भी।'' स्वायत्तता की राजनीति और विचारधारा का भी चौबे जी ने कितना स्पष्ट विवेचन किया है। वे कहते हैं ''कविता और साहित्य की स्वायत्तता के संदर्भ में सबसे बड़ी बाधा विचारधारा को माना जाता है। उसमें भी सबसे बड़ा विरोध मार्क्सवादी विचारधारा प्रस्तुत करती है। पर क्या साहित्य में प्रचलित विचारधाराओं में मार्क्सवादी ही एक विचारधारा है? क्या मार्क्सवादी होने या न होने से ही कोई व्यक्ति या रचना विचारधारा से प्रभावित या उससे मुक्त माने जा सकते हैं?'' सच तो यह है कि स्वायत्तता की अवधारणा भी 'कल्चर फार फ्रीडम' की उसी विचारधारा का हिस्सा है जो धुर मार्क्सवाद विरोधी है। फिर अन्तर्निर्भरता और स्वायत्तता की बात कोई एक साथ कैसे कर सकता है? बकौल राजीव मल्होत्रा The basic principle is that each individual is both the cause for the whole and is caused by the whole.

प्रतिस्पर्द्धा के सिद्धान्त पर मेरा कहना है कि जैसे 'The truth, The good, The beauty का अनुवाद हमने 'सत्यंशिवं सुन्दरं' ऐसे कर लिया है जैसे वह हमारा ही 'वेदोक्त' सूक्त हो। उसी तरह Survival of the fittest का अनुवाद हमने 'योग्यतमावशेष' कर लिया और 'जीवोजीवस्यजीवनम्' के रास्ते चल पड़े। यहाँ तक कि निराला ने भी कहा- 'योग्यतम ही जीता है। पश्चिम की उक्ति नहीं। गीता है, गीता है।' निराला तो प्रभावित-प्रेरित थे विवेकानन्द से - जिन्होंने पतंजलि पर व्याख्यान दिए थे। पतंजलि का कहना है- 'प्रतियोगिता और प्रतिस्पर्द्धा प्रकृति में कहीं नहीं है' - क्या गेंदा गुलाब से प्रतियोगिता कर रहा है? बबूल क्या आम से प्रतिस्पर्द्धा कर रहा है? सब अपनी-अपनी प्रकृति और 'स्व-भाव' से विकास कर रहे हैं। संघर्ष ही जीवन का सत्य नहीं है। भारतीय दर्शन में तो लीला भाव भी है। यह जीवन भी तो एक लीला है। इसे हमने अपनी अधीरता में प्रतिस्पर्द्धा बना दिया है।

'कविता में सच' के प्रसंग में मैं कहना चाहूँगा कि एक गोचर सत्य है - दूसरा अनुभूत सत्य, एक वास्तविक सत्य है दूसरा प्रतिभासित सत्य। अनुभूत और प्रतिभासित सत्य ही कविता (रचना) के सत्य में रूपान्तरित होता है और काव्य-सत्य कई बार वास्तविक सत्य को भी अतिक्रान्त कर जाता है।

'कविता में विचार और रस' के प्रसंग में मुझे थोड़ा अचरज हुआ कि संतोष चौबे सरीखे आधुनिक कवि लेखक ने रस की बात की वर्ना तो रस को लोगों ने गये-गुजरे पुरातन पंथी विमर्श को सौंप दिया है। सच तो यह है कि रस का मतलब ही कवि और कविता से, रचना और रचनाकार से तादात्म्य है। रचना में तल्लीन होने का मतलब ही रस है। संतोष चौबे तो महेन्द्र गगन की कविता में विचार और रस की एकसाथ मौजूदगी देखते हैं। मैं समझता हूँ कि टी.एस.एलीयट ने जब कविता को 'विचार का भावात्मक पर्याय (Emotional equivalent of thought) कहा था तो उसने विचार और रस की सम्पृक्ति को ही उद्घाटित किया था। संतोष चौबे कहते हैं ''जितने गहरे आप जाएँगे उतने ऊँचे आप पहुँचेंगे, यह मूलतः ओशो का विचार है।'' मुझे बिहारी का एक दोहा याद आ गया- ''नर की अरु नल नीर की गति एकै करि जोय/जेतो नीचो बहै चलै, ते तो ऊँ चो होय।''

दरअसल ओशो में अनेक बार जदु कृष्णमूर्ति गूँजते हैं और कृष्णमूर्ति में बुद्ध। और जहाँ तक Innocence की बात है तो बोरिस तामशेव्स्की कहते हैं- "to read one must be innocent, must catch the signs, the author gives." फिराक गोरखपुरी इस Innocence को 'दिल की पाकीजगी' कहते थे। यह रचना में गहरे उतरने की जरूरी शर्त है।

मुझे यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि संतोष चौबे संगीत के भी उतने ही अच्छे जानकार हैं। उन्होंने संगीत के प्रभाव का जो वर्णन किया है वह तो अद्भुत है और पाठकों की सुविधा के लिए मैं इस लम्बे उद्धरण को पेश करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। ''संगीत, विशेषकर आध्यात्मिक संगीत, विचार की तरह हृदय में प्रवेश नहीं करता, वह एक समग्र अनुभव की तरह आपको अपने में समो लेना चाहता है। उत्तर भारतीय परम्परा में ध्रुपद और हवेली संगीत और दक्षिण भारतीय परम्परा में भक्ति संगीत आपको रस सिक्त कर मन को निर्मल और मस्तिष्क को प्रकाशित कर देते हैं, जहाँ निस्संगता और पूरी धरती के लिए प्रेम एकसाथ आपके मन में उपजते हैं और बची रह जाती है सिर्फ एक अनुगूँज, जो ब्रह्माण्ड के साथ एकात्म का अनुभव कराती है। अच्छा संगीत आपको उड़ सकने की हद तक हल्का करता है और पवित्रता की हद तक उज्ज्वल बनाता है।''... या ''अगर आपके कान रागों को पहचानने के अभ्यस्त हैं तो आप इन होलियों में काफी, झिंझोटी और बिहाग जैसे कई राग पहचान लेंगे।'' दरअसल संगीत की अपील है ही सार्वजनीन यूनीवर्सल। मैंने कभी एक किताब पढ़ी थी- 'पेन्टर्स आई!' उसमें लेखक ने एक सवाल किया था- चित्रों को कैसे देखा जाय? और उसका जवाब था- 'अपना मुँह बन्द रखो और आँखें खोलो।' इसी तर्ज पर मैं 'संगीत- खासकर शास्त्रीय संगीत - कैसे सुना जाय' का जवाब देना चाहूँगा- 'अपना मुँह और आँखें बन्द करो और कान खोलो।' जैसे गणित सर्वोच्च विज्ञान कहा गया है कि हर विज्ञान अपनी चरम-अवस्था पर गणित में शरण लेता है, उसी तरह संगीत सर्वोच्च कला कही गयी है- क्योंकि उसका माध्यम सूक्ष्मतम और आत्यन्तिक अमूर्तन है। उसका आनन्द उठाने के लिए उसकी भाषा-व्याकरण जानने की जरूरत नहीं है- बस 'तानसेन' का आनन्द लेने के लिए 'कानसेन' होना भर जरूरी है।

संतोष चौबे की यह बात भी रेखांकित करने योग्य है कि ''जब हम कविता लिखने बैठते हैं तब हम कवि होते हैं, आलोचक नहीं। हम सोचते हैं कि हम जो कुछ भी कहना चाहते हैं, वह सब कविता में आ जाय। बहुत सलाहियत के बाद ही ये समझ में आता है कि धीमे-धीमे कम कहना ही ज्यादा बेहतर है और बहुत लाउड होने की जरूरत नहीं। तब कविता कहाँ खत्म हुई उस स्थान को पहचानना हमें आ जाता है। कई बार तो दूसरा आदमी या पाठक ही उसे पहचान पाता है।'' मैं इसमें इतना और जोड़ना चाहता हूँ कि कवि को, कविता लिखते हुए न सही, कविता लिखने के बाद, अपना ही 'दूसरा आदमी' या 'पाठक' और इसीलिए आलोचक भी जरूर होना चाहिए तभी उसे वह 'सलाहियत' मिल सकती है जिसका जिक्र चौबे जी ने किया है। इसीलिए कहा जाता है कि जब तक रचनाकार अपनी रचना का खुद अच्छा पाठक नहीं हो जाता, वह अपना अच्छा पाठक नहीं बना पाता और श्रेष्ठ रचनाकार वही है जो यह तो जानता है कि क्या लिखना चाहिए। इससे भी ज्यादा वह यह भी जानता है कि क्या नहीं लिखना चाहिए।

'हम बच्चों के लिए क्यों नहीं लिखते ?... एक बहुत महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर एक बहुत जरूरी विमर्श है। दरअसल हमने यह एक बेहद जरूरी और आत्यन्तिक महत्त्व का इलाका दोयम और तीसरी श्रेणी के कवि-लेखकों के लिए छोड़ दिया है। मुझे एक दिलचस्प प्रसंग याद आ रहा है। 'सारिका' के दफ्तर में उस दिन कमलेश्वर के साथ कृशनचन्दर बैठे थे। 'पराग' के सम्पादक कन्हैयालाल नन्दन भी आ गये। आते ही उन्होंने चन्दर साहब से शिकायतन कहा- 'आपने अभी तक हमें अपनी कोई रचना नहीं दी।' चन्दर साहब बोले- 'देखो जी, मैं तो उर्दू में लिखता हूँ और आपकी पत्रिका तो हिन्दी में निकलती है।'... नन्दन ने कहा- 'आप उर्दू में ही दे दीजिए, हम उसका हिन्दी में लिप्यन्तरण करवा लेंगे।' चन्दर साहब ने फिर समस्या बताई- 'देखो जी, मैं तो बड़ों के लिए लिखता हूँ, आपकी पत्रिका तो बच्चों की है।' कमलेश्वर ने समस्या का समाधान सुझाया- 'कोई बात नहीं चन्दर साहब, आप उर्दू में बड़ों के लिए लिखकर दे दीजिए। वह हिन्दी में बच्चों के काम आ जाएगा।'

दरअसल हमारे यहाँ हो यही रहा है। हिन्दी में नवसाक्षरों का साहित्य, बालसाहित्य के रूप में खपाया जा रहा है। दरअसल बाल साहित्य लिखना सबसे कठिन चुनौती है कि आपको बच्चों के मनोविज्ञान और उनके अवचेतन में प्रवेश करना पड़ता है। बच्चों के लिए लिखने की चुनौती टालस्टाय और निराला सरीखी प्रतिभाओं ने स्वीकार की थी और मैं राजेश जोशी और नवीन सागर सरीखी प्रतिभाओं को सलाम करता हूँ कि उन्होंने बच्चों के लिए भी सार्थक कविताएँ लिखीं। संतोष चौबे की यह शिकायत वाजिब है कि 'हिन्दी में बहुत कम 'नानसेन्स राइम्स' मिलती है। दरअसल हिन्दी की बाल कविताओं में 'नानसेन्स' की मिकदार जितनी है उतनी ही

कम 'राइम्स' है। संतोष चौबे ने बलराम और महेन्द्र गगन, वसंत सकरगाएँ और राग तैलंग, नरेश सक्सेना और मोहन सगोरिया, संजय मेहता और राघवेन्द्र तिवारी, राजेन्द्र जोशी और नवल जायसवाल और शैलेन्द्र चतुर्वेदी पर भी लेख और टिप्पणियाँ लिखी हैं। इनमें एक अच्छे संवेदनशील पाठक, सच्चे कद्रदाँ और विवेक सम्पन्न आलोचक की त्रयी का अन्तर्लयन है। ये इस बात की भी साक्ष्य है कि इन रचनाओं में कितनी तल्लीनता से डूबकर पढ़ा गया है और पढ़ने के दौरान संवेदनानुसारी अन्य माध्यम की रचनाएँ- (मसलन् देवीलाल पाटीदार और प्रभु जोशी के चित्र) भी किस तरह अपनी अनुगूँज पैदा करती हैं। इनके कुछ सूत्रवाक्य जैसे- ''कविताएँ उत्तप्त मन का ताप हरने की क्षमता रखती है'' या कविता समग्र जीवन है और जीवन समग्र संगीत तो ''कोटेबल कोट्स'' की तरह याद रखे जाने के काबिल हैं। ये इस बात की भी प्रमाण हैं कि संतोष चौबे में वरिष्ठता का आभिजात्य और अपने पद-प्रभुत्व का अहंकार नहीं है। उन्होंने तो अपने मातहत कवि-लेखकों को भी वाजिब तवज्जो दी है। यही बुनियादी अंतर है एक ब्यूरोकैट कवि-आलोचक और एक टेक्नोक्रैट कवि-कथाकार-आलोचक में।

(2)

'अपने समय में' को 'कला की संगत' का सीक्वल, उसका उत्तर-विमर्श या उसका ही विस्तार भी कहा जा सकता है। यह एक सक्रियतावादी (एक्टीविस्ट) बुद्धिजीवी की वैकल्पिक वैचारिकी या ऐसी सैद्धान्तिकी भी है जिसको व्यावहारिक धरातल पर प्रयुक्त और सिद्ध किया जा चुका है। इसमें अपने समय को चार प्रमुख परिघटनाओं या प्रसंगों के पसमंजर में देखा-दिखाया गया है : सोवियत संघ के पतन याने वामपंथी विचारधारा और साम्यवादी या समाजवादी स्वप्न और दृष्टि के अंत की घोषणा ; सभ्यताओं के टकराव और तथाकथित इस्लामी आतंकवाद का उदय, वैश्वीकरण या विश्वग्राम की अवधारणा और उत्तर आधुनिक विमर्श। इस उत्तर आधुनिक विमर्श के प्रमुख आधार हैं : इतिहास की समाप्ति का घोषणा, किसी स्पष्ट वैचारिक आकाश की उपस्थिति से इंकार, बदलाव की किसी सम्भावना से इंकार, प्रगतिशीलता के विचार से इंकार। अपनी आत्यन्तिक परिणति में ''यह उत्तर आधुनिकता न केवल गैर राजनीतिक होने का भ्रम पैदा करती है, वह उत्तर पूँजीवाद का सांस्कृतिक तर्क भी बन जाती है।'' इस पृष्ठभूमि में परम्परा, विरासत, भारतीयता, वैश्वीकरण, आधुनिकता, विकास, विचारधारा, आलोचना के साथ हमारे समय के सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक ज्वलन्त प्रश्नों पर संतोष चौबे का यह ऐसा चिन्तन-मनन है जो कोरा बुद्धि विलास न होकर प्रायोगिक धरातल पर भी आश्वस्तकारी निष्कर्षों और मुमकिन समाधानों के साथ प्रस्तुत है।

परम्परा को लेखक कोई स्थिर वस्तु नहीं, बल्कि सतत् प्रवहमान मानता है जिसे इतिहास की समझ के बिना ठीक-ठीक नहीं पहचाना जा सकता। मैंने उसे नदी के रूपक और जैविक विकास की उपमा में देखा-समझा है। इतिहास की समझ के लिए संतोष चौबे ''एक वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न, अपनी संस्कृति और कला में रचे-बसे मानस'' को जरूरी मानते हैं। आधुनिकता को वे एक ऐसी ''दृष्टि मानते हैं जो इतिहास के प्रवाह को पहचानती है, बहुलता और विविधता का सम्मान करती है, मानवीय गरिमा के पक्ष में काम करती है और साहित्य-कला और मनुष्य को समग्रता में देखती है।'' स्टीफेन स्पेण्डर ने भी आधुनिकता को 'विजन ऑफ द होल' कहा था और 'आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय' (1984) में मेरा प्रस्थान भी लगभग यही है। संतोष चौबे ''भारतीय समाज की सहिष्णुता और सहअस्तित्व की प्रवृत्ति या शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की भावना के साथ, वाद-विवाद तथा लोकतांत्रिक पद्धतियों से प्रश्नों को सुलझाने की आदत में'' अपनी विरासत की सक्रियता देखते हैं। यहाँ मुझे बेसाख्ता नोबेल-प्रतिष्ठा प्राप्त अर्थशास्त्री श्री अमर्त्य सेन की पुस्तक 'द आर्ग्यूमेन्टेटिव इंडियन' कीयाद आ गयी। इसमें उन्होंने वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक भारतीय संस्कृति और इतिहास का इसी दृष्टि से पुरावलोकन किया है और 'भारतीय आईडेन्टिटी' का आख्यान किया है। संतोष चौबे ने भी जिस भारतीयता को रेखांकित कियाहै वह ''किसी पुरातन किस्म के राष्ट्रीय आकाश की तरफ लौटना नहीं है। यह एक ऐसे आधुनिकता बोध से युक्त चेतना की तरफ लौटना है जो अपनी परम्परा को जानती है, विविधता तथा बहुलता का सम्मान करती है तथा पूरे विश्व को एक बाजार बनाने से बचाती है।''

आप गौर करें लेखक ने भूमंडलीकरण शब्द का इस्तेमाल नहीं किया है क्योंकि उससे भूमंडीकरण (पूरी दुनिया को एक मंडी में तब्दील करने) की उत्तरपूँजीवादी मानसिकता उजागर होती है। उन्होंने 'विश्व' और 'वैश्वीकरण' शब्दों का प्रयोग किया है जिनमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' से आगे 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की ध्वनि भी व्यंजित है। संतोष चौबे की मान्यता है कि ''पूँजीवादी विकास की दिशा ने 'ग्रोथ रेट' तो बढ़ाया लेकिन उससे अधिक विषमता को भी बढ़ाया।'' वे तो ऐसे विकास के समर्थक हैं ''जो प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन और विनाश न करे'' बल्कि धारणीय विकास '(सस्टेनेबल डेव्हलपमेन्ट) करे। उनका विश्वास है कि महात्मा गाँधी के 'हिन्दी स्वराज' के कुछ सामान्यीकृत निष्कर्ष आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं- मसलन् प्रत्येक बदलाव, प्रत्येक तकनीक को मनुष्य केन्द्रित होना चाहिए और जीवन को अधिक सरल तथा सहज होना चाहिए। वे डॉ.ए.पी.जे. कलाम ने मॉडल 'पुरा' (Provision of Urban Services in Rural Areas) को भी एक ऐसी ही देशज मिसाल मानते हैं। उनका आग्रह है कि ''सत्ता के संस्थानों को दम्भ के धरातल से उतर कर नीचे आना चाहिए।' और ''सरकार में जो एक चीफ एक्जीक्यूटिव आफीसर की अहंकारी शैली विकसित हो गई है'' उसे अधिक जनसंवादी और जनसंवेदी बनाया जाना चाहिए।

उत्तर आधुनिक विमर्श के लगभग सभी आधारों से संतोष चौबे न केवल असहमत हैं, बल्कि उन्हें खारिज भी करते लगते हैं। मसलन् 'इतिहास का अंत या विचारधारा का अंत' के बरअक्स वे नये ज्ञानात्मक मानचित्र की जरूरत महसूस करते हैं। इतिहास के अंत में जहाँ एक दुराग्रह है वही विचारधारा का अंत की घोषणा भी एक विशेष विचारधारा का ही नारा है। इतिहास का अंत कभी नहीं होता। अतीत, व्यतीत होकर हमेशा के लिए विद्यमान हो जाता है इसीलिए कहा गया है- Past is ever present. दरअसल इतिहास के अंत की घोषणा एक सर्वसत्तावादी सोच है जिसका खुलासा जार्ज आर्वेल ने अपने उपन्यासों - द एनीमल फार्म और 1984 में खासी सूझ-बूझ के साथ किया है। सर्वसत्तावादी शासन बड़े सुनियोजित ढ़ंग से अतीत की हर मौजूदगी को मिटा देना चाहता है ताकि लोग स्मृतिहीन हो जाँय या फिर इतिहास को वह अपनी सुविधा और विचारधारा के अनुसार पुनर्व्याख्यायित -पुनर्प्रस्तुत करता है। 1984 में

आर्वेल 'थाट क्राइम' ओर 'थाट पोलिस' के एक ऐसे दहशतजदा आतंककारी तंत्र का निरूपण करता है जहाँ असहमति, विद्रोह और देशद्रोह है और वैकल्पिक विचार, अपराध। आर्वेल का एक प्रसिद्ध प्रतिपादन है ''यह लगभग विश्वजनीन रूप से अनुभव किया जा रहा है कि जब हम किसी देश को लोकतांत्रिक कहते हैं तब हम उसकी प्रशंसा करते हैं। नतीजतन हर किस्म का अधिकनायकवादी शासन यह दावा करता है कि वह लोकतंत्र है।'' लोकतंत्र की सारी सांस्थानिक अधोसंरचना ध्वस्त करने वाले तानाशाह भी खुद को राष्ट्रवादी ही नहीं, समाजवादी और लोकतांत्रिक भी कहते रहे हैं।

'विचारधारा के अंत' के बरअक्स संतोष चौबे कहते हैं ''विचारधारा हमें यथार्थ को देखने की एक दृष्टि प्रदान करती है'' इतना ही नहीं ''विचारधारा लेखन को तीक्ष्णता भी प्रदान करती है''। वे स्वीकार करते हैं कि ''वामपंथ की दृष्टि देखने-समझने की एक वैध, एक वैज्ञानिक पद्धति है और एक हद तक कारगर भी।'' उनकी स्पष्ट आत्मस्वीकृति है। ''मैं मार्क्सवाद की तरफ सैद्धान्तिक आग्रहों के कारण नहीं, बल्कि व्यावहारिक समझ के कारण आया।'' उनका तो विश्वास है कि ''कोई भी साहित्यकार अपनी राजनीति और अपनी पक्षधरता निर्धारित किए बिना रचना नहीं कर सकता।'' प्रतिबद्धता की उनकी अवधारणा भी व्यापक है ''रचनाकार या कलाकार मूल रूप से तो मनुष्य और मनुष्यता के प्रति ही प्रतिबद्ध है'' और ''हर लेखक की मूल प्रतिबद्धता तो मानवीयता को बचाए रखने की होनी चाहिए।'' और ''जो भी विचार इसे बचाने में मदद करे उसके प्रति उसे प्रतिबद्ध होना चाहिए।'' वे मानते हैं कि ''संगठन किसी भी लेखक के लिए उतना ही जरूरी है जितना संगठन के लिए लेखक।'' लेकिन ''इधर लेखकों और कलाकारों के संगठनो में राजनैतिक ओव्हरटोन्स कुछ ज्यादा ही हो गई है और साहित्यिक और कलात्मक चिन्ताएँ कुछ कम'' फिर ''कई संगठनों का यह चरित्र बन जाता है कि नया या फिर भिन्न तरह से सोचने वाले व्यक्ति को व्यक्तिवादी करार दे देते हैं और उसे बाहर करने के पीछे लग जाते हैं।'' इस बात की ताईद तो मैं भी कर सकता हूँ कि प्रलेस में मैं इसका चश्मदीद गवाह ही नहीं भुक्तभोगी भी हूँ।

संतोष चौबे का यह एहसास काबिले-एहतिराम है कि ''कोई एक दृष्टि से पूरे विश्व को, पूरे समाज को या कि पूरे मनुष्य को समझने में कारगर नहीं हो सकती।'' या ''साहित्य और संस्कृति तकनीक के विरोधी नहीं, उसके पूरक हैं'' अतः ''सिर्फ विज्ञान और तकनीक से ही मनुष्य की सब समस्याओं का हल नहीं निकाला जा सकता। उसे अपने सांस्कृतिक मूलाधारों पर टिके रहना पड़ेगा।''

'अपने समय में' संतोष चौबे के तीन संवाद भी शामिल हैं- पहला महेन्द्र गगन से, दूसरा विनय उपाध्याय से और तीसरा हरि भटनागर से। इनमें महेन्द्र गगन से उनकी बातचीत सबसे अधिक विस्तृत और व्यापक ही नहीं, उन्हें अपनी सारी मुमकिन समग्रता में प्रस्तुत करने के लिहाज से महत्त्वपूर्ण है। दरअसल इन्टरव्यू लेने वाले व्यक्ति पर भी यह निर्भर करता है कि वह आपको कितनी-कैसी रोशनी में पेश करता है। इस बातचीत में सृजन के प्रसंग में चौबे जी का यह वक्तव्य महत्त्वपूर्ण है ''सृजन यथार्थ का महज प्रतिबिंबन नहीं, बल्कि यथार्थ को देखने की एक दृष्टि है।''कला और उत्तर आधुनिकता के प्रसंग में वे कह ही चुके हैं कि ''यथार्थ एक बदलती हुई सतत् प्रक्रिया है जो मनुष्य द्वारा निर्मित है और उसके द्वारा बदली भी जा सकती है'' और ''नाटक यथार्थ का प्रतिबिंबन नहीं, बल्कि यथार्थ पर एक टिप्पणी है।'' इस बातचीत में संतोष चौबे का आलोचना के प्रति रवैया भी आम कवि-लेखकों से न केवल भिन्न, बल्कि काबिले-तारीफ भी है। महेन्द्र गगन ने उनसे सवाल किया था- ''आपने अभी अपने दो-एक व्याख्यानों में रचना की समीक्षा में आलोचकों से करुणा (कम्पैशन) की अपेक्षा की है। इस तरह के आग्रह का क्या अर्थ है?''

संतोष चौबे के जवाब पर गौर कीजिए : ''मेरा आग्रह करुणा नहीं, बल्कि सहानुभूति यानी सह-अनुभूति है''... मैं इससे आगे जाकर कहूँगा (बल्कि कह चुका हूँ) कि आलोचना में रचना से सह-अनुभूति या सम-अनुभूति ही नहीं अन्तरानुभूति भी जरूरी है- 'फीलिंग विथ' के साथ 'फीलिंग इन्टू' भी आवश्यक है और अपनी पुस्तक 'आलोचना की रचना यात्रा' (1978) में इसी प्रसंग में मेरा एक हलफनामा भी है। उनका यह इल्जाम भी किसी हद तक जायज है कि ''कुछ आलोचक अभी भी सामंतों की तरह व्यवहार करते हैं और अकादमियों के निदेशक वगैरह बनकर या पुस्तक खरीदी समितियों में रहते हुए या अन्य माध्यमों से सत्ता के निकट रहना चाहते हैं।'' देश की राजधानी से लेकर प्रान्तीय स्तरों तक फैली आलोचकों की इस जमात (या गिरोह) की शिनाख्त अब इतनी पोशीदा भी नहीं है कि उसे आँख में ऊँगली डालकर दिखाया जाय।

संतोष चौबे ने रचना के साथ ही आलोचना के आस्वाद का भी कितना संवेदनशील खुलासा किया है : ''आलोचना का आस्वाद किसी कविता, कहानी या उपन्यास से अलग होता है। वह उस शास्त्रीय संगीत की तरह है जिसके गहराई से रसास्वादन के लिए आपको कुछ प्रशिक्षण की जरूरत होती है।'' यह वही कवि-लेखक कह सकता है जो अपनी आलोचना के प्रति भी सहिष्णु है और जिसमें एक रचनात्मक आत्मविश्वास है। आलोचना से आम-फहम भाषा में लगभग हमेशा अपने अनुकूल होने की उम्मीद और तवक्को रखने वाले कवि-लेखकों को संतोष चौबे के इस वक्तव्य से कुछ सीखना चाहिए।

महेन्द्र गगन ने उपन्यास के प्रसंग में कहा है कि ''अज्ञेय ने पहली बार भारतीय उपन्यास की अवधारणा का सवाल उठाया था'' इस पर संतोष चौबे का भी वक्तव्य है कि ''उपन्यास को आमतौर पर औद्योगिक समाज की उपज माना जाता है।'' इस मान्यता के लिए हिन्दी के प्राध्यापक भी जिम्मेदार हैं। मैं नहीं जानता कि अज्ञेय जी ने कब, कहाँ वह सवाल उठाया था।

दरअसल वो पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी थे जिन्होंने पहली बार भारतीय आख्यान परम्परा और कहानी की वाचिक परम्परा का 1950 के आसपास 'सरस्वती' में विस्तार से उल्लेख किया था और न केवल 'कहानी -आलोचना' बल्कि अपनी पुस्तक 'कथाचक्र' के माध्यम से उपन्यास की आलोचना भी शुरू की थी। उपन्यास की मृत्यु की घोषणा के जवाब में मैंने 'माध्यम' में 1960 के आसपास 'उपन्यास के जन्म' पर लेख लिखा था और 'उपन्यास के सूरते हाल' तथा 'भारतीय उपन्यास की अवधारणा' पर 'पूर्वग्रह' और 'अब' पत्रिकाओं में लेख लिखे थे। वे मेरी पुस्तक 'हिन्दी उपन्यास का पुनरावतरण' (2003) में संकलित हैं। मैंने तो प्रस्तावित भी किया था कि हम अपने महाकाव्यों को पद्य में लिखे उपन्यासों की तरह क्यों नहीं देख सकते? अभी हाल शशि थरूर ने भी 'एपिक ऐज नावेल' की बात भी की है।

संतोष चौबे ने एक बड़ी मौजूं बात की है कि ''उपन्यास,

रचनाकार से धीरज की माँग करता है''... इसमें मैं इतना और जोड़ना चाहूँगा कि बन्धुवर, सिर्फ उपन्यास ही क्यों, हर विधा की, हर रचना, रचनाकार से धीरज की माँग करती है। गालिब के एक मशहूर शेर के पहले मिसरे 'आशिकी सब्र तलब औ तमन्ना बेताब' में थोड़ी तरमीम के साथ कहा जा सकता है- 'अदब सब्र तलब औ तमन्ना-ए-शोहरत बेताब'। दरअसल साहित्य को भी शास्त्रीय संगीत की तरह संयम, धैर्य और मुसलसल रियाज की जरूरत है।

इस बातचीत में कवि-कथाकार के अलावा संतोष चौबे की शिक्षा के क्षेत्र में अवदान और शिक्षा सम्बन्धी उनका सोच-विचार भी उद्घाटित हुआ है। 'इन्क्लूसिव ऐजूकेशन' के साथ प्राथमिक शिक्षा के 'यूनीवर्सलाइजेशन' के अलावा उच्च शिक्षा के स्तर और शिक्षकीय नैतिकता पर भी उन्होंने जोर दिया है। उन्होंने शिक्षा के तीन लक्ष्य तय किए हैं : छूटे हुए को शामिल करना, समता और बराबर की शिक्षा प्रदान करना और गुणवत्ता - जिसमें कौशल विकास शामिल है। वे 'राइट टू ऐजूकेशन के भी हिमायती हैं।

'हमारे समय के सवाल' में संतोष चौबे ने जिन मुद्दों को उठाया है वे एक साहित्यिक और संस्कृतिकर्मी के साथ एक सचेत और जागरूक नागरिक की वैकल्पिक सामाजिक सोच और उसके क्रियान्वयन की लगन को रेखांकित करते हैं। 'जनविज्ञान आन्दोलन' में वे विज्ञान के पूरे वर्णक्रम को समेटकर शिक्षा, स्वास्थ्य, सिंचाई सुविधा, जमीन के उपयोग, वन एवं पर्यावरण के साथ ग्रामीण तकनीक और तकनीक के आयात की योजना और उसके कार्यान्वयन पर विचार करते हैं। 'जन विज्ञान आन्दोलन में रंगकर्म' की भूमिका को रेखांकित करते हुए उनका विचार है कि ''कुलीन और संभ्रान्त कला जगत् के संकुचित दायरे तो तोड़कर जन संस्कृति और जनाधार के व्यापक दायरे के बीच कला कर्म आज की सबसे बड़ी जरूरत है।'' इसीलिए वे 'रंगमंच और सिनेमा' के क्षेत्र में लोक परम्पराओं और लोकरूपों के सचेत प्रयोग के हिमायती हैं। 'साक्षरता अभियान' में छत्तीसगढ़और मध्यप्रदेश में काम करते हुए उनका आकलन है कि ''उन राजनीतिक दलों ने साक्षरता अभियान में अधिक रुचि ली है जिनका विश्वास आम आदमी की शक्ति बढ़ाने और बदलाव की राजनीति करने में है।''... इस दृष्टि से ''वामपंथी सरकारों द्वारा शासित राज्यों में साक्षरता अभियान को अधिक सफलता मिली है।'' इसका कारण ''राजनीतिक इच्छा शक्ति का प्रबल रूप से साक्षरता अभियान की सफलता के लिए काम करना है।'' वे साक्षरता अभियान के साथ प्राथमिक शिक्षा के लोक व्यापीकरण के पक्षधर हैं। वे कहते हैं : ''वैज्ञानिक तौर पर यह सिद्ध हो चुका है कि जहाँ साक्षरता और प्रौढ़शिक्षा का काम सफलतापूर्वक किया गया है वहाँ प्राथमिक शिक्षा को भी सही मायनों में बहुत मदद मिली है।''

वैश्वीकरण के दबाव में अधोसंरचना और दूरवर्ती शिक्षा की माँग को पूरा करने के लिए 'निजी विश्वविद्यालयों की जरूरत' को उन्होंने वक्त का तकाजा माना है। उनकी जरूरत इसलिए भी है कि अब व्यवसायों और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का स्वरूप बदल गया है और लगातार बदल रहा है। इसके अलावा औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा के बीच सेतु भी आवश्यक हो गया है। उनका यह विचार छत्तीसगढ़में सर सी.वी.रमन विश्वविद्यालय (बिलासपुर) और मध्यप्रदेश में आईसेक्ट विश्वविद्यालय (भोपाल) की स्थापना से साकार हुआ है।

कृषि क्रांति और औद्योगिक क्रान्ति के बाद अपने समय में आई 'सूचना क्रांति' मानव की दशा और दिशा के लिए आज अनिवार्य ही नहीं अपरिहार्य हो गयी है। सूचना प्रौद्योगिकी के तकनीकी विकास एवं सामाजिक दबावों के बीच सरकारों को क्या करना चाहिए इसकी उन्होंने एक 'सत्रह सूत्री योजना' का प्रारूप भी प्रस्तुत किया है। सूचना तकनीक में सत्ता के पारम्परिक ढ़ाँचे को चुनौती देने की कितनी अपार क्षमता है और किस प्रकार सूचना को भी हथियार की तरह इस्तेमाल किया जा रहा है इसका विस्तृत ब्यौरा भी उन्होंने पेश किया है। उन्होंने आगाह किया है कि ''किस तरह सरकारें, संस्थान और कारपोरेट जगत् गोपनीयता का इस्तेमाल अपने हितों के संरक्षण एवं संवर्द्धन में करते हैं और किस तरह आम आदमी पर हो रहे अन्याय को छिपाया जा रहा है।''

पर्यावरण के विनाश से मानव भविष्य की उनकी चिन्ता 'गरम हो रही है धरती' में व्यक्त होती है। धरती और समुद्र के गर्म होने में ग्रीन हाउस गैसों की सबसे बड़ी भूमिका है। इस वैश्विक तपन के दुष्प्रभावों के मद्देनजर उनकी चेतावनी है कि ''पृथ्वी पर मानव सभ्यता को बचाये रखने के लिए एवं दीर्घकालीन सतत् विकास के लिए इस वैश्विक तापमान की समस्या का समाधान अत्यन्त आवश्यक है।'' ''व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर हमें अपनी जीवनशैली में परिवर्तन लाकर उसे सादगीपूर्ण बनाना होगा। सहज एवं प्रकृति से सामंजस्यपूर्ण जीवन शैली आज की आवश्यकता है।'' इस संदर्भ में उन्होंने उचित ही महात्मा गाँधी की याद दिलायी है।

इस पूरे विचार-विमर्श में संतोष चौबे के बहुआयामी, अन्तर्अनुशासनात्मक अध्ययन और चिन्तन-मनन के पर्याप्त प्रमाण हैं। घटनाओं, प्रसंगों, रचनाओं और मुद्दों की समग्र और समावेशी दृष्टि से पड़ताल के साथ ही सोच-विचार और चिन्तन में स्पष्टता और सहजता के लिहाज से भी यह अपने समय का महत्त्वपूर्ण विमर्श है। विभिन्न कलाओं के बुनियादी स्वभाव, प्रकृति और सरगम से वे परिचित हैं और अपनी परम्परा की चेतना, इतिहासबोध और सांस्कृतिक संरचरण की उन्हें अच्छी पहचान है। उन्होंने पूरे भारतीय संस्कृति परिदृश्य और समसामयिक परिघटनाओं को एक गरूड़ दृष्टि से तो देखा ही है अपनी तृणमूल चेतना से उसकी परीक्षा भी की है और हंस के नीर-क्षीर विवेक से उनका मूल्यांकन भी किया है। उनके लेखन में ज्ञानात्मक संवेदना का संचार तो है ही वह संवेदनात्मक ज्ञान से भी समृद्ध है। इसे पढ़ते हुए मुझे कई मुद्दों पर समान सोच का संतोष मिला है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह कि संतोष चौबे अभी भी कहते हैं कि 'मैं अभी भी सीख रहा हूँ'' और ''मैं सतत् सीखने में विश्वास रखता हूँ''...यह उनके सोच-विचार की सतत् गतिशीलता और उसके निरन्तर व्यापक होते अन्तरिक्ष की जमानत है।

('अपने समय में' और 'कला की संगत : संतोष चौबे : पहले पहल प्रकाशन, 25-ए, प्रेस काम्पलेक्स, एम.पी.नगर भोपाल (2014) के लोकार्पण (22 सितम्बर 2014) पर आयोजित संगोष्ठी में अध्यक्षीय वक्तव्य का संशोधित-परिवर्द्धित आलेख)

धनंजय वर्मा द्वारा डॉ. निवेदिता वर्मा
एफ-2/31, आवासीय परिसर,
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन-456010
मोबा. 9425019863

कविताएँ

ओम ठाकुर की तीन कविताएँ

उसके चेहरे पर सौ-सौ सूरज उग आये थे

उसे
सड़क से कुछ उठाते
देख रहा था मैं/कि
सम्भावना के विरूद्ध/उसने
अधखुली मुट्ठी में
नीलाभ काँच का टुकड़ा दिखा
मुसकराती आँखों से देखा मेरी ओर।

उसकी बाँछें खिली थीं।
उसकी प्रसन्नता ने/चुँधिया दी थी।
आँखें मेरी।

इतना खुश था वह।
असह्य थी मेरे लिए/उसकी
प्रसन्नता
कि/हँसा था मैं व्यंग्य से।

मगर/वह
नहीं पहचानता था व्यंग्य
पहचानता था सिर्फ प्रसन्नता
उसे लगा/मैं शरीक हूँ खुशी में उसकी
उसके चेहरे पर
सौ-सौ सूरज
उग आये थे।

खुशबू की तरह निःशब्द

शब्दों के पार
मैंने दिये/तुम्हें
अर्थ/हर बार
इंद्रधनुषी रंगों से ज्यादा लुभावने
और सार्थक/जिन्हें
उमड़ती काली घटाओं के बीच
दोहराती रही हवा/बारम्बार
कि मौसम
डरने की चीज़ नहीं।

आषाढ़की पहली वर्षा में
भींगने को कहा तुम्हें
अकेले नहीं/साथ
तुम सहमे से खड़े रहे
पतलून फर गिरी बूँदों को निहारते
वितृष्ण।

मौसम की मौज
और मिजाज से दूर
कोई खुद को कैसे कर सकता महसूस!
दूँठ तक हरिया जाते हैं
हो जाते मुक्त।

सुबह हो या साँझ-
तपती दोपहर हो/या
मझरात
आँखों में झाँकने की घड़ी
घण्टाघरों में नहीं बजती
लेकिन/दुनिया की तमाम घड़ियों से अलग
अपनी ऋतु के महोत्सव में
फूल में खुशबू की तरह
निःशब्द
बजती जरूरी।

मैंने कहा था-रास्ते के बीच
तुम्हें/याद हो शायद।

तुम्हें/याद हो शायद
गुलाब के होठों से
प्यार चुराती
उस नन्ही तितली की बात।

डोंगियों से शब्द

मैंने उकेरे
चित्र
लहरों पर।

लहरों पर
डोंगियों-से
शब्द।

कुछ खोजते तेजधारा में
लड़के मछुआरे/निडर
पार ले जाते
डूबते विवश अर्थों को
शब्द मेरे।

मैंने उकेरे
चित्र
लहरों पर।

205, सुदामा नगर, अन्नपूर्णा सेक्टर,
इंदौर-452009 मो.99260-64004

राजीव कुमार 'त्रिगर्ती' की कविताएँ

कविता का प्रभाव

यदि मैं अपने तक ही कविता को रखूँगा
तो मैं कविता के भ्रम में अपने अहम् को रखूँगा
मेरे अहं का विस्फोट मेरे लिए घातक है बहुत
इधर कविता का प्रभाव व्यापक है
शब्द में अपार शक्ति है
अर्थ का ताना-बाना गूँथता है शब्द
शब्दार्थ का कविता बनकर फूटना
वैसा ही है जैसे
नई कोंपल किसी नन्हे पौधे पर
सूरज की ताजा धूप में निखरती है
पहाड़ के किसी स्वच्छ निर्झर में
तैरता है सहस्त्रवर्णी इन्द्रधनुष
जैसे संध्या वेला में होता है
लयबद्ध ओंकार ध्वनि का गुँजन
कविता का व्यापक होना जरूरी है।

प्यार के लिए जरूरी है

प्यार के लिए जरूरी नहीं बहुत कुछ
न चाँद का विशेष आकार
न चाँदनी रात
न देवदारों से छनकर आती गुनगुनी धूप
न आम पर कोयल की कूक
न भँवरे का गुँजन
न किसी झरने का इन्द्रधनुषी स्पर्श
न नदी किनारे के भीगते पत्थर
न सागर किनारे की रेत
न हरे-भरे खेत
न सरसराता जंगल
न बादल भरा अंबर
न ओंठों की लाली
न नयनों का अंजन
न अलकें घनेरी
न पलकें सुनहरी
न हाथों की मेंहदी
न पाँवों की महावर
सोलह शृंगारों से कुछ भी जरूरी नहीं
सारे आलम्बन, सारे उद्दीपन
रह जाते हैं धरे के धरे
क्योंकि प्यार के लिए जरूरी है
विपरीत परिस्थितियों में भी
दो दिलों का अनुकूल होना
सारे आडम्बरों को ताक में रखकर
बस प्यार के पल में खोना।

एक यह भी तो रास्ता है

एक यह भी रास्ता है कि
जब बहुत बोलने का मन हो
और वो भी अनाप-सनाप
तो क्यों न उतनी देर भर
की जाए कोशिश
चुप, एकदम चुप रहने की
इतनी देर में एक भँवरा
चूस ले एक फूल का पराग
हवा का एक उन्मुक्त झोंका
बिखेर दे सुगन्ध दूर तक
आँखें हो आएँ रंगों से धुर आगे
और इतने परिवर्तनों के आगे
संभव है आप हो जाएँ नतमस्तक
एक पल के लिए हो जाएँ ध्यानस्थ
खो जाएँ असीम में
एक चुप के साथ
देर तक बनी रहे चुप्पी
चुप्पी की चाह में प्रार्थनारत
और प्रार्थनारत होने पर
अनन्त तक पसरी शान्ति।

लौट आया है वक्त

यह तो बस प्यार में ही होता है कि
पहले यह पता ही नहीं चलता
कि कब बदल गया वक्त
और पता चल भी जाए
वियोग के कचोटते पलों में
वक्त के बदलने का
तो फिर लौट आता है वक्त
वैसे ही फूलते हैं फूल महकते-महकते
वैसे ही घिरते हैं बादल गलबहियाँ डाले
वैसे ही पड़ती है बर्फ मखमली शान्त
वैसे ही बहती है हवा सिहराती
वैसे ही खिलती है धूप गुदगुदाती
वैसे ही आते हैं सेब मीठे-रसीले
हालाँकि यह पहली दफा नहीं होता
पर अक्सर हम ध्यान नहीं देते
क्योंकि हम प्यार में होते हैं
और बहते हैं वक्त की नाव में उनींदे
वक्त है कि दिखाता है खुद को
पलटकर भी जरूर
संदेश वाहक
बनकर प्रकृति का
कहता है लौट आओ
लौट आया है वक्त।

गाँव-लंघू, डाकघर-गाँधीग्राम
तह-बैजनाथ, जिला-काँगड़ा
हि.प्र. 176125 मो. 94181-93024

अमित कुमार खरे
पावस के दोहे

घिर आई काली घटा, हुई सुहागन शाम।
बरसेगी बरसात तो, क्या होगा अंजाम।।
जब से यौवन को मिला, बरखा का उपहार।
अंतर्मन के साज का, झंकृत है हर तार।।
निकली नूतन कोपलें धरती से इस बार।
कितने दिन के बाद फिर, आई मस्त बहार।।
बारिश में मध्यम पड़ी, अब सूरज की आँच।
हरियाली को ओढ़कर, धरा रही है नाच।।
अब के सावन आई है, ऐसी मस्त बहार।
नई नवेली युवतियाँ, करने लगी शृंगार
सूरज की बदमाशियाँ, पड़ने को है मंद।
मौसम भी रचने लगा, सुंदर सुंदर छंद।।
सागर से ही माँग कर, पावन नीर उधार।
पावस ने फिर कर दिया, धरती का शृंगार
बादल लेकर आ गए, रिमझिम मस्त फुहार।
प्रेम नगर में हो रही, मनभावन मनुहार।।
रिमझिम रिमझिम हो रही, प्यारी सी बरसात।
कैसे काबू में रखें, हम अपने जज्बात।।
बादल क्यों समझा नहीं, अभी धरा की प्यास।
तपने का शायद नहीं, उसको है एहसास।।
धीर धरा धरती नहीं, बादल कोसों दूर।
जल्दी आने को उसे, कौन करे मजबूर।।
धुली धुली धरती धरे, सम्हल सम्हल कर पाँव।
कभी नहीं होगा कहीं, मैला मेरा गाँव।।

मुहल्ला बजरिया सेवढ़ा जिला दतिया
मध्यप्रदेश- 475682 मो.9575441160

अध्ययन आकलन

शिक्षा व्यवस्था को आइना दिखाता उपन्यास

लक्ष्मी पाण्डेय

कबीर का एक दोहा है-
कबिरा सोई पीर है जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानहिं सो काफिर बेपीर।।

अर्थात जो दूसरों की पीड़ा को समझता है, मानवता के लिए जिसके हदय में दर्द है, करूणा है, वही पीर है यानी श्रेष्ठ मनुष्य है, परमात्मा के दर तक, दरबार तक जिसकी पहुँच है, क्योंकि दूसरों की पीड़ा को उसी शिद्दत से अनुभव करना, परदुखकातर होकर उसके दुख को दूर करने का प्रयास करना ही मानव धर्म और मनुष्य होने की शर्त है। जो संवेदनहीन है, यह धर्म नहीं जानता दूसरों की पीड़ा को नहीं समझता, आत्मकेंद्रित स्वार्थी है वह अधर्मी,पाखंडी और काफिर है।

कबीर पीर थे। उनकी पीड़ा का विस्तार समष्टि के ओर छोर तक था। उनका लेखन हमारी संवेदनाओं को धार देता है यह उसकी (अर्थात कबीर के साहित्य की) उपयोगिता, महत्व और युगों तक बनी रहने वाली प्रासंगिकता है। इतना कुछ कहने का तात्पर्य यह कि लेखन लेखक के व्यक्तित्व का आईना होता है। वह जो मानता है, जो चाहता है वही लिखता है। हम चाहे मैं हूँ, अन्य पाठक हों या लेखक रमेश दवे जी, सब सामान्य जन हैं। कबीर, पीर, योगी नहीं हैं ना हो सकते हैं किन्तु श्रेष्ठ मनुष्य होने का प्रयास तो कर ही सकते हैं। व्यक्ति के परिवारों के समाजों के राष्ट्र के अभावों, दुखों को समझकर उनसे सहानुभूति तो रख ही सकते हैं जहाँ तक संभव हो, जितनी सामर्थ्य हो कुछ दुखों, विसंगतियों को दूर करने का प्रयास तो कर ही सकते हैं। हमारा इस तरह के प्रयास में रत होना ही हमारे जीवन को उत्तम होगा।

रमेश दवे इस मायने में श्रेष्ठ मनुष्य हैं और उनका जीवन सार्थक है। पर्यावरण प्रदूषण और शिक्षा जगत के पतन ने भारत की सांस्कृतिक गरिमा को चोट पहुँचाई है और यह आघात निरंतर राष्ट्र को एक खतरनाक, खौफनाक मोड़ की ओर ले जाता दिखाई देता है। ऐसे में दवे जी के उपन्यास 'हरा आकाश' और 'मास्टर रामनाथ का शिक्षानामा' उनकी मानवीय एवं राष्ट्रीय चिन्तन धारा और चिन्ता को व्यक्त करते हैं। ये उपन्यास भावी खतरे से आगाह तो करते ही हैं, यथार्थ का विसंगत चित्र भी दिखाते हैं तथा इसे पुनः ठीक करने, सुसंगत बनाने का प्रयास करने की प्रेरणा भी देते हैं। मास्टर रामनाथ मित्र के घर भविष्य में जन्म लेने वाले गर्भस्थ शिशु के लिए नर्सरी स्कूल खोजने निकलते हैं। यह खोज गहन शोध का रूप ले लेती है। बच्चों की फीस, टिफिन से लेकर शिक्षकों का उनके साथ कैसा व्यवहार होता है आदि। मास्टर रामनाथ चूंकि स्वयं अपने पी.एच.डी. के शोध निर्देशक से पीड़ित है अतः नर्सरी के शिक्षकों का व्यवहार स्मरण करते-करते विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों और शोध निर्देशकों तक पहुँच जाता है उनका चिंतन1 निर्देशकों के निदंनीय व्यवहार के साथ, उनका और समाज का आरक्षित वर्ग के साथ भेद भाव उन्हें कचोटता है। यहाँ मास्टर रामनाथ के किसी भी कथन में अतिशयोक्ति नहीं है। वाकई यह शिक्षा जगत का कटु और घृणित यथार्थ है। यूं अपवाद हर जगह रूप उतना भयावह नहीं होता जितना उच्च शिक्षा में। यहाँ हर स्तर पर जादुई कारनामे होते हैं, नियम कानून अपने पक्ष में तोड़े-मरोड़े जाते हैं तथा अनैतिक कार्यों को धड़ल्ले से नैतिक कार्यों की तरह अंजाम दिया जाता है। अतः मास्टर रामनाथ साहब की चिंता और पीड़ा उन्हें अगर द्वन्द्वग्रस्त, बेचैन बना रही है तो उचित ही है। मास्टर रामनाथ कुर्मी पटेल हैं और उनकी सखी शालिनी सवर्ण है। कालेज में प्रोफेसर है जबकि रामनाथ स्कूल में पढ़ाते हैं। रामनाथ के भीतर जाति और पद को लेकर हीन भावना और कुन्ठा तो है जिससे निकलने की बेचैनी उनके इस कथन में दिखाई देती है- ''मेरा मन तो है कि पी.एच.डी. की थीसिस सबमिट कर दूँ और किसी कॉलेज या विश्वविद्यालय में जम्प लूँ तो फिर शादी कर लूंगा। वहाँ वेतन भी अच्छा होगा और स्टेटस भी बढ़जाएगा।'' (22) मास्टर रामनाथ आई.ए. एस. हो गए तो उनकी जाति कुर्मी से आई.ए. एस हो गई और शालिनी के माता-पिता ने विरोध त्यागकर उनका विवाह कर दिया। रामनाथ की पोस्टिंग आदिवासी क्षेत्र में होती है। दवे जी ने बेहतरीन वाक्य लिखा है - ''आजादी और लोकतंत्र का मतलब ही यह है कि अब झबरूलाल जंगल से उठकर सिंहासन पर बैठेगा और मास्टर रामनाथ अफसर हो जाएगा।''(125)

रामनाथ विद्वान और कर्मठ है वह देश की संपूर्ण व्यवस्था को बदलना चाहता है, इसलिए स्थिरचित्त नहीं है। उसके भीतर एक बेचैनी है इसलिए उसके कथनों में विरोधाभास दिखाई देने लगता है। कहते हैं - ''नौकरी का सरकारी सूखा देखा तो ले लिया अध्यापक बनने का प्रशिक्षण और बन गए अध्यापक है (पृ. 14) इस कथन से प्रश्न उठता है कि क्या अध्यापक होना नौकरी नहीं है। एन.जी.ओ. के लिए रामनाथ का कथन है-'' ''वे सरकारी थैली में छेद करके पैसे बटोरने के सिवा करते ही क्या है? बेरोजगारों के लिए घर बैठे ऐसा रोजगार है जो काम न करने को महान काम बताने की रिपोर्ट लिखने में माहिर हैं।'' पृ-58 अगले ही पृष्ठ पर रामनाथ अपने परिचितों, मित्रों के सामने एन.जी.ओ. बनाने जा रहा हूँ; यह विचार प्रकट करते हैं। एक ओर स्कूल की बंदिशें उन्हें नहीं भातीं, दूसरी ओर स्कूल व्यवस्था के लिए चिंता भी व्यक्त करते हैं। बस्ते को बोझ और विद्यार्थी को कुली कहते हैं।'' अंग्रेजी का प्रेत पद का उपयोग करते हैं वहीं अंगेजी की आवश्यकता भी अनुभव करते हैं।

रामनाथ किसानों, आदिवासी, अन्न, पानी, हवा, शिक्षा से संबंधित प्रश्नों के समुद्र में डूबता उतराता है। उसकी दशा प्रमादग्रस्त सी प्रतीत होती है। शालिनी उसकी दशा से चिंतित होकर कहती है- ''राम यह क्या हो गया है तुम्हें? तुम आफीसर हो या समाजशास्त्री'' शिक्षा के प्रति संकल्पित हो, उसे ही सोचो, उसे ही ठीक करो। पृ- 178। दवे जी ने शिक्षा की समस्याओं पर, उसके संकीर्ण दायरों पर सूक्ष्म दृष्टि डाली है और महत्वपूर्ण सुझाव दिए है। शिक्षा को हमारे देश में हवा, पानी, अन्न से नहीं जोड़ा गया। अगर जोड़ दिया जाता तो प्रदूषण की समस्या नहीं होती नदियों की हत्या नहीं होती तथा अन्नदाता किसान उपेक्षित नहीं होता।'' नायक रामनाथ उपरोक्त सभी मुद्दों को लेकर चिंतित है, वह सब कुछ करना चाहता है लेकिन उत्तर-आधुनिकता के प्रभाव से वह मुक्त नहीं है। दरअसल उपन्यास के नायक रामनाथ से कहीं ज्यादा समझदार और ठहराव युक्त चिंतन लिए सह नायक हेमंत उपस्थित होता है। हेमंत प्रलाप नहीं करता बल्कि यथार्थ के धरातल पर टिका हुआ भारतीय गृहस्थ जैसा होना चाहिए वैसा है।

कर 'स्कूल मुक्त शिक्षा' अभियान चलाना चाहता है जबकि हेमंत इससे असहमत होकर स्कूल के महत्व पर प्रकाश डालता है। वह कहता है- ''कोई माता पिता यह नहीं चाहते कि शिक्षा स्कूल रहित हो। स्कूल के होने से समाज अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। समाज के मन में अभी स्कूल नामक संस्था के प्रति सम्मान और श्रद्धा है। मॉ-बाप बच्चों को अकेला बाजार नहीं भेजते अस्पताल या पुलिस स्टेशन, दफ्तर आदि में नहीं भेजते मगर स्कूल में यह समझकर भेज देते हैं जैसे वह सरस्वती का मंदिर हो। स्कूल समाज का विश्वास है, वह जीवन की ज्ञान-भूमि है।'' पृ-124। रामनाथ पाश्चात्य विचारक इवान इलिच के विचारों को मन ही मन स्मरण करता है। इवान ने कहा- स्कूल जितना बॉधता है उतना खोलता नहीं। वह संसार में ऐसी मुहिम चाहता हैं जिसमें 'लेस स्कूलिंग ओर एज्यूकेशन' की बात जो भारतीय परिदृश्य के लिए बेमानी है। भारतीय शिक्षा और संस्कार के मूल में निहित वाक्य है- ''बंधन में ही मुक्ति है। अनुशासन, मर्यादा, संयम जैसे संस्कार स्कूली शिक्षा से ही प्राप्त हो जाते है। बस्ते को बोझ नहीं दायित्व बोध माना जाता है जो बच्चा बचपन से ही सीख जाता है और उद्दण्ड-उच्श्रृंखल नहीं हो पाता।

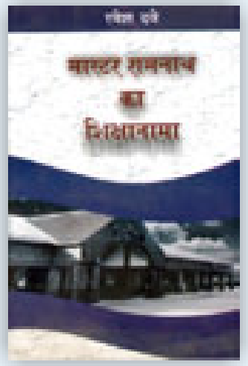

शिक्षा को केन्द्र में रखकर लिखा गया यह सर्वांगपूर्ण उपन्यास है जैसा कि फ्लैप में उद्धृत है। 'यह शैक्षणिक जगत के यथार्थ को दर्शा कर, उसकी विसंगतियों, कमजोरियों को दूर करने के लिए मार्गदर्शक और प्रेरक का कार्य करने वाला सिद्ध होगा।' यहॉ दवे जी के सूक्ष्म एवं व्यापक दृष्टि कोण को सराहना होगा। कथा में प्रवाह है, बोधगम्य भाषा है किन्तु नायक रामनाथ के आचार-विचारों में एक हड़बड़ी जैसा भाव आदि से अंत तक बना रहता है। उसका चौतरफा हाथ-पॉव मारना, ये भी करूं, वो भी करूँ की हड़बड़ी तथा वैचारिक अस्थिरता कहीं-कहीं गंभीरता को खंडित करती है।

कुछ शब्द, कुछ वाक्य ऐसे भी हैं जो असंगत लगते हैं-

-''अभी लिव-इन रिलेशन का बहुत ज्यादा चस्का तो नहीं लगा है, इसलिए शादी हर लड़की-लड़के की जवानी का सुंदर सपना होता है।'' (पृ.-110) यहॉ अमर्यादा है।

- ''जिस देश में प्रथम श्रेणी के इंसान को तृतीय श्रेणी या चतुर्थ श्रेणी के नौकर की तरह मान लिया जाए, उसकी प्रथम श्रेणी किसी ऐसी विधवा की उदासी की तरह नहीं तो और क्या जिसका पति उसे भरी जवानी में ही छोड़ गया।'' (पृ. - 15) यह भौड़ा उदाहरण है।

- ''क्या शानदार पैरवी की तुमने अपने लव-ब्वाय की।'' (पृ.-52) इसी तरह शालिनी के लिए प्रिया या मित्र शब्द का उपयोग न करना बल्कि लव गर्ल कहना हल्का और गरिमाहीन वाक्य लगता है।

पाश्चात्य विचारकों के द्वारा निर्धारित मानकों पर हम भारतीय शिक्षा को नहीं तौल सकते। भारत पश्चिम से श्रेष्ठ है शिक्षा और ज्ञान, धर्म और दर्शन के मामले में। यहॉ के बीज को यहीं की मिटटी, पानी, आबोहवा चाहिये। पाश्चात्य शिक्षा मुक्ति का पाठ पढ़ाकर व्यक्ति को आत्म-केन्द्रित अमर्यादित बनाती है। भारतीय शिक्षा ज्ञान समृद्ध कर जब मुक्ति की चरम अवस्था तक पहुँचाती है तो व्यक्ति मर्यादा, प्रेम, त्याग, संयम, करूणा के बंधनों में बंधकर आत्म-पोषण, स्वार्थ जैसी भावनाओं से मुक्त होकर श्रेष्ठ मनुष्य और श्रेष्ठ नागरिक बन जाता है। मनुष्य के व्यक्तिगत, और पारिवारिक जीवन, दूर होंगी, अपराध घटेंगे, शांति का वातावरण निर्मित होगा क्योंकि शिक्षा ही है जो मनुष्य के रक्त संस्कारों से सम्बद्ध होती है। संस्कारों का सम्बन्ध सत्-रज-तम' इन तीनों गुणों से होता है। शिक्षा तमो-गुण का दमन करती है ताकि सतोगुण एवं रजोगुण के मेल से मनुष्य आत्मसम्मान के साथ आत्मनिर्भर होकर श्रेष्ठ मनुष्य एवं श्रेष्ठ नागरिक बने। शिक्षा संवेदनाओं को धार देकर उसका प्रसार व्यष्टि से समष्टि तक करती है। यह शिक्षा वर्तमान की वैकल्पिक ज्ञान वाली शिक्षा नहीं बल्कि डूबकर अध्ययन चिन्तन मनन करने, व्याख्या और भावार्थ करने में पारंगत बनाने वाली साधनात्मक शिक्षा है। जैसे-जैसे साधना प्रगाढ़होती है, तमोगुण का क्षरण होता जाता है और अन्तरात्मा ज्ञान दशा और भाव दशा (रस दशा) के उच्च शिखर पर पहुँच जाती है, जहॉ शांति है, प्रेम, करूणा, क्षमा, दया, त्याग और संयम है।

मास्टर रामनाथ ने ऐसी ही शिक्षा प्राप्त की है इसलिए उनकी संवेदनाओं का प्रसार व्यष्टि से समष्टि तक है। मास्टर रामनाथ की चिन्ता, उनके प्रयास उदाहरण हैं कि नयी पीढ़ी केवल धनोपार्जन के लिए ही शिक्षा और नौकरी को प्राप्त करने का स्वप्न न देखे बल्कि वह शिक्षित होकर जिस पद पर प्रतिष्ठित हो, उस पद के दायित्वों का निर्वाह प्रतिक्षण सार्थकता के साथ करे। परिश्रम और साधना से शिक्षा प्राप्त कर जो विद्यार्थी अध्यापक बनेगा वह निश्चित रूप से अपने शिष्यों को परिश्रम और साधना, सफलता और सार्थकता का अर्थ और महत्व बताएगा। वह अपने ज्ञान का हस्तांतरण कर शिष्यों के सतो गुण रजोगुण को परिष्कृत और परिवर्धित करेगा। ऐसा विद्यार्थी जब इंजीनियर बनेगा तो सुन्दर, मजबूत पुल, सड़कें, इमारतें बनवाएगा। भ्रष्टाचार के भाव और आवश्यकता से कोसों दूर ऐसे चिकित्सक सेवा भावी होकर मानवता की सेवा करेंगे। नेता होकर राष्ट्र कल्याण करेंगे। वैकल्पिक शिक्षा अंकों का प्रतिशत तो बढ़ाती है किन्तु शिक्षित, पंडित (पाण्यित्यपूर्ण) नहीं बनाती। परिश्रम साध्य, साधनात्मक शिक्षा से ही मनीषी, श्रेष्ठ वक्ता, कुशल वैज्ञानिक, चिकित्सक आदि निर्मित होते हैं। भारत में पहले हर क्षेत्र में ऐसे असंख्य मनीषी थे जिन पर पूरा विश्व रीझा हुआ था। अब सवा सौ करोड़ की जनसंख्या में ऐसे लोग उंगली पर गिने जाने योग्य ही बचे हैं। यह सचमुच चिन्ता का विषय है। रमेश दवे ने उपन्यास विधा को इस चिन्तन के लिए चुना यह प्रशंसनीय है। उपन्यास का अर्थ है जीवन को निकट रखकर देखना। यह दीर्घ कथा होती है जिसे पढ़ते हुए पाठक का अन्तर्मन प्रभावित होता है। शिक्षा के हर स्तर के छोटे-बड़े भ्रष्टाचार विसंगतियों को सुगंठित कथा वस्तु के माध्यम से पाठकों के लिए सुग्राह्य बनाना दवे जी का रचनात्मक कौशल है जो निश्चित ही प्रशंसनीय है। शिक्षा जगत की वर्तमान स्थिति देखकर सचमुच हौलदिली होती है। काश यह उपन्यास उन हाथों में पहुँचे जिनके पास शिक्षा की विसंगतियों को दूर करने की सामर्थ्य है, जिनके पास पद हैं, अधिकारों का बल है। जो निष्ठावान होकर भावी भारत को उसका पुराना विश्व गुरू का पद वापस दिला सकते हैं, जिनके छोटे से प्रयास से ही मास्टर रामनाथ जैसे अनेक कर्मठ, निष्ठावान मास्टर रामनाथ जन्म ले सकते हैं। मनुष्य, धरती, संस्थाओं की तरह रचनाओं का भी भाग्य होता है कि वे पर्याप्त प्रसारित होकर यश और सार्थकता प्राप्त कर धन्य हो सकें। यह उपन्यास सार्थकता प्राप्त कर धन्य हो, यही कामना है।

श्री सूर्यम, कुलपति निवास के पास
10, सिविल लाइन कोर्ट रोड सागर (म.प्र.)

चित्रों में नरेन्द्र दीपक

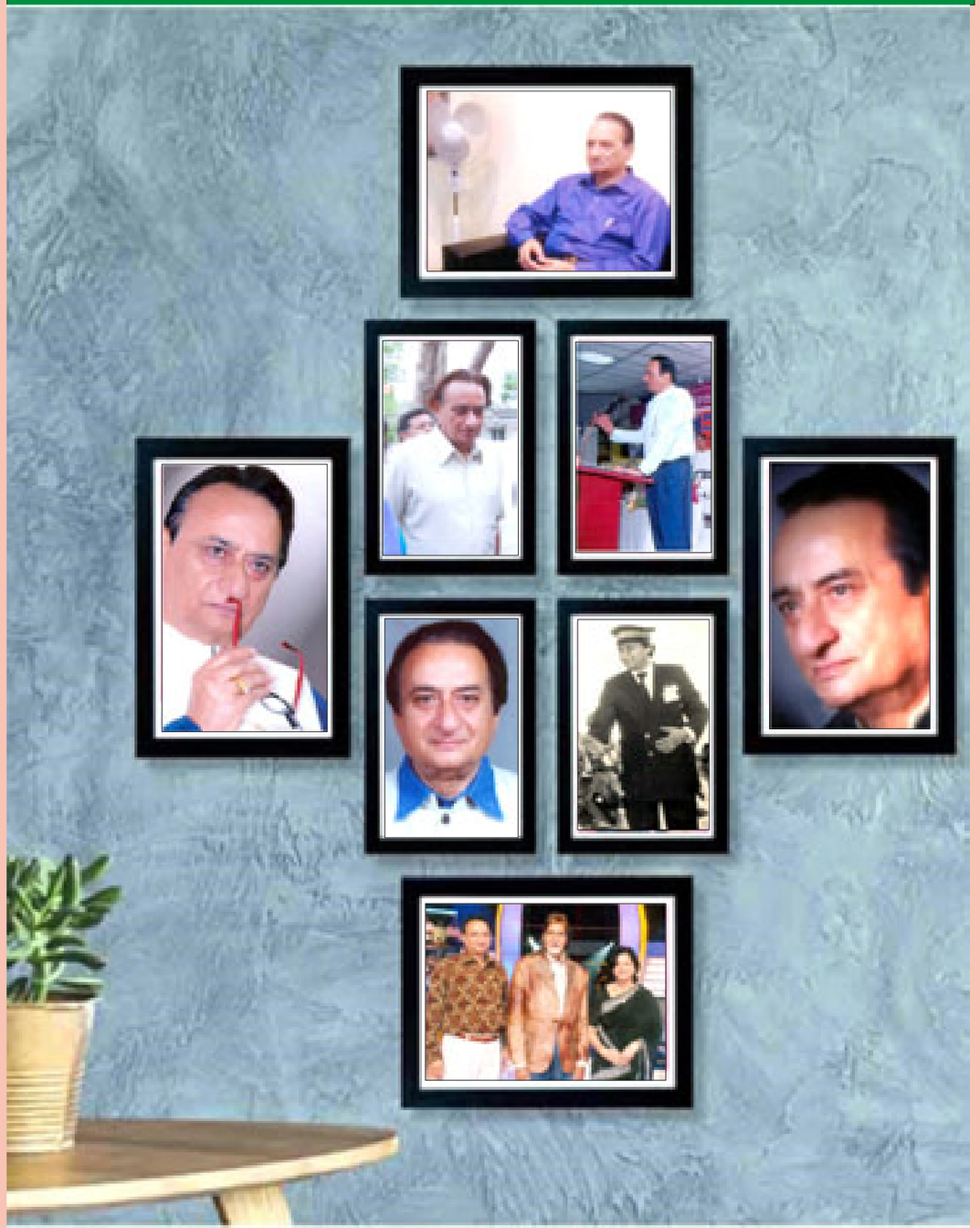

चित्रों में सतीश चव्हाण

सतीश चव्हाण के कुछ प्रमुख चित्र

सतीश चव्हाण के कुछ प्रमुख चित्र

वक्रोक्ति-30

समावर्तन के अधबीच व्यंग्य केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तंभ

विशेष सम्पादकद्वय
सूर्यकान्त नागर/हरीश कुमार सिंह

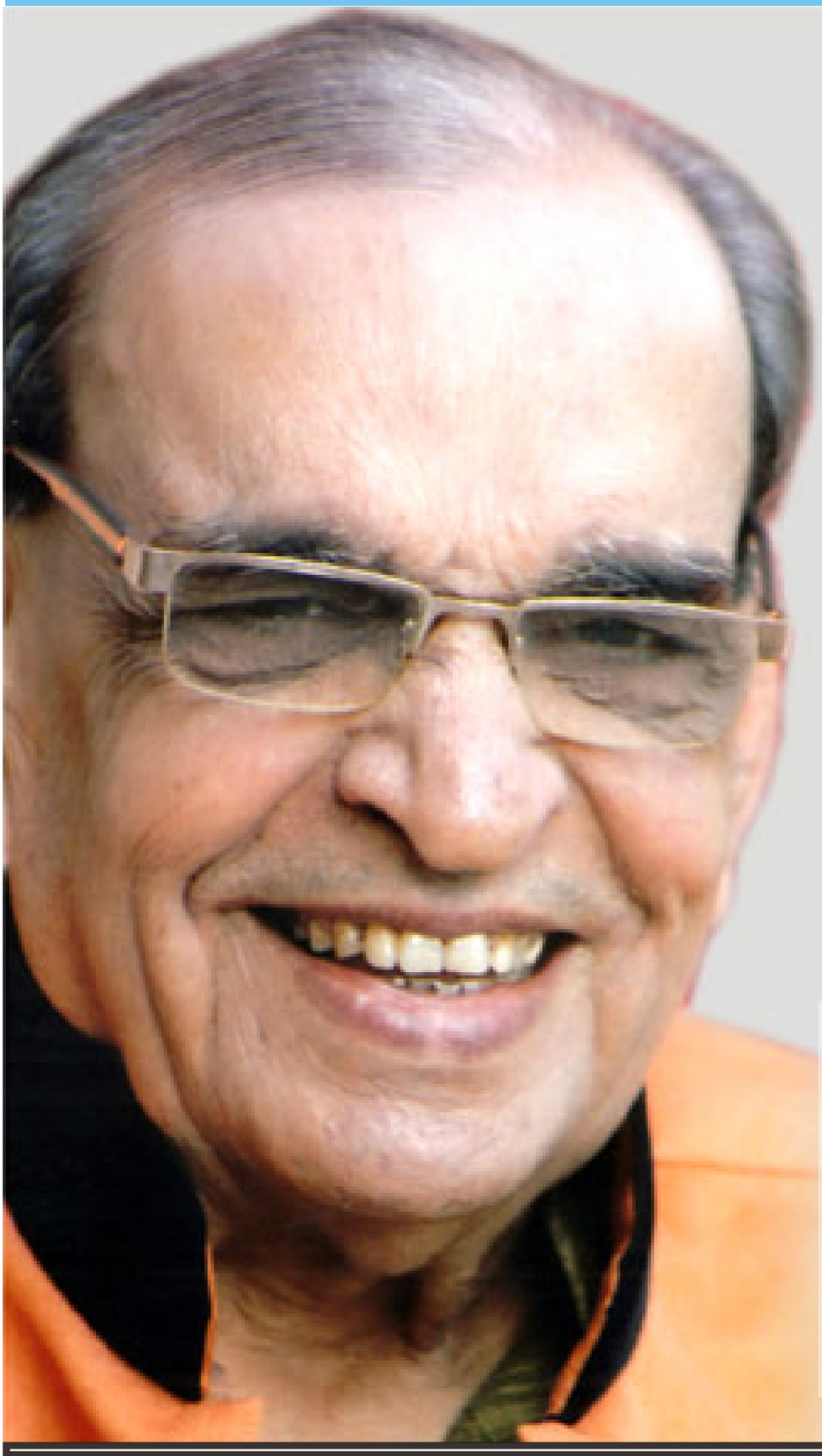

चर्चित व्यंग्यकार स्व.डॉ.शिव शर्मा को समर्पित

(39-50)

वक्राभिमुख : सूर्यकांत नागर

आलेख : सर्वश्री ज्ञान चतुर्वेदी, अशोक वक्त, कैलाश मण्डलेकर, रमेशचन्द्र शर्मा, प्रदीप नवीन, पिलकेन्द्र अरोरा, देवेन्द्र जोशी

मेरा नज़रिया : हरीश कुमार सिंह

डॉ.शिव शर्मा : एक विलक्षण व्यक्तित्व

सूर्यकांत नागर

यों तो डॉ शिवकुमार शर्मा की उपलब्धियाँ बहुआयामी हैं, पर उनकी प्रमुख पहचान टेपा सम्मेलन के संयोजक-आयोजक की थी। वैसे वे शिक्षाविद्, साहित्यिक-सामाजिक -सांस्कृतिक संस्थाओं के अध्यक्ष-सचिव, पत्र-पत्रिकाओं के स्तंभ-लेखक और समाचार-पत्रों एवं आकाशवाणी के संवाददाता रहे, पर उनकी एक पहचान व्यंग्यकार की भी थी। यह जुदा बात है कि वे परसाई, शरद जोशी, त्यागीजी, श्री लाल शुक्ल जैसे व्यंग्यकारों की परम्परा के वाहक नहीं थे। उन्होंने अपनी स्वतंत्र राह चुनी थी। उनका मानना था कि कथ्य, शिल्प ओर भाषा में ही व्यंग्य का सदिर्य-बोध है। उनकी एक खासियत यह थी कि उन्हें तात्कालिक विषयों पर झटपट स्तंभ-लेखन करने में महारत हासिल थी। इसलिए समाचार-पत्रों के संपादकों के अलावा धर्मवीर भारती जैसे दृष्टिसम्पन्न सम्पादक भी उनसे सामयिक घटनाओं पर तत्काल व्यंग्य लिख भेजने का आग्रह करते थे। हालांकि कई लोग स्तंभ-लेखन को प्रतिष्ठा का प्रतिमान नहीं मानते। पर इसे कमतर नहीं आँका जा सकता क्योंकि परसाई, शरद जोशी, त्यागी, गोपाल चतुर्वेदी, ज्ञान चतुर्वेदी आदि साहित्यकारों ने जमकर स्तंभ-लेखन किया और वह लोकप्रिय भी हुआ।

शिव शर्मा व्यंग्य-लेखन में किसी शास्त्र या विचारधारा विशेष के पक्षधर नहीं थे। वे खुलकर अपनी बात कहते थे। कभी-कभी बात बहुत तीखी और अटपटी होती थी। अटपटी इतनी कि उसे लेकर कई बार विवाद और मान-अपमान की स्थितयाँ बनीं। बाल कवि बैरागी ने अपने एक संस्मरण में शर्माजी को व्यंग्य की थाली में सुस्वादु करेला कहा था। करेला कड़वा होते हुए भी कई रोगों में गुणकारी है। व्यंग्य में भी लोक मांगलिक चेतना का भाव है। व्यंग्य रूई के उस फोहे की भाँति है जिसके एक ओर टिंचर आयोडिन तथा दूसरी ओर मरहम लगा है। व्यंग्य का काम आलोचना द्वारा समाज-सुधार का है। शर्माजी ने एक पुस्तक की भूमिका में जो लिखा उसका आशय था कि व्यंग्य-लेखन प्रकृति-प्रदत्त वैभव है। यह व्यंग्य-लेखक में 'इन-बिल्ट' होता है। उसे ऊपर से नहीं थोपा जा सकता। जो सूँघ सकता है, जासूसी कर सकता है, वही अच्छा व्यंग्यकार बन सकता है।

जन्म के तुरंत बाद माँ के अवसान और परिवार में घटी दुखद घटनाओं के बीच विपरीत परिस्थितियों में पले-बढ़े शर्माजी ने जो कठिन जीवन जिया, उसी का परिणाम है कि वे समाज में मौजूद विसंगतियों, विरोधाभासों और विद्रूपताओं को शिद्दत से व्यक्त कर सके। उनका मानना था कि सपाट जीवन आपको कुछ नहीं देता। संघर्ष और चुनौतियाँ ही रचनात्मकता का बायस बनती हैं। अपने कला-रूप को सँवारने का सारा श्रेय वे अपने गुरू डॉ. प्रभातकुमार भट्टाचार्य को देते हैं।

शिव शर्मा के चेहरे पर सदैव एक मधुर मुस्कान छायी रहती थी। उनका हँसमुख चेहरा आज भी नहीं भूलता। वे जब भी किसी से मिलते थे, चेहरे पर खुशी का भाव होता था। कुछ लोगों का मत था कि यह गेब्रियल मार्केजइ के जादुई यथार्थ की तरह था। पर इस कथन से सहमत हो पाना मेरे लिए मुश्किल है।

मूलतः मार्क्सवादी विचारधारा के पोषक तथा पूजा-पाठ से दूर रहने वाले शिव शर्माजी ने टेपा सम्मेलन में देशभर के शीर्षस्थ कलाकारों, रचनाकारों, संस्कृतिधर्मियों को आमंत्रित कर सम्मानित किया। उनपचास वर्षों से अविरल चल रहे इस आयोजन की

ख्याति देशव्यापी है। उनकी शिव-सेना के कुछ सिपहसालार आयोजन को सफल बनाने के लिए जी-जान से जुटे रहते थे। आयोजन में कई बार विवाद के अवसर भी आए। एक बार टेपा सम्मेलन के मौके पर शरद जोशी को शासन की ओर से प्राप्त होने वाली राशि भेंट कर सम्मानित करने की घोषणा होने के बावजूद सम्मान राशि देना संभव नहीं हुआ था। तब अपमानित हो शरद-जोशी ने मंच से ही शासन-प्रशासन और आयोजकों को तीखे शब्दों का प्रयोग करते हुए लताड़ा था।

लगभग डेढ़दर्जन कृतियों में शामिल डॉ. शर्मा के दो व्यंग्य उपन्यासों के उल्लेख के बिना यह चर्चा अधूरी रहेगी। एक - 'बजरंगा' जो काफी पहले लिखा गया था। समकालीन विसंगतियों, विशेषतः रूढ़िवादिता और धर्मांधता के विरोध में लिखा यह उपन्यास समाज को उसका असली चेहरा दिखाता है। सन् 2016 में प्रकाशित 'हुजूर-ए-आला' में रियासतकालीन परिवेश को प्रमाणिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास के सहलेखक ख्यात व्यंग्यकार रोमेश जोशी थे। भाषा और ट्रीटमेंट के स्तर पर उनके योगदान ने उपन्यास को क्लासिक बना दिया। यही वजहह है कि उपन्यास श्रेणी में उसे बेस्ट सेलर उपन्यास का दर्जा मिला।

डॉ. शिव शर्मा जैसा विलक्षण व्यक्तित्व भौतिक रूप से भले ही हमारे बीच न हों, पर उनका कृतित्व हमें सदैव प्रेरित-उद्वेलित करता रहेगा ! वक्रोक्ति की ओर से भावभीनी श्रृदांजलि।

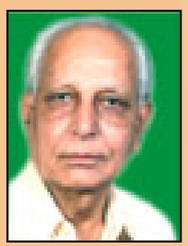

81, बैराठी कॉलोनी-2
इन्दौर-14 मो. 098938-10050

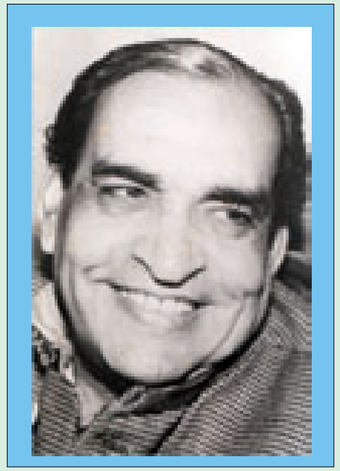

शिव शर्मा

जन्म : 25 दिसम्बर, 1938
शिक्षा : एम.ए.पी-एच.डी.(राजनीति विज्ञान)
अनुभव : माधव महाविद्यालय उज्जैन में 36 वर्ष तक अध्यापन एवं 2001 में आचार्य पद से सेवा-निवृत्त

- सांदीपनि महाविद्यालय के संस्थापक एवं अध्यक्ष
- महामंत्री-अखिल भारतीय कालिदास परिषद्
- राज्यस्तरीय मान्यता प्राप्त स्वतंत्र पत्रकार एवं लेखन
- यू.के., यू.एस.एस.आर. एवं अफगानिस्तान की विदेश यात्राएँ ➤ शोध में दर्जन भर छात्रों का निर्देशन

विशेष : - माधव कॉलेज में ऐतिहासिक शताब्दी समारोह का आयोजन ➤ शताब्दी सभा-भवन निर्माण ➤ लोकायुक्त की संभागीय सतर्कता समिति के सदस्य रूप में काम ➤ अन्तर्राष्ट्रीय कामन वेल्थ यूथ फेस्टीवल में वि.वि.का नेतृत्व ➤ उज्जैन में रंगमंच स्थापना में भागीदारी एवं 5वर्षों तक रामलीला का आयोजन - 50 वर्षों से प्रसिद्ध दशहरा उत्सव समिति के संरक्षक - गत 49 वर्षों से अ.भा.टेपा सम्मेलन का आयोजन।
लेखन एवं प्रकाशन : 50 वर्षों से व्यंग्य लेखन, देश की सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन, दर्जनभर व्यंग्य - संग्रह प्रकाशित, दो व्यंग्य उपन्यास क्रमशः 'बजरंगा' एवं ''हुजूर-ए-आला'' एवं एक व्यंग्य-एकांकी प्रकाशित, देसी राज्यों के स्वतंत्रता आंदोलन पर म.प्र. शासन द्वारा पुस्तक प्रकाशित।
निधन : 22 मई 2019

मैं कभी धार्मिक/आध्यात्मिक नहीं बन पाया

शिव शर्मा

1956 से उज्जैन आया और माधव कॉलेज में प्रवेश लिया। तब से 2000 तक एक छात्र, प्राध्यापक, प्राचार्य के रूप में इस एक शताब्दी पूर्व की संस्था से जुड़ा रहा। इसी कारण मैं और माधव कॉलेज एक-दूसरे के पूरक हो गए। मैंने पार्ट टाइम नौकरियाँ भी कीं, कभी रेल्वे टी.सी., कभी टीचर और कभी क्लर्क की, किन्तु कॉलेज नहीं छोड़ा और एम.ए. (राजनीतिशास्त्र) एवं पीएच.डी. की डिग्रियाँ प्राप्त कर, यहीं एवजी व्याख्याता की नौकरी में जम गया। माधव कॉलेज का मेरा कार्यकाल मेरे लिए स्वर्णकाल रहा है। 56 से 2000 तक एक ही संस्था में सतत रहने का रिकार्ड है। यहीं रहते हुए मैंने पत्रकारिता में हाथ आजमाए, नाटकों में भाग लिया। छात्रों की यूनीयनों का परामर्शदाता रहा। लगातार कई दशकों तक शिक्षक संघ का अध्यक्ष रहा। आपको यहाँ बता दूँ कि मालवा की सबसे प्राचीन इस संस्था में बालकृष्ण शर्मा नवीन, गजानन माधव मुक्तिबोध एवं नरेश मेहता जैसे साहित्यकार भी छात्र रहे हैं तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन में भी यहाँ के छात्रों, शिक्षकों ने हिस्सा लिया है। मालवा की राजनीति, साहित्य, शिक्षा, संस्कृति का यह गढ़रहा है। 120 वर्ष पुरानी इसकी ईमारत आज भी खड़ी है जहाँ बालगंगाधर टिळक ने अपने सहपाठी प्रो. ढेंकने को प्राचार्य बनाकर पुणे से भेजा था और जिन्हें ग्वालियर रियासत ने कलेक्टर उज्जैन भी बना कर रखा था। उसी संस्था से विक्रम विश्वविद्यालय का जन्म हुआ। यहाँ प्रो. पराढ़कर, बोरगाँवकर, डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन जैसे स्वनामधन्य प्राचार्य भी हुए। एक दशक तक डॉ. सुमन के बालहनुमान की तरह मैंने काम किया। डॉ. प्रभातकुमार भट्टाचार्य जैसे गुरु यहीं मिले, जिन्होंने मुझे कट्टर कम्युनिस्ट से उदारवादी बना कर रख दिया। मुझमें लेखन की ज्योत उन्होंने ही जलाई, वरना मैं तो गाँव का निरीह, गँवार टेपा भर ही था। यहीं टेपा-सम्मेलन का जन्म हुआ। 1970 के दिन थे, होली की मस्ती में घूम रहे थे कि मूर्ख सम्मेलन की तर्ज पर टेपा-सम्मेलन की प्रेरणा भी गुरु प्रभातजी ने दी। सूर्यनारायण व्यास, डॉ.शिवमंगल सिंह सुमन, डॉ.भगवतशरण उपाध्याय प्रथम टेपा बने। आज 44 वर्षों बाद भी वह परम्परा टूटी नहीं है। इसमें देश भर के सैकड़ों साहित्यकार, पत्रकार, फिल्मकार, नेता, अभिनेता अभी तक भाग ले चुके हैं। टेपा ऐसा चला कि गाँव-गाँव में टेपा-सम्मेलन होने लगे हैं। मुम्बई जैसे महागाँव में भी टेपा होता है। खाकसार को ही टेपा संस्कृति का जनक माना जाता है। टेपा का अर्थ मालवा का भोलाभाला, मूर्ख, ग्रामीण होता है जिसे सब मूर्ख बनाते रहते हैं। अभी तक पण्डित गोपालप्रसाद व्यास, काका हाथरसी, नीरज, शरद जोशी, परसाईजी, धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, मनोहर श्याम जोशी तक टेपा बन चुके हैं। यह पूरे देश में अपने प्रकार का अलग ही कार्यक्रम होता है। इसे देखने 25-30 हजार लोग तक जमा होते हैं। अब यह एक उत्सव बन गया है। माधव कॉलेज जैसी संस्था का मैं 1997 में प्राचार्य भी बन गया। इसबीच मैंने विलम्बित शताब्दी समारोह भी आयोजित किया। देश-विदेश के चार सौ से अधिक पूर्व महाविद्यालयीन छात्रों का यह अद्भुत मिलन समारोह था, जो मेरी धरोहर बन गया है। इसी काल में मैंने कॉलेज में शताब्दी हाल, द्वार तथा करोड़ों रुपये के निर्माण कार्य भी करवाए। मेरे जीवन का यह काल श्रेष्ठ काल रहा है। छः हजार छात्र, दो सौ प्राध्यापक एवं सैकड़ों कर्मचारियों को लेकर चलना दुष्कर कार्य था। मुझ से पूर्व प्राचार्य एक-दो वर्षों में ही लुट-पिट कर जा चुके थे। मेरे बाद के भी प्राचार्यों को जेल तक जाना पड़ा किन्तु शायद मेरा ही यह सौभाग्य रहा कि चाकू-छूरे तो क्या लाठी तक नहीं चली। चार वर्ष कैसे निकल गए, मुझे ही आश्चर्य होता है। मध्यप्रदेश का सबसे बदनाम कॉलेज, छःहजार छात्र और मैं अकेला। इसके बाद 2001 में तत्काल हृदय की शल्य चिकित्सा करवाना पड़ी। शायद यही कीमत थी जो मुझे चुकाना पड़ी थी। वैसे मैंने अपनी मातृसंस्था का ऋण तो चुका ही दिया। 36 वर्षों तक उसका नमक खाया था। मेरे प्राण भी चले जाते तो कोई गम नहीं होता, किन्तु 8 वर्षों बाद भी मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ तथा इस संस्था को नमन करता हूँ। उम्र के इस अन्तिम मोड़ पर, हमें दरकार होती है कि अपना खाता खोलकर देखें कि क्या पाया और क्या खोया। मैं नास्तिक तो नहीं किन्तु किसी भी पराशक्ति में विश्वास नहीं है, जो कुछ शक्ति है वह लौकिक है। अलौकिक कुछ भी नहीं, सिवाय एक छलावे के जो धर्म-अध्यात्म के व्यापारी हमें एक सपने के रूप में बेच रहे हैं। मौनी बाबा के उज्जैन आश्रम से मैं 10 वर्षों तक जुड़ा रहा। उनकी रामलीला भी की, किन्तु कोई चमत्कार नहीं दिखा। सिंहस्थ में सैकड़ों साधुओं के साक्षात्कार लिए। वहाँ भी कोई चमत्कार नहीं मिला। हाँ, साधुओं के केम्पों को, एक-दूसरे से लड़ते-भिड़ते अवश्य देखा है। मेरी राय में मनुष्य से बड़ा कोई नहीं और मानवता से बड़ा धर्म नहीं-शेष सब पाखण्ड एवं ढकोसला है। शायद इसका कारण किशोरावस्था में बिना पढ़े ही मार्क्सवादी बनना रहा होगा, उज्जैन जैसे धार्मिक नगर में मैं कभी धार्मिक, आध्यात्मिक नहीं बन पाया। हाँ, लोगों के दुःख-सुख को अवश्य ही अपना-सा पाया और खूब प्यार पाया और लुटाया भी। मैं एक कुर्ता-पाजामा पहनकर अपने गाँव से उज्जैन आया था। आज भी इसे ही अपनी पैतृक सम्पत्ति मानता हूँ। शेष सब इसी धरती का है। महाकाल की वन्दना से अपना टेपा-सम्मेलन कराता हूँ, किन्तु मेरा महाकाल तो वह समय है जिसका न कोई आदि है और न अन्त! उसे ही प्रणाम अवश्य करता हूँ। मैं इस संसार को नश्वर नहीं मानता और उसे बेहद प्यार करता हूँ। उसे सम्पूर्ण रूप से भोगना चाहता हूँ। जानता हूँ कि इसके बाद कोई स्वर्ग-नर्क नहीं है, कोई दूसरा जीवन नहीं है, जो भी करना है अभी और इसी वक्त कर डालो। कल कभी नहीं आएगा। मौज-मजे भी करो किन्तु दूसरों के लिए कुछ तो कर जाओ।

समावर्तन के स्तंभ 'सरोकार' से (दिसम्बर 2014)

'अब मैं किससे उस लिफाफे की शिकायत करूँगा ?'

ज्ञान चतुर्वेदी

शिव शर्मा जी को स्वर्गीय शिव शर्मा कहने की हिम्मत नहीं हो रही। इतनी जीवंत और खिलखिलाती उपस्थिति को अनुपस्थित मान लेने का मेरा मन नहीं करता। हिन्दी के हास्य व्यंग्य संसार में अपनी पहिचान आप बना लेने वाले शख्स थे शिव शर्माजी। और यह पहचान उन्होंने तब बनाई थी जब परसाई , शरद जोशी, त्यागी, के.पी. सक्सेना, श्रीलाल शुक्ल, लतीफ घोंघी, आदि प्रतिभाशाली व्यंग्यकारों की एक भीड़ सी थी व्यंग्य जगत में। सभी सक्रिय। सभी बेहतरीन। और इनमें भी परसाई और शरद जोशी का ऐसा प्रखर प्रकाश कि उस कौंध और चौंध में कोई अन्य नाम मानो दिखे ही नहीं। इसके बावजूद इसी भीड़ में एक अपनी पहचान बनाने वाला चेहरा । शिव शर्मा इस चकाचौंध में अपनी विनम्र पर महत्वपूर्ण उपस्थिति लगातार दर्ज कराने वाला नाम।..... शिव शर्मा।.....मैंने तो तब लिखना भी शुरू नहीं किया था शायद जब शिव शर्मा जी 'धर्मयुग' में लगातार छपकर एक बड़ा नाम बन चुके थे। मैंने शुरूआत से उन्हें एक बड़े लेखक के तौर पर ही जाना और उनकी यही छबि मेरे मन में आज तक है।

मुझे याद है कि तब धर्मयुग में दो शिव शर्मा छपा करते थे। एक तो ये थे ही अपने शिव शर्मा जी और एक डा. शिव शर्मा जी जो कदाचित आयुर्वेद के प्रकाण्ड विशेषज्ञ थे। मैं लम्बे समय तक दोनों को एक समझता रहा। मैंने तब व्यंग्य रचना शुरू ही किया था। मेरे मित्र अंजनी चैहान भी तब तक व्यंग्य में बड़ा नाम कमा चुके थे। शिव शर्मा जी से मेरी पहली मुलाकात एक प्रशंसक के रूप में तभी हु थी। मैं अंजनी के साथ उनसे उज्जैन में उनके घर पर मिला था। मेरे सामने धर्मयुग का बड़ा व्यंग्यकार बिराजा हुआ था। मैं अभिभूत था। अंजनी उनसे एक दोस्त और बराबर की हैसियत से मिल रहे थे और मैं संकोच से भरा एक ऐसा प्रशंसक जो शौकिया व्यंग्य लिखना तब शुरू कर रहा था। शिव शर्मा जी फिर भी मुझसे भी बहुत आत्मीयता से मिले। यूँ वे मुझसे ज्यादा अंजनी से बातें करते रहे। मैं एक प्रशंसक के तौर पर दो बड़ों की बातें सुनता रहा। और यह संतोष लेकर रीवा वापस लौटा कि आज मैं एक ऐसे लेखक के दर्शन करके लौट रहा हूँ जो इतनी नियमितता से धर्मयुग में छपा करता है। धर्मयुग तब महान लेखक होने की एक बड़ी कसौटी बन चुका था। इसमें तब एक बार भी छपना हिन्दी लेखन में बहुत बड़ी उपलब्धि माना जाता था। शिव शर्मा तो लगातार छपते थे। वाह। मैं अश अश करता रीवा लौटा था। मैंने उनको करीब से देखकर महसूस किया था और संतुष्ट हुआ था कि लेखक भी एक हाड़ माँस का बना सामान्य मनुष्य ही होता है। मुझमें विश्वास जगा था कि शायद मैं भी इसी तरह कभी एक लेखक बन सकूँ। क्योंकि लेखक को देवीय व्यक्ति नहीं होता है।

फिर मैं भी धर्मयुग में छपा। छपने लगा। खूब छपा। लगातार। देश भर में पहिचान बनाई। युवा उम्र में ही हिन्दी साहित्य ने मुझे आत्मीय सम्मान देना स्वीकार कर लिया। मुझे तो साहित्यकारों और हिन्दी विश्व के इस सम्मान का पता बहुत देर से चला। मैं तो बस लिखने और छपने के बाद भूल जाता था। डाक्टरी में मगन था बस। तब एक बार फिर से शिव शर्मा जी से मुलाकात का संयोग बना। मेरी उनसे दूसरी मुलाकात । .....इस बार शिव शर्माजी का पत्र मिला कि तुम्हें 'युवा टेपा सम्मान' के लिए चुना गया है। उज्जैन के टेपा सम्मान समारोह में पहुँचो। गोपाल प्रसाद व्यास को टेपा सम्मान मिलना है, तुम्हें युवा टेपा।.....मेरे लेखक जीवन का यह पहला पुरस्कार था। जीवन में बाद में बड़े पुरूस्कार मिले पर इस पुरूस्कार का आनंद ही कुछ और था। एक तो यह कि मुझे पहली बार पता चला कि हिन्दी व्यंग्य में शायद मेरी कोई पहचान बन गई है। जब शिव शर्मा जैसा बड़ा लेखक (वे टेपा सम्मान तथा समारोह के सर्वेसर्वा थे और जीवन पर्यन्त रहे) आपके लिखे को सम्मानित कर रहा है तो आपके लेखन में को तो बात होगी। मेरी नई-नई शादी हुई थी। बच्चे अभी नहीं हुए थे। सपत्निक पुरूस्कार लेने पहुँचा। लाला अमरनाथ जी (पिलकेन्द्र ने अपनी एक टेपा रिपोर्ट में धर्मयुग में चेताया था कि ये क्रिकेट वाले लाला अमरनाथ से अलग वाले हैं) जो टेपा सम्मान अपने पिता के नाम पर देते थे और टेपा समारोह के प्रमुख स्पान्सर थे, उनके घर पर ही हमें ठहराया गया। शिव शर्मा जी की आत्मीयता ने मुझे अविभूत कर दिया। इतना अविभूत के बाद में सम्मान स्वरूप पुरूस्कार राशि का जो लिफाफा सार्वजनिक रूप से मुझे मंच पर दिया गया वह एकदम खाली निकलने पर भी मैं शिव शर्मा से तब कुछ नहीं कह पाया। (बाद में जब जब मैं पिलकेन्द्र की तीन किताबों के विमोचन समारोह आदि में उज्जैन गया, जहाँ शिव शर्मा जी स्थाई अध्यक्ष होते थे तब मंच से अपने लिफाफे का जिक्र करके मैंने हमेशा शिव शर्मा जी को खूब छेड़ा और उस खाली लिफाफे का वैसा ही विनोद भरा जिक्र करके शिव शर्मा जी ने करके अपने ईमानदार खुले दिल का परिचय दिया) मैं तो सम्मान से ही संतुष्ट था। तब बातचीत में शिव शर्मा जी ने यह चिन्ता भी प्रकट की थी कि शादी के दो साल होने को आये, तुम्हारे बच्चे क्यों नहीं हो रहे ? उन्होंने बाकायदा कामशास्त्र के कुछ आसन, तथा तकिये का उचित स्थान पर लगाकर उचित उपयोग समझा कर अपना ''वात्स्यायन ज्ञान' भी मुझे दिया था जो उचित अवसर पर मेरे काम भी आया।

बाद में लम्बे वक्फे के लिये मेरा उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क नहीं रहा। उनकी कहानियाँ सारिका में पढ़ीं। वे बहुत अच्छे कहानीकार हो सकते थे। उनके व्यंग्य आते रहे। पर मूलतः वे टेपा सम्मेलन को समर्पित होकर संतुष्ट हो गए थे। उज्जैन का वार्षिक महामूर्ख सम्मेलन। अपनी लेखन तथा आयोजन की समस्त प्रतिभा उन्होंने टेपा सम्मेलन में लगा दी। यह सम्मेलन इतना बड़ा होता चला गया, इतना लोकप्रिय और इतना रोचक कि यह उज्जैन की एक पहचान बनता चला गया। और शिव शर्मा जी की भी। वे इस पहिचान से बड़े संतुष्ट भी हो गए थे। साल भर इसकी रिपोर्टे यहाँ वहाँ छपतीं। इसकी बातें होती। अगले टेपा सम्मेलन में क्या नया किया जायेगा, शिव शर्मा जी इसी में लगे रहते। उज्जैन और उसके आसपास उनकी इस टेपा सम्मेलन से जो पहचान बनी और जो आदर उनको मिला, उसकी गमक में शनैः शनैः उनका लेखन ठहर गया। वे व्यंग्य तथा कथा में बहुत आगे जाने के लिये बने थे पर स्वयं ही टेपा पर कहीं रूक गये। वे अपने शिष्य पिलकेन्द्र अरोरा के साथ टेपा सम्मेलन की सुखद यादों, नई योजनाओं और टेपा की (सीमित) उपलब्धियों की कस्तूरी में मग्न रहे।.....फिर उनके बारे में जब भी कहीं कुछ पढ़ता, टेपा के सन्दर्भ में ही ज्यादा होता। यूँ वे हिन्दी के व्यंग्य जगत में अपने तब तक के लेखन के कारण एक महत्वपूर्ण उपस्थिति बने रहे परन्तु हमेशा हम जैसे उनके प्रशंसक दुःखी रहे कि वे अपनी राष्ट्रीय व्यंग्य प्रतिभा को टेपा के सीमित दायरे में झोंक कर स्वयं से भी अन्याय कर रहे थे और व्यंग्य संसार से भी। पिलकेन्द्र अरोरा की प्रतिभा केा भी उसी छोटे रास्ते पर छोटी सी टेपा यात्रा को ही तीर्थ यात्रा मान लेने की राह पर जाता देखकर मैंने उसे आगाह भी किया था कि लेखन की दुनिया टेपा सम्मेलन से बाहर बहुत व्यापक है। पिलकेन्द्र अरोरा समझ भी गए। बाद के वर्षो में शिव शर्मा जी ने बाकायदा मुझसे कई बार कहा भी कि यार पिलकेन्द्र ने तुम्हें गुरू मान लिया और टेपा से निकल गया। वे इस बात से दुःखी थे। मैं क्षमा मांगने के अलावा और क्या करता। पर इन बाद के वर्षो में शायद उन्होंने भी यही महसूस किया। वे भी जान गए थे कि केवल टेपा सम्मेलन में सारी प्रतिभा लगाकर वे अपने साथ ही अन्याय कर बैठे थे। अन्तिम वर्षो में उन्होंने (स्व.) रोमेश जोशी के साथ मिलकर एक व्यंग्य उपन्यास भी रचा जो नया ज्ञानोदय के एक अंक में पूरा छपा भी । चर्चित भी हुआ। पर तब तक बहुत देर हो चुकी थी। उम्र नहीं बची थी कि व्यंग्य को वह सब दे पाते जिसके लिये वे बने थे।

मैं उज्जैन जाता रहा। विभिन्न साहित्यिक समारोह में। वे प्रायः अध्यक्ष होते और मैं मुख्य अतिथि। मैं मजे लेकर उस खाली लिफाफे की शिकायत मंच से करता और वे भी मजा लेते। मंच पर हमारी उस व्यंग्यमय जुगलबंदी का हम दोनों ने बहुत मजा लिया। मेरी कई रचनाओं पर वे फोन पर बधाई देकर पीठ थपथपाते। उनके बढप्पन, सहजस्नेह और मेरे प्रति प्रेम के कारण वे मेरे परिवार के बड़े जैसे महसूस होते थे मुझे। उज्जैन जाना हो या वहाँ की चर्चा हो तो हमेशा शिव शर्मा जी याद रहते। उज्जैन के साथियों से कभी बात हो तो प्रायः वह बातचीत टूटती कि शिव शर्मा जी कैसे हैं? उम्र के साथ जो बढ़प्प्न आता हैं उसकी मिसाल थे शिव शर्मा। उनका न होना एक बड़ी क्षति है- उनके प्रशंसकों, अनगिनत शिष्यों और मालवा के आमजन के लिए। व्यंग्य संसार के लिए तो है ही। और मेरे लिए ? मत पूछिये। अब मैं किससे उस खाली लिफाफे की बात करूँगा।

ए-40,अलकापुरी, भोपाल
मोबा. 9425604103

गुरूदेव हमारे दिलों में अमर हैं

रमेशचन्द्र शर्मा

यूँ तो गुरूदेव डॉक्टर शिवशर्मा के बहुत से घोषित-अघोषित शिष्य है।मगर मैं उनमें से एक हूँ ,जिन्हें माधव कॉलेज में गुरूदेव से राजनीति विज्ञान पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।गुरूदेव राजनीति विज्ञान सिर्फ पढ़ाते ही नही थे बल्कि सीधे दिमाग मे उतार देते थे।यही वजह थी कि मार्क्सवाद जैसा दुरूह सिद्धान्त और उसका द्वंदात्मक भौतिकवादी सिद्धान्त विद्यार्थी को समझ मे आ जाता था।वरना तो यह कहा जाता था कि द्वंदात्मक भौतिकवाद को समझाना हर एक के बस की बात नही है।गुरूदेव का समझाने का तरीका विषय को सरल और सुबोध बना देता था।उन दिनों मैं गुरूदेव का ऐसा शिष्य था जो ना समझ मे आने वाले सिद्धांतो को समझने के लिए उनके पीछे चींटे की तरह पड़ जाता।वे भी मेरी लगन को समझते थे।यही वजह है कि उन्होंने कॉलेज की लाइब्रेरी से अपने खाते में से एम ए स्टेंडर्ड की किताबें इश्यू करवा कर मुझे दी थी।जब कि मैं बी ए का छात्र था।

यह मेरी खुशकिस्मती थी कि कॉलेज से निकलने के बाद भी मेरा गुरूदेव से सम्पर्क बना रहा।मुझे पता ही नही मैने कब व्यंग्य लेखन शुरू किया।मगर व्यंग्य लेखन गुरूदेव से सम्पर्क की दूसरी पारी बना।व्यंग्य लेखन में वे सिर्फ मेरे ही नहीं बल्कि उज्जैन के सारे व्यंग्यकारो के गुरूजी थे।सच कहूं तो गुरूदेव शहर के व्यंग्य आकाश के सूर्य थे जिनके आसपास हम सारे व्यंग्यकार चक्कर लगाते थे। उनके बगैर नगर में कोई व्यंग्य कार्यक्रम सम्पन्न होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। वे एक विशाल वट वृक्ष थे जिनके साये में हम सब पनपते थे।गुरूदेव ने व्यक्तिगत रूप से भी मेरे लेखन की खामियों मुझे बताई और मार्गदर्शन भी दिया।

गुरूदेव के सामर्थ्य का प्रतीक बना टेपा सम्मेलन।असम्भव को सम्भव करता हुआ। लगातार कई वर्षो तक लोकप्रियता के कीर्तिमान बनाता हुआ। टेपा सम्मेलन के आंगन में प्रतिभाओं के कई फूल बरसो तक खिलते रहे। कई नामी गिरामी हस्तियां सम्मानित हुईं। मुझ नाचीज को भी गुरूकृपा से सन 1998 में श्रेष्ठ व्यंग्य लेखन के सम्मान से नवाजा गया।वह मेरे लेखकीय जीवन की सबसे बड़ी यादगार उपलब्धि है।

गुरूदेव डंके की चोट वामपंथी थे।उन्होंने कभी अपनी प्रतिबद्धता को छुपाया नही।मगर उनकी प्रतिबद्धता में संकीर्णता कभी नही रही।यही वजह है कि उन्होंने विपरीत खेमों से लेकर अवसरवादिता को हमेशा नजर अंदाज किया।यही वजह है कि उनका आशीर्वाद सबको समानरूप से प्राप्त होता रहा।गुरूदेव सिर्फ जबानी जमाखर्च वाले कॉमरेड नही रहे बल्कि वे मैदानी कॉमरेड थे।प्रतिक्रियावादी ताकतों को खुली चुनोती देने वाले।उन्होंने मौत को भी खुली चुनौती दी थी।उनसे हुई आखरी मुलाकात में उनके यह शब्द मुझे याद हैं उन्होंने कहा था, ''कम्युनिस्ट मौत से नही डरते।'' गुरूदेव हम सब के दिलो में हमेशा रहेंगे। वे अमर है।

बहादुरगंज, उज्जैन मो.89897-11959

दोस्ती का एक लम्बा सिलसिला

अशोक वक्त

उज्जैन के माधव कॉलेज में बी.ए.प्रथम वर्ष में प्रवेश लेने के बाद एक दो साल में ही प्रो.नवीन डेविड, डॉ. शौकत सिद्दीकी, प्रो. उपेन्द्र पंत, प्रो. विमल चोपड़ा और डॉ. शिव शर्मा से रिश्ते दोस्ताना हो गए थे, जो समय के साथ और प्रगाढ़होते चले गए। बाकी सब एक-एक कर बिछड़ते चले गए, एक शिव शर्मा ही रह गए, जिनसे गाहे-बगाहे पुरानी यादें साझा हो जाया करती थीं। शिव शर्मा से पहली नजदीकी का सबब बनी थी, माधव कॉलेज की वार्षिक पत्रिका 'माधविका'। तब डॉ. शर्मा कालिदास मार्ग (मक्सीरोड) पर किराए के मकान में रहते थे। मेरी बी.ए.प्रथम वर्ष की परीक्षा चल रही थी, राजनीति विज्ञान की एक किताब लेने मैं डॉ. शर्मा के घर गया था। बातचीत में उन्होंने बताया कि प्राचार्य बी.एन. लुणिया ने 'माधविका' के प्रकाशन की अनुमति दे दी है पर उसकी सामग्री की तैयारी तो कुछ भी नहीं है। घर लौटकर मैंने रात नौ बजे से सुबह चार बजे तक अपनी निजी डायरी के आधार पर कॉलेज की पूरे सत्र की गतिविधियों का विस्तृत रिपोर्ताज लिख दिया और डॉ. शिव शर्मा को दे आया। रिपोर्ताज पढकर वे बहुत प्रसन्न हुए और प्राचार्य से अनुमति लेकर मुझे माधविका का सम्पादक ही बना दिया। माधव कॉलेज के 73 वर्षों के इतिहास में यह पहला ही अवसर था, जब प्रथम वर्ष के किसी छात्र को वार्षिक पत्रिका के सम्पादन का दायित्व दिया गया था (1969-70) और इसके बाद भी फिर आज तक ऐसा नहीं हुआ।

'माधविका' के सम्पादन और प्रकाशन के सिलसिले में डॉ. शिव शर्मा से करीब दो माह तक बार-बार मिलना हुआ, आपस में निकटता बढ़ी और हम दोस्त बन गए। यह दोस्ती उनकी दुनिया से विदाई तक लगातार बनी रही।

1970 के दशक में माधव कॉलेज के विद्यार्थी संघ के प्रमुख और साहित्यिक, सांस्कृतिक गतिविधियों के संयोजक डॉ. शिव शर्मा ही हुआ करते थे और यह उनकी उदारता ही थी कि अक्सर कार्यक्रमों के संचालन का अवसर वे मुझे ही देते थे। उनके संयोजन और मेरे संचालन में उन दिनों माधव कॉलेज में अनेक यादगार आयोजन हुए, जिनमें अज्ञेय और भवानीप्रसाद मिश्र जैसी कई विभूतियों का आगमन हुआ था। कॉलेज के 73 वें वार्षिक स्नेह सम्मेलन में मुक्त आकाशी रंगमंच पर दो नाटकों का मंचन हुआ था। पहले नाटक 'प्रभात की किरण' का लेखन और निर्देशन मैंने किया था। दूसरा नाटक था, डॉ. शिव शर्मा का प्रहसन 'पुराने चावल' जिसका निर्देशन आलोक मेहता ने किया था। इस प्रहसन के माध्यम से ही डॉ. शर्मा के लेखन से मेरी पहली पहचान हुई थी, तब लिखा था मैंने ''इस एकांकी ने दर्शकों को मानसिक विश्राम दिया और दिये मधुर किन्तु तीखे व्यंग्य। प्रहसन (पुराने चावल) ने न सिर्फ शिष्ट हास्य की उत्पत्ति की वरन साथ ही समाज की उन कमजोरियों पर से भी पर्दा हटाया, जो उसे अन्दर ही अन्दर खोखली बनाती जा रही है। चावलों का यह पुरानापन वास्तव में समाज के कला, साहित्य आदि विभिन्न वर्गों में स्थापित, उन मठाधीशों का पुरानापन है, जो नए रक्त के प्रवाह में बाधक हैं। चुटीले संवादों और पात्रों की क्रियाओं पर दर्शकों की हँसी की खिलखिलाहट, राधाकृष्णन हॉल से गांधी हॉल तक उस सर्दीली रात (2 जनवरी 1970) में भी ऊष्मा पैदा कर जाती थी। मुखौटा धारण किए हुए जो लोग समाज को घुन की तरह खा रहे हैं, उनके लिए प्रहसन विनोद का नहीं बल्कि करारी चोट का साधन था। डॉ. शिव शर्मा ने अपने व्यक्तित्व के समान ही जिस खूबी से प्रहसन लिखा, कलाकारों ने उसका वैसा निर्वाह भी किया।'' 1970 के दशक का शुरूआती दौर छात्र-आक्रोश के विस्फोट का समय था, जिसमें अधिकांश प्राध्यापक किसी तरह बच निकलने की जुगाड़ में ही रहते थे लेकिन डॉ. शिव शर्मा उनमें से नही थे, वे तो हँसते, हँसाते साहस और निर्भीकता के साथ नई पीढ़ी का पथ प्रशस्त करने के लिए हमेशा तत्पर रहते थे। डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन' के बाद यह हिम्मत उज्जैन शहर ने डॉ. शिव शर्मा में ही देखी। इसके पीछे डॉ.शिव शर्मा का अपना मौलिक दर्शन था, जिसकी कैफियत उनके उस सम्पादकीय से जानी जा सकती है, जो उन्होंने माधविका (1969-70) के लिए लिखा था-''एक पूरा सत्र गुजर गया...चुपचाप और पता तक नहीं चला, झण्डिया बाँधते और झण्डे बनाते छात्रों के बीच सच्चे और झूठे 'आक्रोश' के विभिन्न पोज के बीच। चाहे वे नारों से छपी दीवारों पर पोता लगायें या जोश-खरोश से नारे लगायें,,,,उनकी आक्रोशी मुद्रा, छिपाये नहीं छिपती, लगता है वे सबसे नाराज हैं ? और इन सब विकट मुद्रा वाले छात्रों के बीच मुझे एक वर्ष तक नट की रस्सी पर चलने का कार्य सौंपा गया। मेरे हितैषी मित्रों ने संलाह दी- पाँव न फंसाओ, चैन से दुश्मनी न करो, किन्तु मेरा छात्र-समुदाय पर अंधविश्वास.....किसी ओझा के मंत्र-तंत्र की तरह, मैं डटा रहा.....गिरने की कई बार स्थिति आई किन्तु 'धड़ाम' वाली 'पोजीशन' नहीं आई। आक्रोश सहज है.....वर्तमान वि.त स्थितियों से उपजा है। उसका रूप कुछ भी हो, यह भी हो कि दिशाहीनता हो.....जरा-जरासी बात पर हनुमानी मुद्रा हो। चाय-पान पर सशस्त्र संघर्ष हो, किन्तु सबकी तह में एक ही बात है कि वे सबसे नाराज हैं। इस बात की शिकायत भी नहीं कि यह आक्रोश क्यों ? बस इतना गम है कि यह आक्रोश, नालियों में पानी की तरह, व्यर्थ बह न जाये, निरीहजनों के लिए दो कौर जुटाने के बजाय। तूफान का यह वेग, कहीं अपनी जड़ों को ही न उखाड़ ले जाये....और फिर ?''

डॉ. शिव शर्मा में आत्मावलोकन का साहस भी था, अपने सम्पादकीय में उन्होंने आगे लिखा था- ''आक्रोश हम पर भी, अनुचित नहीं है'' ? पुरानी पीढ़ी की तरह सहज, सरल जीवन, उपलब्धियाँ कहाँ है ? है, तो बस चारों ओर से अँगुलियाँ, ताने की, उलाहने की अँगुलियाँ.....तुम यह हो....तुम वह हो.....पतित हो.... गिर गये हो....काश, इन गुस्सैल छात्रों के बीच कोई रहकर देखे, पास से, कितना अन्तर है ? ये फिल्मी एक्टरों की तरह 'मुद्रा' बनाते हैं- किसी 'विलन' की तरह 'भोहें' तानते हैं- पर है कहाँ....पास जाओ तो तरल, सरल-थोड़े असमझ। मुझे लगता है-नयी तस्वीर तैयार हो रही है-फोकस से अभी दूर है....किन्तु उसे बनने से रोकना असंभव है।''

डॉ. शिव शर्मा नई पीढ़ी के सकारात्मक पक्ष को भी देखते थे, उन्होंने लिखा था अपने सम्पादकीय में- ''साम्प्रदायिक तनाव के वर्ष में भी, ये (विद्यार्थी) बहके नहीं..... गाँधीशती के वर्ष में, इन्होंने गाँधी को कलंकित नहीं किया.....पुरानी पीढ़ी की तरह, भाई ने भाई के बच्चों को आग में जिन्दा नहीं जलाया.... केवल अपनी माँगों के लिए थोड़े काँच तोड़े हैं या गमले फोड़ दिये हैं। इन्होंने गाँधीजी को न देखा, न छुआ, किन्तु समझा उनसे अधिक, जो गाँधीजी की पीढ़ी के लोग हैं। गाँधीजी के उच्चादर्श नहीं सीख पाये, किन्तु उच्चादर्शों को रटने वाले लोगों की तरह वे जातियों, उपजातियों के 'सेल' में चिपके हुए नहीं हैं- आक्रोशी पीढ़ी 'स्वहित' के लिए इन 'सेलों' पर टिकी हुई नहीं है। अस्तित्व का सूनापन... रिक्तता...अभाव ने उन्हें इन 'सेलों' को तोड़ने पर मजबूर किया....मेरी यह मान्यता पुस्तकों के ज्ञान द्वारा नहीं, व्यक्तिगत रूप से सहने के बाद बनी। वर्ष भर के तूफानी कार्यक्रम, उनमें नकली लड़ाईयाँ....नाटकीय झगड़े....'कार्यक्रम रात में करो'....और रात में किसी ने न देखे....दिन भर कार्यक्रमों का रसपान करते रहे...ध्रुवीकरण की संगोष्ठी सुनी....मुशायरा सुना.....कवि सम्मेलन सुना।....रातभर झंडिया बाँधी....मुख्य अतिथि जिन्दाबाद का नारा लगाया, किन्तु बाहर उन्हीं कंठों में कुछ दूसरा स्वर-विचारों का संघर्ष-अद्भुत समन्वय।

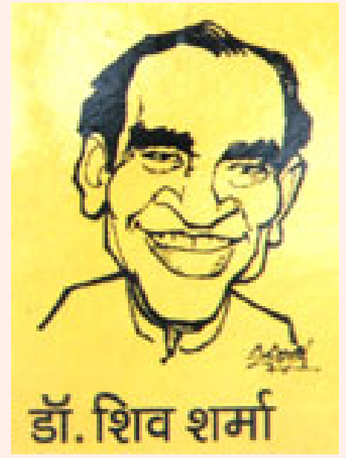

डॉ. शिव शर्मा युवा आक्रोश के बीच बदलाव की नई उम्मीद देखते थे, उन्होंने अपने सम्पादकीय के अखीर में लिखा था- ''सच तो यह है कि मुझे अपना 'प्रोफेसरी मुखौटा' पूरे वर्ष निकाल कर रख देना पड़ा। केन्टीन में या स्वागत समारोह में मैं उनके साथ रहा, जो जरा-जरा सी बात पर बिगड़ जाते हैं, जिनको संभालने में अपना नाम तक भूलना पड़ता है। उनकी आलोचनाएँ, उनका सन्देह, कभी-कभी कटु लगता है, खीज होती है.....छोड़ चलो सबको.....जाने दो। फिर लगता है....उनमें न रहे तो उनके अविश्वासों, सन्देहों, भ्रान्तियों को कैसे समझा जाएगा ? फिर वे और दूर चले जाएँगे, अपने से, समाज, परिवार से - जहाँ से उन्हें कोई लौटा नहीं सकता। उनको निकट लाना होगा, (अपने लिए ही सही) फिर उनकी कटु आवाजों, चीखों के बीच भी, कोई टूटा हुआ ही सही, एक कंपकंपाता स्वर सुनाई देता है....एक लय, एक रिदिम्। आक्रोश की चट्टानों के बीच में, किसी दरार में कोई बिरवा पल रहा है....कैक्टस हो या काँटों भरा गुलाब-है अवश्य कुछ जो इन चीखो-चिल्लाहटों की भुतहा दुनिया में भी रहने को मजबूर करता है।''

डॉ. शिव शर्मा नई पीढ़ी को हमेशा प्रोत्साहित करते रहे-आलोक मेहता से पिलकेन्द्र अरोरा और हरीशकुमार सिंह तक। उनकी प्रेरणा से, उनके मित्र गोविन्ददास ने जब 'दैनिक विक्रम दर्शन'' का प्रकाशन शुरू किया था तो उसका पहला सम्पादक उन्होंने मुझे ही बनवा दिया था, यह मेरी पत्रकारिता की शुरूआत थी, गो कि तब मैं बी.ए. ही कर रहा था। उन्हीं दिनों एक सेमिनार में भाग लेने के लिए मैं तिरूपति गया था, तब मद्रास के रेल्वे स्टेशन पर बुक स्टाल से 'सारिका' का नया अंक खरीदा, जिसमें पहली बार उनकी कहानी छपी थी, जिसे पढ़कर मैं बहुत खुश हुआ था और मैंने उन्हें लम्बा पत्र लिखकर आग्रह किया था कि वे व्यंग्य के बजाय कहानियाँ ही लिखें। डॉ. शिव शर्मा के व्यक्तित्व और लेखन पर पहला लेख भी मैंने ही लिखा था, करीब 45 साल पहले, जो 'विक्रम विश्वविद्यालय समाचार में' प्रकाशित हुआ था। तब मैंने लिखा था-' अभी उनकी चर्चा का प्रसंग है, उनका सद्यः प्रकाशित प्रथम रचना संकलन 'जब ईश्वर नंगा हो गया'। इसमें उनकी कहानियाँ है, व्यंग्य हैं और संस्मरण। कहानियों वाला हिस्सा बहुत ही प्रभावोत्पादक है। उनकी कहानियों की पृष्ठभूमि उनकी अपनी है। धार्मिक कस्बे की तह-दर-तह उघड़ती फूहड़ता और रियासती मेहराब का गिरता हुआ मलबा। ये कहानियाँ अपने परिवेश के प्रामाणिक रिपोर्ताज है। शिव शर्मा की खूबी इस बात में है कि कहानियों में उन्होंने अतिरिक्त रूप से कुछ भी कहने की कोशिश नहीं की है, जो जैसा है, उसे पूरी तरह उभारा है, उकेरा है। यथास्थिति की ठहरी हुई, सड़ती लाश का जीवन्त चित्र स्वमेव ही व्यंग्य है, करूणा भी उपजाता है और प्रगतिशीलता का तत्व हर कहानी में सहज ही आकर अपनी 'पी' लगवाता है। व्यंग्य ठीक है, अगर कुछ कमजोर रचनाओं को संग्रहित करने के मोह से लेखक उबर पाता तो कुछ प्रभावी उत्पादकता बढ़ती ही। संस्मरण तीन ही है, सहज। पूरी किताब दो बार पढ़जाने के बाद कमलेश्वर की उस सोच की ही पुष्टी हुई, जो उन्होंने 'रंगप्रभात' के कार्यक्रम में पहली बार उज्जैन आने के समय (अक्टोबर 1974) कही थी कि शिव शर्मा अगर कहानी लेखन में अपने को कन्सन्ट्रेट करें तो उनमें व्यापक संभावनाएं हैं। ये कहानियाँ, जिन्होंने कमलेश्वर को भी प्रभावित किया है और जो अपनी रचना भूमि, भाषा-शैली हर लिहाज से आम आदमी की संवेदना को छू पाने में समर्थ हैं, शिव शर्मा के लिए एक अलग जगह बना पाने का रास्ता देती है, जहाँ न वे समसामयिक लेखन के नकलीपन से जुड़े होंगे और न ही आँचलिक लेखन का तमगा लगाए होंगे।''

डॉ. शिव शर्मा की पहली किताब 'जब ईश्वर नंगा हो गया' की पहली समीक्षा भी मैंने अपने अनियतकालिक पत्र 'कशमकश' में प्रकाशित की, जो प्रकाश उप्पल ने लिखी थी। प्रकाश उप्पल ने लिखा था- ''पुस्तक में छः कहानियाँ हैं। व्यंग्य ही इन कहानियों का धरातल है, जहाँ समाज के दूषित अंगों का ऑपरेशन किया गया है। इन कहानियों में 'जब ईश्वर नंगा हो गया' सर्वोत्तम कही जा सकती है। उसके बाद 'तुर्रा-किलँगी' और 'शहर में क्या हो रहा है' का क्रम आता है। इन कहानियों के परिवेश में लेखक की दृष्टि अत्यन्त पैनी और पारदर्शी है। पहली कहानी में ईश्वर पर पूँजीवादी सभ्यता का प्रभाव तथा उसके सात्विक मूल्यों के अवमूल्यन के साथ ही गरीब मन्दिर के गरीब पुजारी की मनोव्यथा बड़ी अच्छी तरह उभारी गई है। 'तुर्रा-किलंगी' में जागीरदार-राजाओं के थोथे गौरव का चित्रण भी बड़ा सटीक है। लेखक का काफी नैकट्य इस वातावरण से रहा है, तभी इतना पैनापन इसमें परिलक्षित होता है। इस वर्ग को बड़ी सार्थकता से बेनकाब किया गया है।.....व्यंग्यों में 'कॉक्टेल पार्टी' और 'जनता का अस्पताल' उल्लेखनीय है। 'अफलातून की अकादमी' में शिक्षक की जिस नियति को उभारा गया है, वह बड़ी मार्मिक बन पड़ी है। 'टेपा सुल्तान' का परीक्षा केन्द्र' व्यंग्य कम, फैन्टेसी ज्यादा लगता है। संस्मरणों में 'टेपा सम्राट दुष्यन्त' बड़ा ही मनोहर और हृदयस्पर्शी है।''

अपनी पहली पुस्तक 'जब ईश्वर नंगा हो गया' डॉ. शिव शर्मा ने स्वयं प्रकाशित की थी, उनकी दूसरी किताब 'चक्रम दरबार' मैंने अपने अनीता प्रकाशन से छापी थीं, जो विशुद्ध व्यंग्य संग्रह है और मेरी दृष्टि में यही उनका प्रतिनिधि व्यंग्य संग्रह भी है।

तिवारी कॉलोनी, (राजस्व कॉलोनी के पास), उज्जैन

डॉ शिव शर्मा को याद करते हुए !

कैलाश मण्डलेकर

ये, उन दिनों की बात है जब नईदुनिया के अधबीच नामक कॉलम में, व्यंग्य लिखने का चस्का लगा हुआ था।व्यंग्य का यह लोकप्रिय कॉलम हुआ करता था, अब भी है।दरअसल अधबीच व्यंग्यकारों की एक चौपाल जैसी बन गई थी जिसमे अनेक नामचीन व्यंग्यकार भी यदा कदा हाथ आजमा लिया करते थे । इन नामचीनों में ज्ञान चतुर्वेदी, अजातशत्रु और डॉ शिव शर्मा भी थे। पहले इस कॉलम को रणवीर सक्सेना देखते थे, बाद में यशवंत व्यास और सूर्यकांत नागर ने मोर्चा सम्हाला। अधबीच का अनुकरण करते हुए बाद में अनेक अखबारों ने व्यंग्य के स्तम्भ शुरू कर दिए। मेरा पहले का अधिकाँश लेखन इसी अधबीच में हुआ। खुली सड़क पर नामक मेरे व्यंग्य संग्रह पर लोगों का आरोप यही था कि बहुत छोटे लेख हैं। मजबूरी यह थी कि अधबीच में लिखने वाले को कॉलम की सीमा का ध्यान रखना पड़ता था। बहरहाल,इसी अधबीच में छपे मेरे किसी व्यंग्य को लेकर एक दिन नईदुनिया के मार्फत डॉ शिव शर्मा की चिट्ठी आई लिखा था कि तुम अच्छा लिखते हो, कभी उज्जैन आओ तो मिलना। वह अंतर्देशीय पत्र था पर उन्होंने सिर्फ तीन चार पंक्तियाँ ही लिखी थीं। यह भी लिखा था कि तुम्हारे व्यंग्य ध्यान से पढता हूँ। पत्र पर ऋषि नगर उज्जैन का पता था। मैंने तत्काल इस पते पर जवाबी चिट्ठी लिखी कि जरूर आउंगा। बात आई गई हो गई - बाद में उज्जैन तो कई बार जाना हुआ पर डॉ शिव शर्मा से मिलने में हर बार संकोच होते रहा, वे उन दिनों माधव कॉलेज के प्राचार्य हुआ करते थे। लेकिन मामला यहीं खतम नही हुआ। एक दफे अखबार में पढ़ा कि उज्जैन के टेपा सम्मलेन द्वारा व्यंग्य प्रतियोगिता आयोजित की जा रही है जिसमे व्यंग्यकारों को पुरस्कृत किया जाना है, लिहाजा उत्सुक प्रतियोगी अपनी तीन रचनाएं भेजें। उन दिनों ऐसी प्रतियोगिताओं में भाग लेने का उत्साह जोरों पर था। वह उत्सुकुता और प्रतिस्पर्धा की उम्र थी। मैंने तुरंत अपनी दो तीन रचनाये टाइप करके, दिए गए पते पर भेज दी, और भूल भाल गया। कुछ दिनों बाद पता चला कि बन्दा इस प्रतिस्पर्धा में चुन लिया गया है। डॉ शिव शर्मा जी ने फोन पर बधाई देते हुए कहा कि प्रथम रामेन्द्र द्विवेदी पुरस्कार के लिए तुम्हारा चयन हो गया है तथा इस बाबत तुम्हे लिखित रूप से भी सूचित किया जाएगा। मेरे लिए उस दिन की यह सबसे हैरत अंगेज और उल्लेखनीय खबर थी, बाद में एक सुन्दर लेटर पेड पर डॉ हरीश कुमार सिंह की चिट्ठी मिली जिसमे पुरस्कार की राशि, तारीख और स्थान आदि की सूचना दी गई थी। उस दिन शाम को इस सम्मान की खबर दूरदर्शन के प्रादेशिक समाचारों में भी टेलीकास्ट हुई । तब चैनलों का फैशन नही था लिहाजा लोग दूरदर्शन के समाचार ध्यान से सुनते थे। खबर के प्रसारित होते ही बधाइयों का तांता लग गया। वे बहुत रोमांचक क्षण थे।

यह टेपा सम्मलेन का अट्ठाविसवाँ समारोह था जहां प्रसिद्द कथाकार कमलेश्वर के हाथों मुझे पुरस्कृत होना था। इस कार्यक्रम में कमलेश्वर के अलावा, डॉ सरोजनी प्रीतम, और कन्हैयालाल नन्दन की भी उपस्थति की सूचना थी। लेकिन सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण सूचना यह थी कि फिल्म अभिनेता शेखर सुमन को भी इसी मंच से सम्मानित किया जाना है। शेकर सुमन उन दिनों उज्जैन के अतीत पर बनी फिल्म ''उत्सव'' में अभिनय कर चुके थे और इस फिल्म की अभिनेत्री रेखा थीं। शेखर सुमन का नाम सुनकर मेरे बेटे चिरंजीव बकुल तथा मेरे अभिन्न मित्र अरूण सातले भी उज्जैन चलने को तैयार हो गए। इन दोनों का आग्रह था कि आपको अकेले नही जाने देंगे। इतना बड़ा सम्मान क्या आप अकेले ही ग्रहण कर लेंगे । लोग क्या कहेंगे। अरे, इसके साथ कोई नहीं आया। मै जानता था कि ये दोनों सज्जन मेरे सम्मान से ज्यादा शेखर सुमन को देखने को लालायित हैं। और संभव हो सका तो उसके साथ फोटो खिचाने की इच्छा भी पाले हुए हुए हैं। बहरहाल ये लोग साथ हो लिए और बाद में उज्जैन जाकर शेखर सुमन के साथ फोटो भी खिंचवाई, साथ ही नजदीक के किसी होटल में दाल बाफले भी जमकर सूते। लौटते वक्त इन लोगों ने बताया कि शेखर सुमन बहुत अच्छे लगे लेकिन उनसे भी ज्यादा अच्छे वहाँ के दाल बाफले थे। बहरहाल उस दिन कालिदास आकादमी के मुक्ताकाशी मंच पर कमलेश्वर जी के हाथों पुरस्कृत होना बहुत सुखद रहा, यह मेरे जीवन का पहला पुरस्कार था जो इतने विशाल जन समुदाय के बीच मुझे प्रदान किया गया। तब पहली बार मैंने डॉ शिव शर्मा को हास्य मिश्रित व्यंग्य प्रशस्तियाँ सुनाते हुए देखा। डॉ शिव शर्मा मुझे देख कर बोले अच्छा तो तुम कैलाश मंडलेकर हो। उज्जैन में उस दिन डॉ पिलकेंद्र अरोरा, डॉ हरीश कुमार सिंह और रमेशचंद्र शर्मा से भी मुलाकात हुई लेकिन यह बहुत औपचारिक भेंट ही कही जायेगी। दरअसल टेपा सम्मलेन की शुरूआत भले ही हलके फुल्के ढंग से हुई हो लेकिन डॉ शिव शर्मा के संयोजन में धीरे धीरे यह हास्य व्यंग्य का अंतर्राष्ट्रीय स्तर का आयोजन होते चला गया। डॉ शिव शर्मा हिंदी व्यंग्य को दो दिशाओं से समृद्ध कर रहे थे। एक ओर वे टेपा सम्मलेन में व्यंग्य की नामचीन हस्तियों को बुलाकर मध्य प्रदेश की हिंदी व्यंग्य परम्परा को समृद्ध कर रहे थे और इसी के साथ खुद भी व्यंग्य लेखन से आखिरी वक्त तक जुड़े रहे। तब तक उनके चार पांच व्यंग्य संग्रह तथा एक व्यंग्य उपन्यास आ चुका था। इनमे प्रमुख रूप से शिव शर्मा के चुने हुए व्यंग्य, चक्रम दरबार, व्यंग्य एकांकी थाना आफत गंज तथा आध्यात्म का मार्किट आदि प्रमुख थे। हुजूर ए आला नामक उपन्यास लगभग अंतिम दौर में आया जो ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुआ तथा चर्चित भी हुआ। अपने अंतिम दिनों तक वे आउट लुक में लिखते रहे लेकिन उनकी प्राथमिकताओं में सिर्फ टेपा सम्मलेन ही रहा। पचास वर्षों तक किसी आयोजन का सफलता पूर्वक संयोजन कर लेना उनके ही पुरूषार्थ की बात थी। इस आयोजन से वे, इतने प्राण पण से जुटे रहे कि धीरे धीरे वह उनके जीवन का हिस्सा बन गया। एक जगह उन्होंने लिखा है कि ''पता नही क्या होता है कि मार्च माह से ही एक फुरफुरी सी होने लगती है। सब तरफ टेपा ही टेपा दिखाई देने लगते हैं। मेरा मुकद्दर भी अच्छा रहा कि देश भर में जिससे भी याचना करता हूँ वह मंच पर उपस्थित हो जाता है''। टेपा सम्मलेन पर यदा कदा अश्लीलता के आरोप भी लगे पर वे इससे कभी विचलित नही हुए वे कहा करते थे कि टेपा सम्मलेन के निंदक आम लोग नही होते मेरे अपने मित्र ही होते हैं जो मंच पर चढ़कर अपने को सिद्ध करने की जुगाड़ में लगे रहते हैं। जब उन्हें इसमें निराशा मिलती है तो वे टेपा समारोह के विरूद्ध अनर्गल प्रचार करते हैं। किन्तु टेपा सम्मलेन है कि फलता फूलता ही रहता है।

रचनात्मकता और आयोजनधर्मिता को वे एक मिशन की तरह मानते रहे। कुछ वर्षों पहले शरद जोशी प्रसंग में जाने का अवसर मिला तब उनसे मेरी दूसरी बार मुलाकात हुई थी । यह अभी अभी की बात है, उम्र के असर ने भले ही शारीरिक रूप से उन्हें कुछ शिथिल बना दिया था लेकिन अतिथि सत्कार और कार्यक्रम की सफलता के प्रति उनके उत्साह और जज्बे में जरा भी कमी नही दिखा पड़ी। इस आयोजन में शरद जोशी के बहाने डॉ प्रेम जनमेजय ने हिंदी के समकालीन व्यंग्य पर बहुत उल्लेखनीय वक्तव्य दिया था। वरिष्ठ व्यंग्यकार गोपाल चतुर्वेदी, सूर्यकांत नागर, डॉ जवाहर चौधरी सहित आसपास के अनेक युवा व्यंग्यकारों ने इस कार्यक्रम में शिरकत की थी। बहरहाल हिन्दी व्यंग्य में जिस गहराई से सामाजिक विद्वेष, राजनीतिक विसंगतियां तथा धर्मान्धता पर प्रहार करते हुए डॉ शिव शर्मा ने अपना लेखन किया वह नई पीढी के लिए प्रेरक है, उनके जाने से जो शून्य निर्मित हुआ है उसकी पूर्ति असम्भव है।

38 जसवाड़ी रोड बैंक ऑफ इंडिया के पास,
खंडवा (म.प्र.) मो. 9425085085

सूर्यकांत नागर

मस्त फकीर

नाम भर नहीं थे
शरण, त्यागी और परसाई
वाहक थे सर्जन, दर्शन और श्रेष्ठ परम्परा के
शिव भी मात्र नाम नहीं है
कंठ में धारे गरल/नीलकंठ हैं।

तेजस्वी युग पुरुष थे तुम
नाम के अनुरूप
केवल व्यंग्यकार नहीं थे
प्रवाहमय थी तुम्हारे अंदर
मूल्य, धर्म और संवेदना की त्रिधारा

नहीं बर्दाश्त था तुम्हें
रोज-रोज होता अनाचार
असंदिग्ध थी प्रतिबद्धता
इसीलिए होती थी/सामाजिक सरोकारों से आबद्ध
तुम्हारा हर पाँत
नहीं भूलेगा कभी
तुम्हारा वह हँसमुख चेहरा
बेबाकी, वाकपटुता और चुहलबाजी
निश्चित ही अमर कर गए हो नाम
अपनी रचनात्मकता से।

मो.98938-10050

प्रदीप 'नवीन'

हँसना है अनिवार्य

शिव में ही शिव समा गये
दुखद/सुखद है बात,
काल चक्र को दे सका
कौन यहाँ पर मात?

शिवजी का शृंगार करें
रोज लगावें भस्म,
अलग समय की पद्धति
अलग अलग है रस्म।

सबके जीवन में आते
हर पल दुख के क्षण,
कुछ तो सिर्फ हँसाने का
कर लेते हैं प्रण।

सम्मेलन में टेपा का
एक अलग ही रंग,
जिधर भी जाए नजर उधर
केवल व्यंग्य ही व्यंग्य।

पता नहीं कितने टेपा
उनमें हो गए टेप,
भूले से भी हुआ नहीं
थोड़ा सा भी गेप।

नेता या अभिनेता हो
कलमकार साहित्य,
हँसा चन्द्रमा जोर से
मुस्काया आदित्य।

यरि असंभव सा लगे
करना कोई कार्य
वह संभव हो जाएगा
हँसना है अनिवार्य

प्रवाह ए-1 सिल्वरआक्स कॉलोनी, अन्नपूर्णा रोड,
उज्जैन -452000 मो.98264-39386

कैसे लिखूं अलविदा सर.....!

डा. पिलकेन्द्र अरोरा

नहीं ! नहीं लिख सकता मैं अपने टेपागुरू के लिए स्मृति -शेष जैसा कुछ और न ही उन्हें श्रद्धांजलिअर्पित करने का साहस है मुझमें! जिसने मुझे उंगली पकड़ कर व्यंग्य लिखना सिखाया। टेपा सम्मेलन के लिए प्रशस्ति लिखना और सलीके से उसे पढ़ना सिखाया। जिन्हें मैं प्रणाम करता रहा, उन्हें अंतिम प्रणाम कैसे करूं। उनके लिए कैसे लिखूं ,अलविदा सर!

यकीन ही नहीं होता! कि 2019 के इस वर्ष अप्रेल-मई तक जो ठहाके ऋषिनगर के 'टेपालय' में गूंजते रहे वे हमेशा के लिए अब मौन हैं। जिनके व्यंग्यों,टीका- टिप्पणियों और कार्यक्रमों ने लोगों को मुस्कराना ,हंसना और ठहाके लगाना सिखाया, वे अब हमारे बीच नहीं! समाप्त हो चुकी है एक व्यंग्य -यात्रा ! और शून्य में विलीन हो गया है हास्य -व्यंग्य के प्रसिद्ध बुक्का फाड़ टेपा सम्मेलन का एक सिद्धहस्त दुर्योजक! दुर्योजक ही कहा था दूरदर्शन के कुबेर दत्त ने उन्हें आयोजन की भव्यता और विराटता को देख!

वर्ष 1978 में पत्रकार शाहिद मिर्जा ने मेरा सर से पहला परिचय कराया । तब समावर्तन के संस्थापक संपादन समन्वयक श्रद्धेय प्रभात जी ,जो टेपा के प्रवर्तक भी रहें हैं और टेपागुरू के भी गुरू रहे हैं, के वीआरएस से टेपा सम्मेलन में एक पोस्ट खाली थी। उसी पोस्ट पर मेरी तत्कालकोटे में नियुक्ति हुई और 1979 के टेपा सम्मलेन में मेरी टेपा मंच पर धमाकेदार एन्ट्री हुई। अगले ही वर्ष उन्होंने मुझे मंच पर ही टेपा सम्मेलन का उतराधिकारी घोषित कर दिया और यह भी कहा कि सम्पति के नाम पर टेपा में दो बैनर, दस गाऊन और एक पुराने ट्रंक के अलावा कुछ भी नहीं है! खुश मत होना! और उसके बाद सालदर सालगुजरते गए और अंततः 32 वर्ष लंबी पारी खेलकर मैने भी 2012 में वीआरएस लिया। बहुत दुखी हुए थे वे मेरे इस अप्रत्याशित निर्णय पर। मैने क्षमायाचना के साथ वीआरएस का पत्र लिखा था। उत्तर भी मिला। सुरक्षित है। कुछ तो लोग कहेंगे! लोगों ने बहुत कुछ कहा। मजा लिया ,पर जब टेपा सम्मेलन के बैनर पर ही मैने शरद जोशी प्रसंग पर लगातार दो वर्ष कार्यक्रम का संचालन किया तो लोग निराश हुए कि अरे! ये तो अभी भी गुरू शिष्य हैं! हम तो टेपा बन गए!

टेपा के बारे में प्रायः कहते थे वे हमने एक ट्रेडं सेट किया है। आज देश के कई नगरों में टेपा की तर्ज पर आयोजन हो रहे हैं। हम सभी को एक साथ संतुष्ट नहीं कर सकते। बालकवि बैरागी तो कहते हैं कि टेपा को एक महोत्सव बनाओ। उसमें गीत, संगीत, नृत्य,नाटक सब कुछ हो। कवि सम्मेलन भी । पर प्रशस्ति वाचन कभी बंद न हो आखिर वही तो टेपा की एक विशिष्ट पहचान है जो आयोजनों की भीड़ से टेपा को अलग करती है और जिसके कारण टेपा में आने के लिए हर कवि एवं व्यंग्यकार व्यग्र रहता है और टेपा सम्मान के लिए लाबिंग तक करता है।

मेरी रिपोर्ट भी होगी और प्रशस्ति वाचन भी होगा। जिसे कार्यक्रम में आना हो वो आए, वरना भाड़ में जाए!मैं कोई पीले चावललेकर आपको आमंत्रित नहीं करता! बातचीत में अक्सर लखनऊ के हास्य महोत्सव की चर्चा करते जिसमें केपी सक्सेना ने मंच से कहा था ,'हास्य -व्यंग्य के मामले में मध्यप्रदेश का कोई मुकाबला नहीं !हम यूपी वाले कहां लगते हैं ! तब मंच पर 11 में से 8 कवि और व्यंग्यकार मप्र के थे।यादें ही यादें हैं! अब तो सिर्फ यादें! चलचित्र की तरह घूम रही हैं घटनाएं ! और नास्ट्रेलजिया में घूम रहा है टेपा गुरू का एक टेपाशिष्य!

चलिए भूतकालसे निकलकर वर्तमान में लौटता हूं।गुलजार की फिल्म की तरह दृश्य परिवर्तन!

इस अप्रेलमें ही कह रहे थे, 'डाक्टर ने कहा हैं चिंता की कोई बात नहीं। तुम जल्दी ठीक हो जाओगे। इस बार 49 वां टेपा सम्मेलन आचार -संहिता के कारण नहीं हो सका। अगले सालगोल्डन जुबली धूमधाम से मनाएंगे। फिर धीरे से बोले ,'मैं मरने से नहीं डरता। मैने अपना जीवन जी लिया है और अपनी शर्तों पर जिया है। कभी झुका नहीं! मैं संतुष्ट हूं अपने जीवन से। मुझे कोई चिंता नहीं! 80 वर्ष बहुत होते हैं। और ये सब बोलते हुए उनकी आंखे नम थी। शायद अंदर ही अंदर उन्हें पूर्वाभास था, जिसे न वे परिजनों के सामने प्रकट करते थे और न मित्रों के सामने। उनकी इच्छा थी कि मैं उन पर लिखे गए शोध प्रबंध के आधार पर एक पुस्तक लिखूं।यशवंत व्यास जी से प्रकाशन की बात भी हो गई थी। मुझे दुख है मैं उनकी इच्छा पूरी नहीं कर पाया!

और फिर एक बार जब हरीशकुमार और दिनेश दिग्गज मिलने गए तो वे अपने अनोखे अंदाज में बोले, तुम लोग मिलने नहीं आते' क्या मेरी श्रद्धांजलिकी तैयारी कर रहे हो! ये मौका तुम्हें अभी नहीं दूंगा! और अंततः 22 मई की शाम अचानक वह मौका आ ही गया जब दुष्यंतजी का एक शेर मौंजू हो गया-

मौत ने धर दबोचा, एक चीते की तरह।
जिंदगी ने जब छुआ, फासला रख छुआ।।

और एक टेपा यात्रा समाप्त हो गई और हास्य -व्यंग्य का एक मसीहा चलपड़ा अनंत आकाश की ओर.....!

आभार, आजादनगर उज्जैन-456010
मो.नं. 9893441760

खालिस व्यंग्यकार नहीं, व्यंग्य की 6 दशकीय रंगशाला

डॉ देवेन्द्र जोशी

वरिष्ठ व्यंग्यकार और अ भा टेपा सम्मेलन के संस्थापक डॉ शिव शर्मा का 22 म को उज्जैन में निधन हुआ तो उनके चाहने वालों को लगा कि व्यंग्य के हास्य आधारित एक युग का अंत हो गया। वे एक जिन्दादिल इन्सान, मुखर बुद्धिजीवि और बेबाकी से अपनी बात रखने वाले साहित्यकार थे। लम्बे समय तक आकाशवाणी के संवाददाता भी रहे। हुजूर ए आला और बजरंगा जैसे चर्चित व्यंग्य उपन्यास तथा एक दर्जन से भी अधिक पुस्तकों के रचनाकार शिव शर्मा व्यंग्य लिखते ही नहीं हास्य व्यंग्य को जीते भी थे। यही वजह है कि उनका हास्य व्यंग्य प्रयत्नप्रसूत न हो कर सहज स्वाभाविक होता था। व्यवस्था की विसंगतियों पर प्रहार के साथ परिवेश की घटनाओं का सूक्ष्म किन्तु चुटीला छिद्रान्वेषण करने में वे सिद्धहस्त थे। अ.भा, टेपा सम्मेलन के संस्थापक,राजनीति विज्ञान के प्राध्यापक और चर्चित व्यंग्यकार के रूप में अपने जीवन की सफल पारी खेल चुके शर्मा जी उम्र के आठवें दशक में भी सक्रिय और लेखनशील बने रहे। अपनी 6 दशक की सृजन यात्रा में उन्होंने अपने अवदान से जहाँ व्यंग्य विद्या को भरपूर लेखन से समृद्ध किया वहीं उज्जैन और मालवा के हास्य व्यंग्य को भी खूब खाद पानी दे कर यहाँ की जमीन को उर्वरा बनाया। सांस्कृतिक नगरी को टेपा सम्मेलन के रूप में हास्य व्यंग्य का एक बड़ा मंच देकर उन्होंने जो पहचान दिला वह काबिल-ए-गौर है। टेपा सम्मेलन की शुरूआत उन्होने 1970 में की थी।इसकी रपट 'टेपा हो गए टॉप' शीर्षक से धर्मवीर भारती ने धर्मयुग में प्रकाशित की थी।जिससे यह आयोजन रातोंरात देशभर में प्रसिद्ध हो गया। इसके बाद शिव शर्मा ने मुडकर नहीं देखा। इसके माध्यम से वे व्यंग्य की एक पूरी पीढ़ी तैयार करने में कामयाब रहे। उज्जैन में आज जितने भी व्यंग्यकार हैं वे कहीं न कहीं व्यंग्य की उस पाठशाला की देन रहे हैं जिसे शिव शर्मा ने अपने श्रम से सींचा था। न केवल व्यंग्यकार , उज्जैन और मालवा को हास्य व्यंग्य के आयोजन के संस्कार भी टेपा सम्मेलन से ही मिलते रहे। कबाडा,गुलाट,ठहाका या रंग-तरंग जैसे आयोजन टेपा सम्मेलन की तर्ज पर ही शुरू हुए हैं। इस आयोजन से प्रेरणा ले कर नागदा , खाचरौद, बड़नगर, रतलाम इन्दौर तथा अनेक नगरों और महानगरों में अब इस तरह के आयोजन हो रहे हैं। लेकिन टेपा सम्मेलन उनमें सबसे पुराना और सभी का प्रेरणास्रोत रहा है। देश में चक्कलस ,महामूर्ख सम्मेलन जैसे हास्य व्यंग्य के जितने भी आयोजन होते हैं उनमें टेमा सम्मेलन का अपना विशिष्ट मुकाम है जिसके मूल में स्वर्गीय शिव शर्मा की जो सूझबूझपूर्ण श्रमशीलता रही है उसे कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता है। साहित्य संस्कृति की दृष्टि से उज्जैन की उर्वरा धरती को हास्यव्यंग्य के संस्कार और वातावरण देने में शर्मा जी द्वारा संस्थापित अखिल भारतीय टेपा सम्मेलन की अहम भूमिका को कभी नकारा नहीं जा सकता है। वरिष्ठ कवि और पूर्व मंत्री बाल कवि बैरागी ने डॉ शिव शर्मा के बारे में लिखा है कि - '' पद्मभूषण पंडित सूर्यनारायण व्यास ने मालवा को विक्रम विश्वविद्यालय एवं कालिदास समारोह दिया, स्व,डॉ शिवमंगल सिंह सुमन ने उज्जैन को नई साहित्यिक गरिमा दी, स्वर्गीय श्रीकृष्ण सरल ने चौदह -चौदह क्रांति महाकाव्य का प्रांजल दिया,डॉ विष्णु श्रीधर वाकणकर ने पुरातत्व शोध केन्द्र से सुशोभित किया, स्वर्गीय सिद्धेश्वर सेन ने मालवी के माच का पुनरूद्धार किया। इस कड़ी - लड़ी में डॉ शिव शर्मा अकेले ऐसे व्यक्ति जुड़े, जिन्होंने टेपा सम्मेलन जैसी सामाजिक सांस्कृतिक गतिविधि से सैकड़ों गांवों को उज्जयिनी प्रेरणा से प्रेरित किया। इस अवदान को आप हंस कर टाल नहीं सकते। यह बड़े धैर्य की साधना है।'' सारांश यह कि डा, शिव शर्मा को खालिस व्यंग्यकार मानना उनके व्यक्तित्व का अधूरा मूल्यांकन होगा। उन्हें उनके लेखन के साथ ही हास्य व्यंग्य की सतत 6 दशक तक चलने वाली रंगशीलता के लिए जानने- समझने की जरूरत है। इस नजरिये से देखा जाए तो इस विधा में वे अपने किस्म के अकेले व्यंग्यकार नजर आते हैं। उनका यूं अचानक चले जाना व्यंग्य और व्यंग्य सरोकारों की ऐसी क्षति है जिसकी पूर्ति निकट भविष्य में संभव नजर नहीं आती है। उनकी स्मृति को प्रणाम।

85 महेशनगर उज्जैन मो. 9977796267

डॉ.शिव शर्मा के उपन्यास और उनका अन्दाज-ए-बयां

हरीशकुमार सिंह

प्रख्यात व्यंग्यकार डा शिव शर्मा पत्रकार थे, आकाशवाणी के संवाददाता रहे,व्यंग्य एकांकी लिखे तो नाटक भी खूब लिखे। उनके एकांकी और नाटकों के मंचन भी हुए और होते रहते हैं। उनके कई व्यंग्य संकलन आये तो समसामयिक घटनाओं पर त्वरित व्यंग्य के मास्टर थे शिव जी। इधर घटना घटी उधर संपादक का फोन आया और शिव जी तुरंत लिखकर रवाना कर देते थे। शिव जी मजाक में बताते थे कि आजकल शहर में कोई हस्ती दिवंगत हुई नहीं कि श्रद्धांजलि लिखने के लिए फोन आने लगते हैं और कभी कभी लगता है कि मैं श्रद्धांजलि एक्सपर्ट हो गया हूँ। मैंने कहा कि आपने उज्जैन और उज्जैन के शिखर पुरूषों को नजदीक से देखा है,साथ रहे हैं तो आप ही लिखने के लिए उपयुक्त हैं। लेकिन मैं यहाँ अपनी बात शिव जी के उपन्यासों पर ही केन्द्रित करूंगा। शिव जी के दो उपन्यास 'बजरंगा' और ''हुजुर-ए- आला'' प्रकाशित हुए हैं। उपन्यास 'बजरंगा' का अधिकाँश हिस्सा तो शिव जी ने मुझे और डा पिलकेंद्र अरोरा जी को डिक्टेट करके लिखवाया क्योंकि उनके मष्तिष्क में तब के राजगढ़से आये युवक की उज्जैन में गुजारी स्मृतियाँ जीवंत थीं। असल में अपनी युवा अवस्था में ही शिव जी शिक्षा प्राप्त करने उज्जैन आ गए थे और फिर यहीं के होकर रह गए। उज्जैन में रेलवे स्टेशन, मंदिरों,मठों,महंतों,साधुओं के अखाड़ों को नजदीक से देखने का अवसर मिला। पत्रकार की नजर सिहंस्थ के कुछ तथाकथित धर्म के ठेकेदारों पर भी पडी और अंदर - बाहर की खबरों के अलावा उनके अन्तरंग जीवन

की पोलपट्टी भी अपनी आँखों से देखी। शिव जी को व्यंग्य के लिए काफी कच्चा माल अपनी इस जीवन यात्रा में मिला और वह बजरंगा उपन्यास के रूप में सामने आया। बजरंगा में और को नहीं,बल्कि बजरंगा के रूप में शिव जी ही हैं जो उपन्यास में अपनी आँखों देखी घटनाओं को सिलसिलेवार चित्रित करते हैं। बजरंगा में सिंहस्थ के कई बाबा हैं, उनकी देशी विदेशी शिष्यायें हैं,नतमस्तक प्रशासन है। बजरंगा में कामरेड हैं,छात्र राजनीति है, स्थानीय राजनेता,समाजसेवी हैं,साहित्यकार हैं। उपन्यास का मूल पात्र बजरंगा ही है। उपन्यास के संवादों में व्यंग्य की सृष्टि बखूबी हुई है तो भाषा प्रहारक और मारक है। बजरंगा व्यापक परिवेश में धर्म,समाज और राजनीति में आई गिरावट,ठगी, भ्रष्ट आचरण, रीतिरिवाजों के खोखलापन पर चोट करता है। शहर के धार्मिक उत्सवों और चुनिन्दा व्यक्तित्वों को प्रतीक मानकर शिव जी ने बजरंगा में व्यंग्य शैली में चतुराई के साथ समाज एवं व्यवस्था का जो चित्रण किया है वह कमोबेश सम्पूर्ण देश की विसंगत व्यवस्था का आ ना है। डा शिव शर्मा - रोमेश जोशी के संयुक्त उपन्यास ''हुजुर-ए- आला'' जिसे वर्ष 2016 में भारतीय ज्ञानपीठ, न दिल्ली ने पहली बार प्रकाशित किया था का दूसरा संस्करण भी भारतीय ज्ञानपीठ से आया । राजगढ़में जहाँ शिव शर्मा जी जन्मे और बचपन बीता तथा अपने पिता जो राजगढरियासत के महाराजा के मुसाहिब थे, से अपने दादा और स्वयं उनके किस्से जो,राजाओं के रहन सहन,अय्याशी भरी दिनचर्या और गरीब प्रजा पर शासन करने की तुकी-बेतुकी नीतियों से सम्बंधित थे को उपन्यास 'हुजूर-ए-आला' में व्यक्त किया है।

उपन्यास के केंद्र में पूर्व में डकैती कर आजीविका चलाने वाला डकैत है जो अब लालगढ़स्टेट का राजा विक्रमसिंह है। इस रियासत में राजाओं और उनके पुत्रों का नाम विक्रमसिंह या विजय सिंह ही अधिकतर रखा जाता था और जब विक्रमसिंह आपसी रियासतों से युद्ध करते मारे गए तो उनके पुत्र विजयसिंह ने रियासत संभाली। उपन्यास के वर्तमान राजा हैं विजयसिंह,जिन्हें राजा साहब, महाराजा,एच. एस (हिज हाइनेस) के नाम से पुकारा जाता है और जो अपने पिता की बारहवीं शादी की पैदाइश थे। राजा साहेब की वर्तमान रियासत कंगाल हो गई है क्योंकि उनके प्रतापी पूर्वजों ने दारू पार्टियों, बहु विवाहों, नर्तकियों और गवईयों पर पीते पीते ही अपनी रईसी और दौलत लुटा दी। वर्तमान राजा साहब अब पुरानी रियासत के भव्य अतीत, शान के किस्से आगंतुकों को सुनाते हैं और खुद भी अपने पूर्वजों की राह पर चलने के कारण लगभग बदहाल हैं मगर अपनी बदहाली जाहिर नहीं होने देते और दूसरी रियासतों की राजकुमारियों से विवाह कर- करके अपना खर्च चलाते हैं। राजा साहेब की भी क रानियाँ हैं क्योंकि राजा को राजा ही समझा जाये, प्रजा नहीं इसलिए राजा को यह सब करना पड़ता है। उपन्यास में घुड़दौड़ है,कोठे वालियां हैं और नर्तकियां भी हैं,राजा का प्रेम भी है। मुंबई की मुस्लिम नर्तकी बबली से शादी करने के लिए राजा साहब नवाब बाजबहादुर खान बन गए थे। अचानक बबली की हत्या से तनाव बढ़जाता है और फिर राजा साहेब को जेल भी हो जाती है। उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में है जिसमें धर्म के नाम पर पाखंड, व्यंग्य है तो रियासतों की 'रस्सी जल गई ,ऐंठ नही गई'' वाली राजाओं का थोथा दिखावा भी है। सत्य घटनाओं पर आधारित उपन्यास के सारे पात्र वास्तविक हैं और लालगढ़,रियासत के बहाने,तत्कालीन राजगढ़रियासत के मनोरंजक किस्से हैं जिन्हें उपन्यास का पठनीय रूप डा शिव शर्मा जी-रोमेश जोशी ने दिया है। ख्यात समीक्षक, साहित्यकार आचार्य डा शैलेन्द्रकुमार शर्मा ने उपन्यास ''हुजुर-ए- आला'' के बारे में कहा है '' यह उपन्यास रियासतकालीन परिवेश को हुबहू प्रस्तुत करता है और उपन्यास ऐतिहासिक होते हुए भी समकालीन विषयों की पड़ताल करता है और जिसे पढने पर लय और पठनीयता बनी रहती है। उपन्यास ''हुजुर-ए- आला'' मालवा का मैला आँचल है जिसमें मालवा का समूचापन है।'' जाहिर है कि उपन्यासकार डा शिव शर्मा का अंदाजे बयां जुदा है और रहेगा।

सी-1/9 ऋषिनगर, उज्जैन (म.प्र.)
मो.9425481195

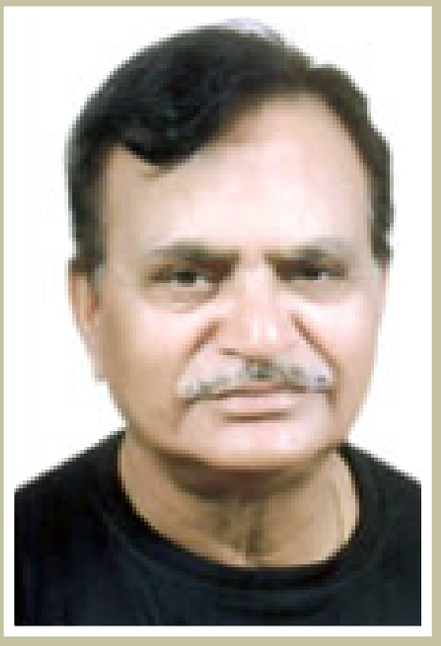

सतीश चव्हाण

संपर्क :- बी-2/703 लाईफ पार्क सोसायटी,
कोरियंथन क्लब के सामने
उन्दरी (मुहम्मद वाडी) कोंडवा, पुणे
फोन-9886131622
ई-मेल - chavhansatish1@gamil.com

जन्म :- उज्जैन (म.प्र.) 5 मार्च 1950 वास्तव में (28.02.1949)

शिक्षा :- * प्रारंभिक शिक्षा, भारती कला भवन, उज्जैन कला आचार्य स्व.वाकणकरजी के सानिध्य में * डिप्लोमा इन फाईन आर्ट 1976 (मेरीट में) * एम.ए. इन फाईन आर्ट 1977 (मेरीट में)

पुरस्कार :- * सात वर्ष की आयु में तत्कालीन राज्यपाल स्वर्गीय पाटसकरजी का चित्र बनाकर प्रशंसा पाई। अवसर था दैनिक भास्कर संस्करण के उद्घाटन का, दूसरे दिन प्रदेश के ख्यात अखबार 'नईदुनिया' में ''होनहार विरवान के होत चिकते पात'' नामक शीर्षक से लेख छपा। * तीन वर्ष की आयु में कार्तिक मेले में चित्रकला प्रदर्शनी में सांत्वना पुरस्कार (3 रूपये)
* वर्ष 1953 में भारती कला भवन की स्थापना के समय से सबसे नन्हे कलाकार के रूप में प्रवेश किया। * वर्ष 1963-64, 1964-65, 1965-66 भिलाई में लगातार ऑन द स्पॉट पेंटिंग काम्पेटिशन में अपने आयु गुट में प्रथम पुरस्कार। (सभी भिलाई नगर के स्कूलों के मध्य) * वर्ष 1966-67, 1967-68, 1968-69 में माधव कॉलेज में सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार। *वर्ष 1969 राज कवि तांबे स्मारक समारोह का पुरस्कार। * वर्ष 1969 कुंभ मेला समिति की ओर से मेला अधिकारी स्वर्गीय श्री कान्त स्वरूप भटनागरजी द्वारा पुरस्कृत। * लायंस क्लब उज्जैन द्वारा आयोजित आन द स्पॉट पेंटिंग काम्पेटिशन में पुरस्कार। * वर्ष 1967-68 गांधी शताब्दी समारोह में गांधीजी के संपूर्ण जीवन पर दो दिन में चित्र बनाकर प्रदर्शित करने पर सुप्रसिद्ध गांधीवादी स्व.दादा धर्माधिकारी जी द्वारा पुरस्कृत। * वर्ष 1978-79 मध्यप्रदेश कला परिषद का श्रेष्ठ पुरस्कार। * वर्ष 1986 अखिल भारतीय कालिदास प्रदर्शनी में पुरस्कार। * वर्ष 1995 संस्कार भारती भोपाल द्वारा उत्कृष्टता पुरस्कार। * वर्ष 2007 स्वराज भवन एवं संस्कृति विभाग द्वारा आयोजित स्वाधीनता सैनानियों के जीवन पर आधारित अखिल भारतीय 'वंदे मातरम' चित्र एवं पोट्रेट प्रदर्शनी में द्वितीय पुरस्कार (इनके अतिरिक्त कई अन्य पुरस्कार) * 66-67 में उज्जैन में राष्ट्रवादी कवि स्व.श्री सरलजी के आग्रह पर सभी क्रांतिकारी शूरविरों के चित्र बनाये।

सम्मान :- * ब्रहमहाराष्ट्र मंडल की ओर से 61वें अधिवेशन मुम्बई में 'गौरव सम्मान वर्ष 2007। * नागरिक कल्याण समिति द्वारा नागरिक अभिनंदन एवं सम्मान मा.स्व.श्री बलराम जाखड़ राज्यपाल मध्यप्रदेश के कर-कमलों द्वारा वर्ष 2007।

आर्टिस्ट कैम्प (शिविर) :- * मार्च 2008 मध्यप्रदेश कला परिषद द्वारा आयोजित 'खजुराहों पेंटिंग कैंप' खजुराहों में शिरकत। * 2004 मध्यप्रदेश शासन के सहयोग से भारत भवन के द्वारा संचालित कैंप जिसमें प्रदेशभर के 20 वरिष्ठ चित्रकारों को आमंत्रित किया गया था। कला परिषद भोपाल में शिरकत। * इन्दौर में 'हलातोल' विषय पर आयोजित शिविर में शिरकत 2001।

म्यूरल (भित्ती चित्र) :- * वर्ष 1982-83 में हॉटल ताज (भोपाल) में धातु और काष्ट कम्यूरल आकार 20'5' आकार में। * वर्ष 1998 हॉटल शिवालिक गोल्ड भोपाल में धातु और काष्ट द्वारा निर्मित 15'5' आकार में। * वर्ष 1972-73 में माधव क्लब उज्जैन तेल चित्र आकार 25'8' * वर्ष 2013 में वॉरली पेंटिंग श्रीमती झीतल श्रीवास्तव आकार 5'8'

प्रकाशन :- * 'नवनीत' हिन्दी डाइजेस्ट, धर्मयुग, सारिका पराग टाईम्स ऑफ इंडिया के प्रकाशन * 'अभिषेक' गुजराती, महाराष्ट्र शासन की पत्रिका 'लोकराज्य' * नईदुनिया इन्दौर, दैनिक भास्कर भोपाल, मध्यप्रदेश संदेश, मराठी उत्सव, साक्षात्कार मध्यप्रदेश भोपाल, 'समन्वय दर्पण' वकील एण्ड संस में ग्रिटिंग कार्ड्स, ठक्कर एंड संस के कार्ड्स, इनके अतिरिक्त अन्य कई पुस्तकों के कव्हर पृष्ठ, लगभग 3 से 4 हजार तक रेखाचित्रों का विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन।

* **चलचित्रों (फिल्मों) में पेंटिंग चित्रों का निर्माण :-** जैसे - अनहोनी, मेरे जीवन साथी एवं अर्चना आदि।

कलाकृतियों का संग्रहण :- मध्यप्रदेश कला परिषद, इंडियन टोबेको, ठक्कर एंड संस, टाईम्स ऑफ इंडिया, वकिंल एण्ड-संस, नवनीत हिन्दी डायजेस्ट बिनोद मिल्स उज्जैन, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन, नगर निगम भोपाल, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया (मु.इंदौर) होटल रैमसंस भोपाल, होटल मयूर भोपाल, होटल शिवालीक गोल्ड भोपाल। फिल्म स्टार स्व.श्री संजीव कुमार, डॉ.गायतोंडे (यू.एस.ए.) श्री अरुण कुमार IAS । राज्य सहकारी विपणन संघ एवं कई अन्य निजी संग्रहणकर्ताओं के पास कलाकृतियां संग्रहित है।

चित्रकारी के शौक ने मुझसे कई काम करवाए

सतीश चव्हाण

मेरा जन्म साधारण परिवार में अवंतिका नगरी में हुआ था। बचपन अभावों में बीता। छः भाई बहनों में मैं तीसरा था। मेरे पिताजी श्री आनंदराव सरकारी नौकरी में निम्न श्रेणी लिपिक थे। शिप्रा तट पर कार्तिक मेला भरता था। वहां एक वर्ष एक चित्रकला प्रदर्शनी में मुझे 3 रूपये का पुरस्कार मिला था तब मेरी आयु उस समय 3 वर्ष की रही थी। पुरस्कार पाकर मैं बहुत प्रसन्न था, मुझे अपने लिये कम्पास बॉक्स और ड्राइंग का सामान खरीदना था। पर मेरा पहला पुरस्कार रूपये 3/- घर की उधारी चुकाने में भेंट चढ़गये। मैं बहुत रोया। उन दिनों मेरे दूर के चाचा श्री शंकर राव चव्हाण घट्टिया में थानेदार थे, वे आये और जब उन्हें मेरे रोने का कारण पता चला तो उन्होंने मुझे तत्काल कम्पास और ड्राइंग सामान लाकर दिया।

मुझमें चित्रकारी करने का शौक दिनों दिन बढ़ता जा रहा था। मेरे दादा जी और वाकणकर सर के पिताजी धार से मित्र रहे हें। श्रद्धेय वाकणकरजी ने मेरे अन्दर के चित्रकार को पहचाना और वे मुझे अक्सर मेरे घर से आकर भारती भवन ले जाया करते थे। उन दिनों हम फ्रीगंज में। श्री प्रकाशचंद्र सेठी के सामने रहते थे। चित्रकारी का शौक कभी-कभी थप्पड़ खाने को मजबूर करता था। उस समय हमारी स्कूल फीस मात्र चार आने होती थी, पर वो भी हम भर नहीं पाते थे। मैं अपना शौक दीवारों पर चीतर कर या कॉपी, किताबों पर चीतर कर पूरा कर रहा था। उन दिनों हम चार मित्र होते थे, मैं, मेरा बड़ा भाई बाल दादा, शम्मा तिवारी और बाली तिवारी। शम्मा हम सबमें शैतान था।

मैं राजपूत बोर्डिंग में कक्षा 3 में था, स्कूल छूटने पर मैंने देखा कि हमारे घर के पास पुलिस आई हुई है और मोगरे बिल्डिंग के पास गाने और संगीत बजा रहा था। मैंने अपने मित्र शम्मा से पूछा यह क्या हो रहा है, उसने कहा अबे बेटा बहुत बड़ा आदमी आ रहा है, (उस समय दैनिक भास्कर के उज्जैन संस्करण के उद्घाटन के लिये तात्कालिन राज्यपाल श्रीहरी विनायक पाटस्कर आने वाले थे) मैंने अपने मित्र से कहा कि मैं उस बड़े आदमी का चित्र बनाउंगा। उसने कहा हाँ चल मैं तुझे वहाँ ले चलता हूँ। मैंने झट से अपना बस्ता घर में पटका और ड्राइंग कॉपी और पेंसिल लेकर शम्मा के साथ चल दिया, यह वाकिया सन 1956 का है और मेरी आयु लगभग 7 वर्ष रही होगी। मेरे कपड़े दो एक जगह से फटे हुए थे, निकर में भी पैबंद लगा हुआ था। जैसे ही हम मुख्य द्वार पर पहुँचे, हमारी दयनीय स्थिति देखते हुए सुरक्षा में लगे हुए पुलिस वालों ने हमें भगा दिया। शम्मा तो तेजी से भाग गया पर मुझे तो उस बड़े आदमी का चित्र बनाना था, अतः मैं लौटकर पंडाल के पीछे की ओर गया, पंडाल की कनात जमीन से 6 फीट ऊंची थी मैं जैसे-तैसे अंदर घुस गया, मैं जहाँ घुसा था वहाँ टेबल पर सौ-डेढ़सौ नाश्ते की प्लेटें सजी हुई थी। और दूसरी तरफ ढेर सारे लोग कुर्सियों पर बैठकर भाषण सुन रहे थे, हलचल हुई तो पिछली पंक्ति में बैठे लोगों ने मुड़कर देखा, नसीब से उनमें मेरे गुरु श्रद्धेय वाकणकरजी बैठे थे, वे तत्काल लपककर मेरे पास आये, मेरे हाथ में ड्राइंग कॉपी और पेंसिल देखकर समझ गये, मैंने कहा सर वो बड़े आदमी कौन है? मुझे उनका चित्र बनाना है। सर ने इत्मीनान से अपनी कुर्सी पर मुझे बिठाया और कहा वो जो आदमी भाषण दे रहे हैं वो बड़े आदमी है उनका चित्र बना। जब चित्र बन गया तब सर ने कहा उनके पास जो व्यक्ति दाढ़ी वाले बैठे हैं उनको जाकर दे। सर ने मेरे कपड़ों की धूल झाड़ी और जब मैं चित्र लेकर दाढ़ी वाले सज्जन को देने जा रहा था हमारे मोहल्ले के कुछ लोग मेरी दयनीय हालत को देखकर हंस रहे थे।

श्री पाटस्कर जी का भाषण अभी खत्म नहीं हुआ था मैंने वह चित्र दाढ़ी वाले सज्जन को दिया, उन्होंने चित्र देखकर मेरी और देखा, वे बहुत ही प्रसन्न नजर आ रहे थे, वे बार-बार मुझे उपर से नीचे देख रहे थे, जैसे ही श्री पाटस्कर जी का भाषण खत्म हुआ, उन्होंने वह चित्र यह कहते हुए पाटस्कर जी को दिया "हरि इस बच्चे ने तुम्हारा चित्र बनाया है, पाटस्कर जी ने मुझे बहुत प्यार किया मेरे सर पर हाथ रखा, पूरे पंडाल में ढेरों तालियाँ बज रही थी। सर दौड़कर मेरे पास आये, सर की और दाढ़ी वाले सज्जन में कुछ बातें हुई, फिर सर ने मुझे दूसरे भाग में जहाँ नाश्ते की प्लेटे रखी हुई थी सभी नाश्ता कर रहे थे, वहाँ एक प्लेट मुझे दी सभी लोग मुझे देख रहे थे।

शाम को भारती कला भवन में एक दो पत्रकार मेरा इंटरव्यू लेने पहुँचे, उन्हें मेरी ओर से सर ने ही जवाब दिये। दूसरे दिन नईदुनिया में 'होनहार विरवान में हौत चिकने पात' शीर्षक से मेरे बारे में लेख छपा था। मेरे पिताजी उन दिनों मंदसौर में पोस्टेड थे, दादाजी एवं चाचाजी रतलाम में थे यह खबर दादाजी को पता चली तो वे मुझे भोपाल राज्यपाल महोदय श्री पाटस्कर जी के पास ले गये, पाटस्कर जी ने मुझे गोद में बैठाकर प्यार किया और मेरे भविष्य के बारे में दादाजी को कुछ लिखकर दिया, शायद मेरे भविष्य के बारे में! परन्तु वह सभी बातें दादाजी के बाद, पता नहीं चल सकीं। कई बार आर्थिक तंगी के चलते मुझे और मेरे भाई को उज्जैन हास्पिटल के पीछे खादी ग्रामोद्योग का कार्यालय था, वहाँ माचिस की तिलियों पर मसाला लगाने का काम करना होता था, नये पैसों का चलन शुरू हो गया था, हमें रोजाना 40 नए पैसे मिलते थे। हमें पालने के लिये हमारी माँ ने पेइंग गेस्ट रखना शुरू किया। सारे ही काम मुझे और मेरे भाई को करने पड़ते थे।

आगे की पढ़ाई कक्षा 7 की मेरी रतलाम में लक्कड़ पीठा स्कूल में हुई, वह स्कूल हमारे घर से 4-5 किलोमीटर की दूरी पर था, मुझे पैदल ही स्कूल जाना और आना होता था। एक बात अच्छी थी उन दिनों स्कूल में मिड-डे-मिल मिलता था। कक्षा 8वीं की पढ़ाई मेरी झाबुआ में हुई। उसके बाद कक्षा 9वीं से 11वीं की पढ़ाई मेरी भिलाई में मामाजी के यहाँ पूरी हुई। यहाँ मैं व्हॉलीबाल टीम का कप्तान चुना गया। ड्राइंग में भी मुझे प्रतिवर्ष पुरस्कार मिलते गये। मैं पढ़ाई में भी अच्छा था, कक्षा में मेरी तीसरी रैंक आई थी। हॉयर सेकेन्डरी पूरी कर मैं उज्जैन आया, मेरा परिवार उन दिनों शाजापुर में था, मैंने पिताजी से कहा - मुझे आगे पढ़ना है, परन्तु उन्होंने पढ़ाने में असमर्थता

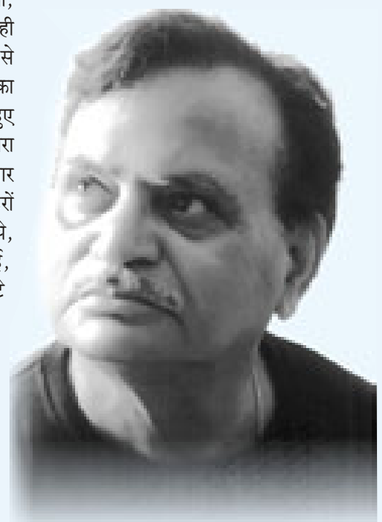

दिखाई। सौ. मैं उज्जैन आ गया। मैं भारती कला भवन की गैलरी (मुंडेर के पास) में रहने लगा, बिल्डिंग बहुत ही जर्जर अवस्था में थी। मैं सुबह से ही काम की तलाश में निकलता था जो थोड़ा बहुत मिलता उसमें गुजारा करता। फिर मुझे उज्जैन के प्रसिद्ध कपड़ों के विक्रेता कुमार ब्रदर्स एवं सुराना साड़ी एम्पोरियम में साड़ियों पर एक्रेलिक डिजाइन बनाने का काम देने लगे। उन दिनों एक साड़ी पूर्ण करने का मुझे 7 रूपये देते थे, महीनेभर में 4-5 साड़ियां मिल जाती थी। शुरू-शुरू में शाजापुर घर से खाने का टिफिन बस द्वारा 3 बजे दोपहर तक आता था, बाद में बारिश के दिनों या अन्य किसी कारण से वह आना बंद हो गया। फिर मैं 5वीं, 6टी के बच्चों की ट्यूशन करने लगा, महीने के 35 से 40 रूपयों का इंतजाम हो रहा था। फिर मैंने शास्त्रीनगर में एक कमरा मात्र 5 रुपये महीने पर किराये पर लिया। श्रद्धेय वाकणकर जी ने उनके ही विभाग (आर्कालॉजी) में 50 रुपये महीने की नौकरी लगा दी, वहाँ मेरा कार्य मूर्तियों को झाड़ पूँछकर सफाई करना, मूर्तियों एवं टेराकोटा के डिजाइन (ड्राइंग) कागज पर बनाना और यदि कोई बाहरी व्यक्ति आये तो गाईड बनकर उन्हें गाईड करना होता था। कुल मिलाकर जिन्दगी की गाड़ी लड़खड़ाती हुई आगे बढ़रही थी।

यहाँ पर मैं एक बहुत ही भले परोपकारी व्यक्ति का उल्लेख अवश्य करना चाहूँगा। मैं उन दिनों देवासगेट स्थित जोशी भोजनालय में खाना खाता था, (मैं प्रथम वर्ष बी.ए. का विद्यार्थी था) खाने का भुगतान अपरिहार्य कारणों से एक माह लेट हो गया था, महाराज ने मुझे टोककर कहा चौहान बाबू शाम से खाना खाने मत आना, तुम्हारा पैसा बाकी है। मुझे साड़ियों का पेमेंट जिनकी डिजाइन मैं बनाता था, समय पर कभी नहीं होता था। महाराज का टोकने का तरीका बहुत ही अनुचित था। मैं हाथ धोकर अन-मने मन से वहाँ से चल दिया, वहाँ पास की टेबल पर द्वितीय वर्ष बीए-2 का विद्यार्थी स्व. श्री गजेन्द्र जोशी (श्रद्धेय स्वर्गी श्री डी.जे.जोशी का बड़ा लड़का) खाना खा रहा था। 'गजा' ऐसा विद्यार्थी जो कॉलेज में मोटर साइकिल पर आता था, जिन दिनों मेरे जैसे विद्यार्थियों के पाँवों में चप्पलें भी नहीं होती थी।

वह अपना खाना समाप्त कर महाराज के पास गया और पूछा, वह लड़का अभी यहाँ से गया है, उसका कितना बकाया है? उसने कहा 35 रूपये। गजा ने तुरन्त अपने पॉकेट से 35 रूपये देते हुए महाराज से कहा आइन्दा उसे मत टोकना और खाने की थाली से मत उठाना। दो तीन दिन बाद मुझे भूख सहज नहीं हुई तो मैं फिर से जोशी भोजनालय गया। खाने के पश्चात हाथ धोने के बाद मैंने महाराज से कहा महाराज मैं एक दो दिन में अवश्य ही तुम्हारा बकाया चुकता कर दूँगा। महाराज बोला तुम्हारा पेमेंट हो गया है। मैं आश्चर्य चकित हो गया कि मेरा पेमेंट किसने किया है, महाराज बोला उस दिन वह दाढ़ी वाला खाना खा रहा था उसी ने तुम्हारा पैसा दिया है। मैंने महाराज से कहा तुमने उनसे क्यों लिया! मैं कॉलेज गया 'गजा' को ढूंढने लगा, पता चला वह जाल बोर्डिंग में रहता था। मैं जाल बोर्डिंग में उसके मकान पर गया, समय कोई 4 या 4.30 का रहा होगा। गजा सो रहा था, थोड़ी देर में उसने दरवाजा खोला, मुझसे पूछा क्या बात है? मैंने कहा गजा तुमने मेरे खाने का भुगतान किया। तो, उसने कहा तो क्या हुआ? तू मेरा छोटा भाई है और मुझे गजा ने लगा लिया, मेरी आँखों से आँसू बाहर निकले 'गजा' ने मुझे अपना बना लिया था! अब मैं गजा के साथ अक्सर उसकी मोटर सायकल पर बैठकर घूमा करता था। वह मुझे नाटकों की रिहर्सल में भी साथ ले जाने लगा। उन दिनों वो कॉलेज में नाटकों का मंच इत्यादि बनाता था। इधर एक घटना उन्हीं दिनों घटित हुई। मुझे माधव कॉलेज से परीक्षा फीस एवं अन्य ऐसे करके करीब रूपये 150/- भरने का नोटिस मिला। माधव महाविद्यालय के उस समय

प्राचार्य डॉ.शिवमंगलसिंह सुमन थे, मैं उनसे निवेदन करने उनके कार्यालय में गया, मेरी बातें सुनने के बाद उन्होंने फीस माफ करने से मना कर दिया और कैसे भी फीस भरो अन्यथा परीक्षा में नहीं बैठने देंगे कहा। मेरे मन में श्रद्धेय सुमनजी की एक छबि थी वह एक दम से धम्म हो गई। मैं कमरे पर गया और एक जोरदार 2 पृष्ठों का पत्र 'सुमन' जी के पते पर भेज दिया, जिसमें मेरे अन्दर का ज्वाला उड़े दी, वह पत्र उसी दिन शाम को सुमन जी को मिला। दूसरे दिन रविवार का अवकाश था। सुमनजी पत्र पाने के बाद से ही बहुत नाराज थे।

सोमवार को कॉलेज पहुँचते ही आक्रालॉजी विभाग से मुझे बुलाया, मैं डरता हुआ सुमनजी के पास गया। उन्होंने मुझे बहुत बुरा भला बोला और कहा मैं तुम्हें कॉलेज से निकाल दूंगा, तुम अपने प्रधानाचार्य को ऐसे पत्र लिखते हो? उन दिनों माधव कॉलेज के सौशल गेदरिंग (वार्षिक जलसा) शुरू हो गया था। मैं इस घटना से बहुत बुरी तरह टूट गया था, बार-बार मेरे गरीब होने का मुझे बुरा लग रहा था।

आदतन शाम को मैं माधव कॉलेज स्थित साईंस विभाग की ओर गया जहां नाटक उत्तरप्रियदर्शी की रिहर्सल हो रही थी। उस नाटक के निर्देशक, संयोजक श्री प्रभातकुमार भट्टाचार्यजी थे। वहां सभी लोग काफी चिंता में थे, चिंता का कारण 'गजा' गजेन्द्र जोशी का टेलिग्राम आया था कि उसने इंदौर में नया काम शुरू किया है। अतः वह नाटकों के मंच बनाने के लिये उपलब्ध नहीं है। सभी 'गजा' को कोस रहे थे जो मुझे कदापि अच्छा नहीं लग रहा था। मैंने डॉ.भट्टाचार्य जी से निवेदन किया कि सर 'गजा' नहीं आ रहा है, मैं आपके लिये मंच बना दूंगा। मुझे अपने आप पर भरोसा था, पर डॉ.साहब को नहीं था। अतः उन्होंने मुझे कोई जवाब नहीं दिया परन्तु 10 मिनट पश्चात डॉ.साहब मेरे पास आये और प्रश्न किया तुम वाकई में स्टेज सज्जा कर लोगे, मेरे हाँ कहने पर, कितना खर्च आयेगा, पूछा मैंने कहा कि रूपये 200/- काफी होंगे, वे तत्काल कॉलेज कार्यालय के अधीक्षक श्री कुलकर्णी के पास आये और रूपये 200/- मुझे दिये और बोले बनाओ?''

उस दिन गैदरिंग का पहला दिन था और मुम्बई झँकार पार्टी का आर्केस्टा का कार्यक्रम था।

मैं अपने एक और मित्र रहीम गुट्टी के पास गया और उसे सभी बातें बताई श्री गुट्टी ने भी कहा कि सतीश 200/- रूपये में स्टेज कैसे बनायेगा? मैंने कहा हां कहा है तो बनाना तो है ही, श्री रहीम के कहने पर मैंने 8 तखत भाड़े पर लिये कुछ ब्राउन पेपर्स, कुछ गोल्डन एवं सिल्वर पेपर्स, गोंद इत्यादि सामान लेकर हाथ ठेलों पर रखकर माधव कॉलेज पहुँचा। उस समय शाम के

7.30 बजे होंगे। कॉलेज के चपरासियों से मदद की गुहार लगाई पर उन्होंने नहीं सुना जैसे-तैसे सभी सामान माधव कॉलेज के स्टेज पर रखा। डॉ.साहब सपरिवार झंकार पार्टी का आर्केस्टा सुनने रात 9 बजे कॉलेज परिसर में आये, और मेरे द्वारा लगाये गये सामान को देखकर नाराज हो गये, कहा क्या यहां शादी का मंच बनाना था। मैंने उनसे विनम्रता से आर्केस्ट्रा में जाने का निवेदन किया, वे 3-4 बार आर्केस्ट्रा से उठकर मंच की तरफ आये, वे काफी चिंतित थे। आर्केस्टा रात्रि लगभग 2 बजे समाप्त हुआ, वे लौटते वक्त पुनः मुझसे नाराज होकर बेचैन मन से घर की ओर चल दिये। मैं रात भर जैसे-तैसे मंच बनाता रहा, ब्राउन पेपर चिपका उसमें गोल्डन और सिल्वर की नक्काशी कर मैंने महल बनाने का प्रयास किया।

सुबह 9 बजे डॉ.भट्टाचार्य मंच के पास आये उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि वह मंच मैंने अकेले रात भर में बना दिया। वे तेज कदमों से प्राचार्य के कक्ष की ओर गये। डॉ.भट्टाचार्य, प्राचार्य सुमनजी एवं एक दो प्रोफेसर तेज कदमों से हॉल की ओर आ रहे थे। डॉ.सुमन कह रहे थे हमारे बच्चे तो होनहार

सतीश चव्हाण के चित्रों की प्रदर्शनियाँ

* वर्ष 1969 में माधव कॉलेज उज्जैन (एकल प्रदर्शनी)
* वर्ष 1970 में माधव कॉलेज उज्जैन (एक प्रदर्शनी)
* वर्ष 1973 में जहांगीर आर्ट गैलरी में अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित प्रदर्शनी जिसमें सर्वश्री हुसैन, बेन्द्रे, आरा, रामकुमार, गुजराल, संतोष मेहता, नरेश पांचाल, नरीननाथ, शांतिदेव, हरीश राऊत, आबिद सुरती, जयंत पारखि, जी.के.पंडित, विजय मोहिते, हैब्बार, स्वामीनाथन, डॉ.भटनागर एवं जापानी कलाकार डॉ.फुकूर्द के साथ (समूह प्रदर्शनी)
* वर्ष 1973 भारती कला भवन की कला वीथिका (एकल प्रदर्शनी)
* वर्ष 1974 में 'युवा कल्याण विभाग' विक्रम विश्वविद्यालय के सौजन्य से ग्रॉड होटल उज्जैन में एकल तैल चित्र प्रदर्शनी उज्जैन की पहली एबस्ट्रेक्ट प्रदर्शनी।
* वर्ष 1978 में मध्यप्रदेश कला परिषद की वार्षिक प्रदर्शनी (समूह प्रदर्शनी)
* वर्ष 1979 लखनऊ (उ.प्र.) (समूह प्रदर्शनी)
* वर्ष 1979 अहमदाबाद गुजरात (समूह प्रदर्शनी)
* वर्ष 1979 ललीत कला परिसर भोपाल (एकल प्रदर्शनी)
* वर्ष 1982 भोपाल संगीत कला संगत के आयोजन 'नाद' में (एकल प्रदर्शनी)
* वर्ष 1982 रजा प्रदर्शनी भोपाल (समूह प्रदर्शनी)
* वर्ष 1992 में 'दंगा' पर आधारित भोपाल (समूह प्रदर्शनी)
* वर्ष 2002 में कलापरिषद की कलावीथिका में बड़ी बेटी शीतल की उपलब्धि स्वरूप कला प्रदर्शनी हार्दिक उपहार स्वरूप (एकल प्रदर्शनी)

है, होशियार है वे तो हर असंभव को संभव कर सकते हैं, पर जैसे ही मंच पर मुझे देखा, हम दोनों झिझक गये, आपस में नज़रें नहीं मिला पाये। परन्तु विशाल कवि मन के 'सुमन' जी ने तत्काल मुझे क्षमा कर दिया, उस एक घटना के दिन मेरी फीस माफ हो गई, मुझे कॉलेज हॉस्टल में एक कमरा मुफ्त और बाटनी विभाग विश्वविद्यालय में रू. 160/- प्रतिमाह की नौकरी मिल गयी। उस समय एक घटना ने मेरा जीवन ही बदल कर रख दिया, अब कॉलेज के हर कार्यक्रम में मानो मेरी जरूरत हो गई, कॉलेज की सोविनियर, कॉलेज का मंच, कॉलेज की प्रदर्शनी सभी जगह स्व. गजा जोशी, डॉ.भट्टाचार्यजी एवं श्रद्धेय स्व. सुमन जी की वजह से मेरा मार्ग प्रशस्त होता गया । मैं इन सभी महानुभावों का सदैव ऋणी रहूँगा।

अब कॉलेज ही नहीं अपितु शहर के लोग भी मुझे जानने-पहचानने लगे थे। मुझे ड्राइंग सिखाने के लिये संभ्रांत परिवारों में बुलाया जाने लगा। स्थानीय समाचार पत्र मेरे चित्रों को छापने लगे। कई वे लोग जो मुझसे किनारा करते अब करीब आने लगे थे। मेरी मुफलिसी के दिनों में एक और व्यक्ति मेरे संपर्क में आये उनका भी वर्णन करना अत्यन्त आवश्यक होगा। बात उन दिनों की है जब मैं जोशी भोजनालय में खाना खाता था। जोशी भोजनालय के चबूतरे पर मैं खड़ा था कि एक छोटा बच्चा लगभग 5 वर्ष आयु का, कोई उसे टक्कर मार कर निकल गया इतने में कॉलेज की ओर एक व्यक्ति तेजी से साइकल पर आये उस रोते बच्चे को उठाकर संगीत महाविद्यालय के चबूतरे पर ले गये उसे चुप कराया और तब तक लगे रहे जब तक कि उस बच्चे के अभिभावक नहीं आये। फिर पता नहीं वे कैसे मेरे जीवन में आये, उन दिन्नों मेरे रहने-खाने आदि सभी बातों का अभाव था, मैं उनके साथ 'जनसंघ' कार्यालय में रहने लगा। हम साथ में ही भोजन करने लगे। वे पेशे से 'वकील' थे, उन्होंने बसावड़ा पेट्रोल पंप के पास वाली बिल्डिंग में अपना कार्यालय खोला जहां मुझे कार्य करने के लिये जगह दी वे क्रांति का है। एक दिन उनकी साइकिल लेकर मैं राजहंस भोजनालय में भोजन कर रहा था, किसी ने उनकी साइकिल पर हाथ साफ कर दिया। मैंने झिझकते हुए कांति दा से कहा साइकिल चोरी हो गई, उन्होंने धीरे से मेरी पीठ पर हाथ रखते हुए कहा कोई बात नहीं पुरानी थी। जबकि मुझे पता था कि साइकिल बिना उन्हें काफी कठिनाई हो रही थी। कांतिदा की निर्भीक लेखनी और स्पष्टवादी विचारों का मैं कायल रहा उनमें राष्ट्रीयता की भावना का मैं हमेशा कायल हूँ। उनसे अक्सर बौद्धिक विचारों का आदान-प्रदान होता था।

जून 74 में मेरी एकल प्रदर्शनी युवक कल्याण विभाग के सौजन्य से ग्रांड हॉटल की कला विथीका में आयोजित, जिसके उद्घाटन के लिये मैंने श्री मालू श्री सिंथेटिक्स से करवाया था, कांति दा लिखते हैं 'कला प्रदर्शनी का उद्घाटन कला अनभिज्ञ से कराकर कला को लक्ष्मी से जोड़ने का प्रयास वर्तमान परम्परा से हटकर नहीं कहा जा सकता। कलाकार की तूलिका ने रंगों का मधुमाह बिखेरा है केनवास पर, जो बरबस आकर्षित करता है। अभी तक का प्रयास आयामों की खोज है जो भविष्य के लिये मंगलमय होगा।

सचमुच में आर्थिक संपन्न संस्थाओं को कलाकारों को प्रोत्साहन देना चाहिए पर दुर्भाग्य ऐसा नहीं हो सका।

जैसे-तैसे मैंने बी.ए. की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। अब श्रद्धेय स्व.वाकणकर सर मुझे बम्बई जाकर कला के क्षेत्र में कार्य करने के लिये बार-बार उकसाते रहते। तब मुझसे मिला शुक्ला जो कि राजनीति विषय की व्याख्याता थी मुझसे ड्राइंग सीखती थी वे काफी सहृदय की थी, जब उन्हें पता चला कि मुझे मुम्बई जाना है, और पैसों की कमी है तो उन्होंने मेरी वर्षभर चली सायकल नई साइकल की कीमत देकर रख ली और मुझे उनके देवर श्री शुक्ला जो उन दिनों फिल्मों के लिये और पत्र-पत्रिकाओं के लिये लेखन का कार्य करते थे, के नाम बहुत ही आत्मीयता भरा सिफारिशी पत्र दिया। वह पत्र लेकर मैं मुम्बई में बान्द्रा स्थित 'मान सरोवर' हॉटल में श्री शुक्ला जी से मिला, उन्होंने मुझे 'धर्मयुग' में स्व.श्री कन्हैयालाल नंदन जी से मिलवाया। श्री कन्हैयालाल जी नंदन उस समय 'धर्मयुग' पत्रिका में सहायक संपादक थे। उन्होंने मुझे 'सुनहरी देवी' नामक कहानी के लिये चित्र बनाने हेतु स्क्रिप्ट दी। अपने परिचित के द्वारा मैंने अंधेरी से चर्चगेट ऐसा लोकल ट्रेन का मंथली पास बना लिया। मुझे मुम्बई आकर लगभग आठ-दस दिन हो गये थे मैं जो तीन सौ साढ़े तीन सौ रूपये लेकर उज्जैन से मुम्बई आया था, तेजी से समाप्त हो रहे थे। मैं वहां एक दूर के रिश्तेदार के यहाँ उनके परिवार के बीच महालक्ष्मी स्टेशन के पास रहता था। उनके परिवार में काफी लोग थे। अतः आधे बिल्डिंग के नीचे रात को फुटपाथ पर सोते थे। दिन में सभी सदस्य काम के

लिये बाहर जाते तब मैं उनके खाली कमरे में चित्र बनाता। मैं नंदनजी के पास जब भी, सुनहरी देवी का चित्र बनाकर ले जाता वे चित्र देखकर रद्दी की टोकरी में फेंक देते थे, और कहते दोबारा बनाओ यह क्रम चार-पांच बार चलता रहा। फिर एक दिन मुझे अंतिम चेतावनी देते हुए कहा कि अबकी बार चित्र अच्छा नहीं बना तो वे स्क्रिप्ट किसी दूसरे चित्रकार को दे देंगे। मैंने सभी बातें फोन पर बान्द्रा 'मान सरोवर' में श्री शुक्ला जी को बताई। उन्होंने कहा अच्छा कल तुम उन्हें दिखाने से पहले मुझे दिखाना। मैं सुबह जल्दी तैयार होकर 'महालक्ष्मी स्टेशन से बान्द्रा' मानसरोवर के लिये निकल पड़ा। उस दिन मेरी जैब में मात्र 3 रूपये थे, मैंने सुबह से चाय तक नहीं पी थी। (मुझे नंदन जी ने लँच से पहले चित्र बनाकर लाने की चैतावनी दी थी।)

मैं सुबह 8 बजे के करीब 'मान सरोवर' में शुक्ला जी के पास पहुँचा, वे ब्रेड मक्खन और चाय का नाश्ता कर रहे थे। मुझसे उन्होंने चाय नाश्ते के लिये पूछा, मैंने झूठ का स्वाभिमान दिखाते हुए कहा कि मैं चाय नाश्ता करके आया हूँ। उन्होंने पारखी नजर से मेरा झूठ पकड़ लिया और मुझे चाय पिलाई, उसके बाद चित्र देखकर बोले कि अरे ये चित्र तो बहुत अच्छा बनाया है, तुम पहुँचो मैं बात करता हूँ। मैं 9 सवा 9 बजे बान्द्रा लोकल के प्लेटफार्म पर चर्चगेट (धर्मयुग कार्यालय) जाने के लिये आया। मैंने अपनी पूरी जिन्दगी में इतनी भीड़ कभी नहीं देखी जितनी भीड़ वहाँ प्लेटफार्म पर जाने वालों की थी मैं ट्रेन में भीड़ चीरकर अन्दर दो कदम रखता, उससे अधिक 20 कदम बाहर फिका दिया जाता।

फिर मैंने देखा कुछ ट्रेनों में लड़के 'नो एडमिशन' वाले डिब्बे पर लटककर जा रहे हैं। मुझे इस तरह जाना सुविधाजनक लगा। सो मैं जिस ट्रेन के नो एडमिशन वाले दरवाजे पर लटका हुआ था वह विरार के चर्चगेट जाने वाली डबल फास्ट ट्रेन थी। ट्रेन ने अपनी स्पीड पकड़ ली थी, गर्मी और पसीने की वजह से मेरे हाथ स्टील के पाईप से फिसल रहे थे, मैं बहुत दुबला-पतला था मेरी पेंट से मेरा शर्ट बाहर निकल कर साईड में लगे खंबो से टकरा रहा था, मुझे मेरा अंतिम समय दिख रहा था, मैंने सभी देवी-देवताओं को एक साथ याद करना शुरू कर दिया, वह ट्रेन लगभग 25-30 मिनट तेज दौड़कर बाम्बे सेंट्रल पर रुकी। मुझे चक्कर आ रहे थे, मेरी आँखों के सामने अंधेरा छाने लगा, तभी किसी ने पीछे से मेरी कॉलर पकड़कर पीछे की ओर खींचा। आधे एक मिनट बाद थोड़ा संभलते हुए मैंने कहा मेरे पास रेल्वे का पास है, मैं बिना टिकिट नहीं हूँ, परन्तु उसने मुझे झिड़कते हुए, स्टेशन की सीढ़ियों के नीचे एक कमरे में ले गया वहां मेरे जैसे करीब 15-20 लोग थे, उनमें ऑफिस जाने वाली महिलाएं और टाई बंधे पुरुष भी थे। सभी पर 10 रूपये जुर्माना लगाया गया पर मेरे पास तो मात्र 3 रूपये थे। वहां के बाद लगीाग 12 बजे बचे हुए लोगों को रेल्वे मजिस्ट्रेट की अदालत में ले जाया गया, वहाँ मजिस्ट्रेट ने सभी को रूपये 5 अदा करने का आदेश दिया नहीं तो एक दिन की कैद का आदेश दिया। मेरे पास तो 5 रूपये भी नहीं थे, तो मैं चुपचाप सजा भुगतने के लिये कोठरी की ओर एक सिपाही के साथ चल दिया। वहां एक सिपाही सजायाप्ता लोगों की उंगली पर शाही का निशान लगाकर उन्हें अंदर कोठरी में ढकेल रहा था, मेरी उंगली पर स्याही नहीं लगाते वैसे ही अन्दर की ओर ढकेल दिया। मैं बेशर्म सा अन्दर की ओर गया वहां एक 20-25 वर्ष का गुंडा मेरी ओर देखकर फब्ती कस रहा था- वह कह रहा था दिखने में शरीफ लग रहा है जरूर किसी का पॉकेट मारा होगा।

मैं चुपचाप आगे बढ़कर एक कोने में बैठ गया। तब वहां एक 45-50 वर्ष का पके बालों व्यक्ति मेरे पास आया और बोला 'बेटा तुम तो शरीफ लगते हो फिर तुम कैसे आये' उसके सांत्वना वाले शब्दों से मैं रो पड़ा। गेट पर खड़े

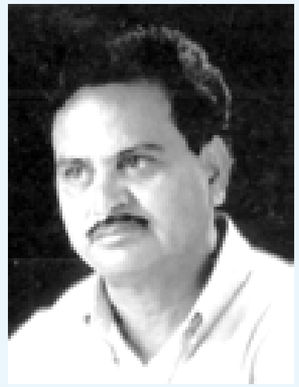

संतरी ने जब देखा वह आया और उसने उस प्रौढ़व्यक्ति को एक जोरदार चाँटा मारा। मैं डर के मारे काँप रहा था। थोड़ी देर बाद दरवाजे पर एक सिपाही और आया उन्होंने मुझे इशारे से बाहर की ओर बुलाया और पूछा कितने रूपये है जेब में, मुझे लगा शायद अब मैं बाहर निकल सकता हूँ, मुझे पता नहीं कहां से शक्ति आई और मैंने कहा मेरे पास सिर्फ 2 रूपये है, वे हँसे और कहा क्या कोई 2 रूपये लेकर मुम्बई की सड़कों पर निकलता है। मैंने भी पूरी ताकत से कहा यदि 5 रूपये होते तो मजिस्ट्रेट भी अदालत में नहीं दे देता! यहां क्यों मरने आता, उन्होंने कहा अच्छा निकाल 2 रूपये। मैं सांई बाबा को बहुत मानता हूँ मैंने उनका स्मरण कर जेब से पैसे निकाले तो वो 2 रूपये का नोट निकला वो नोट रिश्वत के रूप में उनको देकर, रिश्वत किसे कहते हैं यह मैंने पहली बार अनुभव किया वहां से मैं निकला यह सब होते डेढ़बज गया था, मैं सुबह से एक चाय जो कि 'मान सरोवर' में शुक्ला जी के यहां पी थी पर था। मैं वहाँ से लोकल ट्रेन की लाईन पर आया वहां सुबह 9 बजे के समान भीड़ नहीं थी। अतः मैं चर्चगेट की तरफ जाने वाली गाड़ी में बैठ गया। मैं मरीन लाइन स्टेशन पर उतरकर जल्दी-जल्दी टाईम्स ऑफ इंडिया की बिल्डिंग की ओर लगभग भागते हुए जा रहा था। लगभग 2 सवा दो बजे वहां पहुँचा वहां लिफ्ट में लंबी कतार थी, मैं सिढ़ियों से पैदल चलकर चौथी मंजिल पर 'धर्मयुग' कार्यालय में पहुंचा। स्व.श्री कन्हैयालाल जी नंदन लंच करके सुस्ता रहे थे, मुझे देखकर उन्होंने दीवार पर टंगी घड़ी की ओर देखा, घड़ी ढाई बजा रही थी। वे बोले मैंने लंच के पहले चित्र लाने को कहा था, तुम लेट आये हो, और चित्र देखकर हमेशा की तरह उसे मोड़-माड़कर कचरे की टोकरी में फेंक दिया।

अब मेरे सब्र का बांध टूट चुका था, मैंने जोर से कहा 'आप ये क्या कर रहे हो'? और जोर से दोनों मुट्ठियाँ भिंचकर उनके टेबल पर दे मारी और मैं रोने लगा, वे यह सब देखकर 'सकपका' गये तुरन्त उठे केबिन का पर्दा खींचा और मेरे रोने का कारण पूछने लगे, मैंने उनसे कहा कि इस चित्र की वजह से मैं आज सजा काटकर आ रहा हूँ, उन्होंने वो चित्र कचरे की टोकरी से उठाया। वे भावुक हो गये थे, मेरे लिये कैन्टीन से बड़ा पाव और चाय बुलवाई, उस चित्र को उनकी जरूरत के हिसाब से फाड़ा और बोले 'बेटा तुम जो पहले दिन चित्र बनाकर लाये थे वह भी बहुत अच्छा था' पर मैं चाहता था कि तुम और अच्छा बना सकते हो। फिर वह चित्र 'धर्मयुग' में उसी रूप में प्रकाशित हुआ, वह धर्मयुग में प्रकाशित मेरा सबसे पहला चित्र था। उसके बाद तो मुझे अक्सर 'धर्मयुग' 'सारिका' से कहानियाँ मिलती रही।

संघर्ष के उन दिनों में कई तरह के पापड़ बेले किन्तु चित्रकारिता के शौक और संघर्ष करने के जुनून ने मुझे कभी टूटने नहीं दिया शायद यही कारण रहा कि मेरा मार्ग प्रशस्त होता गया। घर परिवार के लोगों का सहयोग मिलता रहा, पुरस्कृत और सम्मानित होता हुआ आज उन दिनों को याद कर रहा हूँ जिन्हें मैं कभी भी भूल नहीं सकता।

सतीश चक्षाण के चित्रों पर प्रतिक्रियाएं

फिर-फिर उदित होता चित्रकार

विजयबहादुर सिंह

सतीश चक्षाण के चित्रों से सामना जब भी हुआ हो पर जब उनसे रू-ब-रू होने का मौका आया तो ढेर सारे तनकर खिले गुलाबों, खूबसूरत आत्मलीन बेटियों और समूचे घर पर अपने नियंत्रण की छाप छोड़ती पत्नी की गुरु-गंभीर मुद्रा एक साथ मेरे अनुभव का हिस्सा बनती चली गई। चित्रकार सतीश से मिलना कुछ ऐसा रहा जैसे किसी गुहावासी से मिलना हो। जिसने लगभग अपनी घर-गृहस्थी को औसत ढंग से जारी रखने के लिए रंगों को दर-किनार कर दिया या फिर रेखाओं में पंख तौलती आकृतियों से यह कह डाला हो- आज तो कह दो कि मेरा बंद शयनागार पर कोई भी कलाकार यदि वह सचमुच दरवाजों और खिड़कियों को नहीं बंद कर पाता, वे बंद होकर भी खुले रहते हैं। सतीश ने भी आसपास के लोगों की सूचना के लिए एक सामयिक सन्यास सा ले लिया था, किन्तु भीतर ही भीतर किन्हीं भावों की तरह धुधुआ और दहक रहा था। उसके रंग किसी कोने में बेरंग पड़े थे- ब्रश अपनी निरर्थकता में डूबे हुए थे, पर यह वह अवधि थी, जिसे समझने के लिए कुछ दिनों के लिए युद्ध से विरक्त हो चुके शक्ति की आराधना में लीन राम को याद करके समझना होगा। जिनका चित्रण करते हुए कवि निराला ने लिखा- *''है नहीं शरासन आज हस्त-तूणीर स्कंध/वह नहीं सोहता निविड़-जटा दृढ़, मुकुट बंधु।''* कलाकारों के जीवन में कभी-कभी ये खामोशियाँ उन निराकार साधनाओं की तरह आती है, जिन्हें आज नहीं तो कल किसी धुँआधार की तरह फूटना और बहना है। अपने बचपन के दिनों से लेकर विवाह और घर-गृहस्थी के ढेर सारे कठिन व्यवहारिक जंजालों के बीच अपनी संवेदनाओं के अत्यंत सूक्ष्म किन्तु नाजुक तारों को सम्हाले हुए चित्रकारों ने अब तक जो पड़ाव तय किए और छोड़े हैं उनकी फेहरिस्त काफी लम्बी है। उज्जैन से मुम्बई फिर भोपाल का स्थाई वास धर्मयुग, नवनीत और अभिषेक जैसी पत्रिकाओं के कलेवर सज्जा, कई हिन्दी फिल्मों-अनहोनी आदि- की सेट-सज्जा एकनिष्ठता का जो सोपान रचा है यह प्रदर्शनी उन समस्त उम्मीदों, चुप्पियों, संघर्षों और एकमुश्त प्रौढ़विस्फोटों की विह्वल उद्घोषणा है। इनमें कलाकार की सृजनात्मक विकलता ही नहीं उसकी साधना की सघन ताप को तेज और उसके होने की आत्मस्थता का सहज विश्वास भी घुला-मिला है। कवि, नर्तक, शिल्पी हो या चित्रकार उसे सबसे ज्यादा खुद को याद रखना होता है। जब वह बाहरी दुनिया के बीच बहुत खोया-खोया और डूबा-डूबा रहता है तब भी वह एक कलाकार की तरह भीतर से जिन्दा रहता है और अपनी सृष्टि की समस्त संभावनाओं को लेकर सचेत रहा करता है। सतीश चक्षाण जैसे चितेरे, जिन्होंने घर-परिवार और जीविका के संघर्षों के बीच अपने स्व को यदि अब तक न बचाए रखा होता तो रंगों, रेखाओं और आकृतियों का यह जीवंत जादुई लोक हमें शायद ही नसीब हो पाता है। इन चित्रों में संघर्ष की तीक्ष्णता, जीवन की जायज चुप्पियों के पीछे की रहस्यमयी मुस्कान और चित्रकला के भावी क्षितिजों पर छा जाने वाली आत्मविश्वासी मधुरता का विरल संयोग है। यह वह विशिष्ट अद्वितीयता है जो कलाकार की अपनी अधीनता और उसके कल्प-राज्य की स्वच्छन्दता से जन्म लेती है। एक ऐसी विरलता जिसका वास्ता जितना अहं से है उतना ही इदम् से भी। मुझे लगता है अतिवादी सम्मूर्तन जितना स्थूल और सरल है अतिवादी अमूर्तन उतना ही लोक-विमुख और अबूझ। सतीश चक्षाण की कला इस दृष्टि से एक ऐसे मध्य मार्ग की ओर इशारा करती है, जिसमें आकृतियाँ हैं, किन्तु स्थूलता से बचती हुई, निराकर होते रंग है किन्तु निर्गुणवाद से एक खास प्रकार

की शालीन दूरी बनाए हुए। हमारे समय को यदि आज ऐसे चित्रकार मिल पा रहे हैं तो हम अभी भी अपनी सृजनशीलता और उसकी स्वाधीनता के प्रति आश्वस्त रह सकते हैं। (राज्य की नईदुनिया, 30 जुलाई)

(भोपाल में चक्षाण के चित्रों की 14 जुलाई 2002 प्रदर्शनी पर प्रतिक्रिया

****

इधर के युवा चित्रकारों में सतीश चक्षाण अपनी अलग पहचान बनाते जा रहे हैं। 'सेक्स आर्गन', स्त्रियों, जानवरों, नीले, लाल, हरे का प्रगाढ़रंगों के तूलिका घातों से रचे-बने रेखांकनों, चित्रों ओर रूपाकारों को, जो एकदम धावा बोलते से लगते हैं, पहचानने में अब हमें कोई दिक्कत नहीं होती है।

लेकिन सतीश की सेक्स आर्गन प्रधान आकृतियों, या आकारों की वजह से हम कहीं यह न मान लें कि उनके चित्रों में महज कामोत्तेजना है। वास्तव में वह तो कहीं है ही नहीं। इनकी आकृतियां पहले चाक्षुष प्रभाव में हमें, एक दूसरे से घुली-मिली, बिल्कुल सही-सही नजर आती है, लेकिन थोड़ी ही देर बाद में हम इन चित्रों की मूल चिंताओं, आशंकाओं, और उत्तेजनाओं की ओर आकर्षित हो सकते हैं। या कि इन चित्रों की मूल गूंजे और अनुगूंजों और ध्वनियां ही हमें बरबस ऐसा करने को कहती है। सतीश के चित्र अकेली-सेक्स आर्गन आकृतियों के बारे में नहीं कहे जा सकते, बल्कि उनके चटख और तेज रंग या परतें हम पर पहले ही धावा बोलकर हमें ऐसा सोचने से रोक देते हैं। लेकिन चूंकि सतीश 'कमर्शियल' आर्टिस्ट भी हैं, इसलिए कई बार उनके चित्रों की मूल चिंता हमें बड़ी खामोशी के साथ घेरती है। जैसे कि वह कहीं हो ही नहीं। यह सतीश की कमजोरी भी कही जा सकती है, और विशेषता भी।

श्रीराम तिवारी, भोपाल

दैनिक भास्कर भोपाल 20.7.1978

****

कला आचार्य स्वर्गीय विष्णु श्रीधर वाकणकर के प्रिय और योग्य शिष्य सतीश ने चित्रकला में अनेक पुरस्कार जीते। हमेशा मेरिट में आने वाले सतीश ने अनहोनी, मेरे जीवन साथी, अर्चना फिल्मों में भी चित्रांकन किया। धर्मयुग, नवनीत हिन्दी डायजेस्ट और राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के समाचार पत्रों में उनके चित्रों का प्रकाशन होता रहा है। देश विदेश के अनेक कला प्रेमियों ने उनके चित्रों का संग्रह भी किया है। सात वर्ष की आयु में तात्कालीन राज्यपाल स्व.पाटसकर का रेखाचित्र बनाकर अखबारों की नजरों में चढे सतीश चक्षाण को कला समीक्षकों ने बहुत सराहा है। प्रयाग शुक्ल, श्रीधर दत्त, डॉ.सुशील त्रिवेदी, रघु ठाकुर, डॉ.शिवमंगल सिंह सुमन, समेत अनेक लेखकों ने सतीश की मौलिकता के लिए प्रशंसा की है।

दैनिक सांध्यप्रकाश - 24-07-02

****

अपने समय और पीढ़ी के साथ चलने वाला चित्रकार

ईश्वरी रावल

वरिष्ठ चित्रकार सतीश चक्षाण जलरंग के सिवा एक्रिलिक रंग, तेल रंग में भी बंद न थे। उनमें जलरंग के प्रति गहरी और गर्म भूख बचपन से बनी रही। इसीलिए केवल सात वर्ष की उम्र में उन्होंने म.प्र. के राज्यपाल का 'लाइव पोट्रेट' बना दिया और भूरि-भूरि प्रशंसा अर्जित की। उनके कला कर्म में दिन-ब-दिन निखार आता रहा। अपनी कला को सौंदर्य और लालित्य से समृद्ध करने के मामले में चक्षाण एक महत्त्वपूर्ण चित्रकार हैं। साथ ही वे अपने समय और पीढ़ी के साथ भी चलते रहे। मुख्तसर यह कि आधुनिक कला के बीज भी उन्होंने अपने कैनवस पर रोपे, किन्तु अमूर्तोन्माद से उन्होंने अपनी कला को ध्वस्त नहीं होने दिया। अति आधुनिकता की रतौंध से उन्होंने एक दीर्घ फासला बनाये रखा।

उनसे मेरा परिचय आज से कोई पाँच दशक पूर्व हुआ था। तब से ही वे कला सर्जना के लिए निरंतर संघर्ष करते रहे। तब हम माधव महाविद्यालय के छात्रावास में साथ-साथ रहते थे। वे दोस्तों में अपने अहर्निश सार्थक कथन और रचनात्मक सरफ़रोशी के लिए जाने जाते रहे हैं। वे समय-समय पर करवट बदलते रहे और कभी जलरंग कभी एक्रिलिक रंग और कभी तेल रंग में आवाजाही करते रहे हैं। उन्होंने भीत्ती चित्र भी बनाये। वे कोई पिछले पाँच दशक से ज्यादा समय से रंगों और रेखाओं का घन-मंथन करते रहे और अपना पूरा जीवन कला को समर्पित कर दिया।

चक्षाण अपने रहन-सहन, पठन-पाठन और कला-व्यवहार में पूर्णतः भारतीय रहे हैं। उनका जन्म महाकाल की नगरी उज्जयिनी में हुआ। वैदर्भी रीति के कवि कालिदास की जन्मभूमि की यह धरती इस समय रिमझिम वर्षा से निरंतर आप्लावित है। पुरातत्वविद डॉ.विष्णु श्रीधर वाकणकर और उनके शिष्य सच्चिदा नागदेव की कर्मभूमि रही इस धरती से सतीश चक्षाण का गहरा रिश्ता रहा है। पौराणिक लोक और मालवा के जनचरित्र उनकी साँस-साँस में बसे रहे।

उनका एक लोकप्रिय जलरंग चित्र है 'शृंगार', जिसमें छः युवतियाँ बीच में बैठी मुख्य पात्र को शृंगारित कर रही है, उनके हाथों में विविध प्रकार की शृंगार सामग्री है। फलक के आभ्यंतर में रचित इन युवतियों के अवयव सुप्रकाशित हैं, जबकि पृष्ठभूमि गहरे नीले रंग में चित्रित की गई है। उनका प्रेक्षक, चित्र पर एक नजर डाल कर छोड़ नहीं देता बल्कि ठिटक कर कला-समष्टि का आनंद उठाता है।

उनकी दूसरी जलरंग कृति है 'विक्रमोवर्शियम' जिसमें वृक्षों के झुरमुट के ऊपर नीला और नीला आसमान झांक रहा है। यह वसंत ऋतु है और आम्र-मंजरी निकल रही है। नेपथ्य में विचरते मयूर ने चित्र को एक विशेष ध्वनि वलय में बांध दिया है। ये सब मिलकर दर्शक में एक सकारात्मक ऊर्जा भाव उत्पन्न कर रहा है। लगभग बीस स्त्री आकृतियों से विक्रमोर्वशियम की कथा व्यक्त की गई है। उर्वशी और पुरुरवा की इस प्रेम कथा में चित्रकार का रचनाकर्म तो महत्त्वपूर्ण है ही तकनीक की दृष्टि से भी कृति विशिष्ट बन पाई है। चक्षान ने लंबी रचना यात्रा और संघर्ष पूर्ण तैयारी से प्रेक्षक का सम्मान और विश्वास अर्जित किया है।

उनके अन्य चित्र हैं मालविकाग्निमित्रम, अभिज्ञान शाकुंतलम, रघुवंशम एवं राजा-रानी। तेल रंग में निर्मित लतिका नामक चित्र में उन्होंने अपनी शैली में परिवर्तन किया है। चित्रकार जब खाली कैनवास के सामने होता है तो दिशाओं को भी भूल जाता है, वहाँ उसे अपने अकेलेपन से उठकर फलक के स्पेस में जगह बनानी होती है। चक्षान ने अपनी एकांत साधना से कैनवास पर स्थान बनाया और पौराणिक कथानकों से इतर एक विवस्त्र युवा स्त्री को चित्रित किया है, जो लता-पत्रों से ढंकी है। नग्न होने के बावजूद यह आकृति कहीं से वीभत्स होने का दंश नहीं देती। बल्कि उसमें चित्रित लता गुल्म एक संगीत की प्रतीति देते हैं। प्रकृति अपने हरेपन के साथ उपस्थित है। ऊपर झूल रही लताएँ एक अनछुए अहसास से भर देती है।

आज चित्रकार ने केवल और केवल तकनीक को कैनवास का आधार बना लिया है और विचार को दर्ज करना भूल चुका है। एक कृति में विचार विशिष्ट भी होता है और सामर्थ्यवान भी। आड़ी तिरछी रेखाओं और अमूर्त बिंबों से बिना विचार के बना चित्र अपनी अलग पहचान नहीं बना पाता। तकनीक और छिड़के रंग-द्रव्य के बीहड़ में विचार अब अंतिम सांस ले रहा है। यह बदलाव लोक और समाज को कला-मूल्यों से दूर ले जा रहा है, किन्तु सतीश की कृतियों में जहाँ विचार महत्त्वपूर्ण है वहीं उनका शिल्प भी। उन्होंने प्रकृति तथा पुरा कथाओं के विविध रूपों का मानवीय निकटता के साथ अध्ययन कर आत्मसात किया और फिर अपनी तरह से चित्रों का निर्माण किया। इसीलिए उनके चित्र के आभ्यंतर में रूप का इकहरापन नहीं होता। भारतीय पुराणों, भारतीय जीवन मूल्यों के प्रति उनके मन में एक गहरा विश्वास भाव हमेशा बना रहा। उनके चित्रों के आसमान में और नए तारे जुड़ते रहे, उनमें रंग-विवेक स्पंदित होता रहे।

4, अनुपम स्कीम नं.59 अमितेश नगर,
इन्दौर-452014 मो.9424008937

चक्षाण के चित्र वास्तविक दुनिया के चित्र है वह माडर्न होते हुए अमूर्त नहीं है इनमें भाव को तलाशने की जरूरत नहीं है भाव स्वतः स्पष्ट हो जाते हैं। सतीश का मानना है कि 'भारत में पेंटिंग का भविष्य बहुत अच्छा है क्योंकि लोग अब पोस्टरों को नकारकर ओरिजनल पेंटिंग घर में लगा रहे हें। लोगों की मानसिकता बदली है वह 'ओरिजनल' के लिए पैसा खर्च करने से भी नहीं कतरा रहे। इसके कारण चित्रकारों का काम बढ़रहा है और अब ये प्रदर्शनी तक सीमित नहीं रहना चाह रहे। सतीश की पेंटिंग का जहां तक सवाल है इस फिल्म अभिनेता संजीव कुमार ने काफी पसंद किया था और अनहोनी फिल्म में इनका उपयोग किया। इतना ही नहीं बल्कि इंडियन टेबेको कंपनी ने इनके चित्रों को खरीदा और बाद में अमेरिका के कई शहरों में इनके चित्रों को यूनिक आर्ट के नाम से सराहा गया है। अपने चित्रों के बारे में सतीश कहते हैं। ''रीयलास्टिक थीम पर मैंने अधिक काम किया है चूंकि यह चिरस्थायी है। सिम्बालिक काम अधिक समय तक नहीं टिकता।''

-डॉ.राहुल रंजन, दैनिक जागरण-10 अगस्त 02

''आज हर क्षेत्र में कला का महत्व बढ़ा है.....।''

चित्रकार सतीश चव्हाण से स्तम्भकार कांतिलाल नागर की बातचीत

आठ वर्षीय लड़का दैनिक भास्कर के उद्घाटन समारोह में पर्दा लांघ घुस जाता है। भारतीय कला भवन के आचार्य वि.श्री.वाकणकर उसे देख अपनी कुर्सी से उठकर बैठा देते हैं। हाथ में पेंसील कागज देख उसे चित्र बनाने का कहते हैं। राज्यपाल एच.व्ही. पाटसकर का उद्बोधन होते ही उनका व्यक्ति रेखाचित्र खींच कर उसे उनके पास पहुँचाते हैं। अति प्रसन्न राज्यपाल नन्हे बालक को लाड़ प्यार करते प्रशंसा कर बड़े कलाकार बनने का आशीर्वाद देते हैं। तालियों से बालक का स्वागत होता है। उत्साह से अभिभूत वह बालक आज का सतीश चव्हाण वर्तमान में देश के ख्यात चित्रकारों में जाने जाते हैं। उज्जयिनी के भारती कला भवन का चित्रकार आज देश विदेश की पत्र-पत्रिकाओं में अपनी तूलिका के रंगों की विविध शैलियों से रचे चित्रों में प्रकाशित हो रहा है। क्या यह हमारे लिए गर्व का विषय नहीं है? अनेक अभाव, भटकाव और टकराव में सतीश आत्मविश्वास से तत्कालीन रंगकर्मियों नाट्य निर्देशकों में पहचान बनाता रहा, जबकि समय ने उसकी खूब परीक्षा ली। एक बार माधव कॉलेज में फीस नहीं भरने पर प्राचार्य डॉ.शिवमंगलसिंह सुमन से निराश हो चुके सतीश ने रंगमंच निर्माण में लगे राजनीति शास्त्र के प्रोफेसर डॉ.प्रभातजी भट्टाचार्य से निवेदन किया कि वह मंच सज्जा करना चाहता है। श्रद्धेय भट्टाचार्य को विश्वास नहीं हुआ। लेकिन सतीश की जिद देख बोले करो और रात 10 बजे चले गये। सुबह भट्टाचार्य जी आए तो अतिप्रसन्न हुए। बढ़िया मंच सज्जा देख आश्चर्य से बोले क्या तुमने ही बनाया है? सतीश उनके चरण छूता है। जब सुमनजी ने वह रंगमंच देखा तब उसे भट्टाचार्य जी ने सतीश की लगन और मेहनत का परिणाम बताया। आचार्य सुमनजी ने शुल्क माफ कर दिया और भट्टाचार्य जी को इस लड़के का उपयोग करने का निर्देश दिया। अर्थ के अभाव ने विश्राम किया, सतीश रंगों में डूब गया। रेखांकन जल व तेलरंगीय चित्रों ने सतीश को कालिदास समारोह में पुरस्कार दिलाए। एकल एवं समूह प्रदर्शनियों द्वारा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। सतीश के रेखाचित्र दृश्यचित्र व्यक्ति चित्र देखते ही बनते हैं। व्यक्ति स्वयं का निर्माता है। संघर्ष, आक्रोश, प्रताड़ना उनके चित्र प्रतीकों में उभरती है, लैंडस्केप शहर के आसपास की पहाड़ियों, जंगल, खेत, सरोवर, सरिता के नजदीक बैठ बनाता रहा है। मूर्त और अमूर्त शैली के चित्र बनाते बनाते वह परम्परा से आगे जाते हैं। नवीनता का आभास देता है। विगत वर्षों में हिन्दी की सुप्रसिद्ध पत्रिकाओं में उसके बनाए इलस्ट्रेशन्स भी देखने को मिलते हैं जो दूर से ही उसकी मौलिकता को उजागर करते हैं। कलाकार ने कला को तीखी अनुभूतियों के रूप में भोगा है। सतीश की अपनी कला ने देश में स्थापित किया है। पिछले दिनों जब सतीश उज्जैन आए तो उनसे जो अनौपचारिक बात बातचीत हुई वह यहाँ समावर्तन के सुधी पाठकों के लिये प्रस्तुत की जा रही है-

कांतिलाल नागर - आपको चित्रकला में रुचि कब लगी

सतीश चव्हाण - बड़नगर में बड़ी बहन को उनके गुरुजी ने हाथी बनाकर दिया। मैंने देखा और बनाने का प्रयास किया। हाथी तो नहीं बना लेकिन चित्र बनाने की रुचि लग गई और जो भी कोरा कागज मिलता कुछ बनाने लगता। दीवारों पर बनाता तो मां की डाट और मार मिल जाती थी। बस मैं चित्र बनाने लगा, यह श्रीगणेश था!

चित्रकला का कोर्स कहां से किया

डिप्लोमा भारती कला भवन से किया। माधव कॉलेज में आर्ट में ग्रेजुएट किया और मुम्बई चला गया। एम.ए.फाईन आर्ट विवि विद्यालय से किया।

आप चित्रकारी में किस विधा को महत्त्व देते हैं?

रेखाचित्र, अलंकारी श्रेणी में संयोजन किया। वाटर कलर, आईल पेंटिंग में किया।

कहां एकल एवं समूह प्रदर्शनी लगी ?

उज्जयिनी में, दो भोपाल में लगाई। समूह प्रदर्शनी अहमदाबाद, मुम्बई, इंदौर, लखनऊ, दिल्ली में हुई।

किस विषय पर चित्रकारी की?

गरीबी, कालिदास साहित्य, मनुष्य की मजबूरी, शोषण किसानों पर, ग्रामीण एवं पर्वों पर बनाए चांद पर पहला मानवीय पदार्पण पर।

आप कहां पुरस्कृत किये गये।

सन 1963 से 66 तक भिलाई में तीन साल, माधव महाविद्यालय में सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार, राजकवि तांबे स्मारक पुरस्कार सन 1960-68 में गांधी शताब्दी समारोह में दादा धर्माधिकारीजी ने पुरस्कार दिया, सन 1969 में म.प्र.कला परिषद का श्रेष्ठ पुरस्कार, सन 1968 में अ.भा.कालिदास प्रदर्शनी, सन 1995 में संस्कार भारती भोपाल द्वारा, सन 2006 में स्वराज भवन भोपाल द्वारा आयोजित स्वाधीनता योद्धा की प्रदर्शनी में पुरस्कार।

परंपरागत एवं आधुनिक कला किसे कहते हैं

दोनों का अपनी जगह विशिष्ट महत्व है, दोनों पूर्ण है। आधुनिक में कोलाज, आईल पेंटिंग, लाइफ पेंटिंग म्यूरल आदि।

आप किस विधा शैली में चित्र बनाना पसंद करते हैं ?

मैं तत्कालीन प्रचलित विधाओं व शैली में काम करता रहा हूँ।

आपको किन चित्रकारों ने प्रभावित किया

आरा, हुसैन, बेंद्रे, नरीनाथ, सचिदा नागदेव एवं मेरे सर्वप्रथम गुरुजी वि.श्री.वाकणकरजी।

तब और अब में क्या बदलाव आया ?

कला सदा सर्वोपरि रही है, तब कला का मूल्यांकन कुछ बड़े-बड़े लोग करते थे। अब साधारण आदमी भी कला समझने लगा है। तब कलाकार को जीविकापार्जन मुश्किल था। अब ऐसा नहीं है। कलाकार को धन का अभाव नहीं लगता! आज हरक्षेत्र में कला का महत्त्व बढ़ा है। मैंने तो मुम्बई में रहते फिल्मों में डेकोरेशन का काम भी किया। मैं असिस्टेट डायरेक्टर रहा। आवश्यकतानुसार धन मिलता रहा। यदपि वहाँ भी चित्रकारों का बहुत शोषण होता है। स

27, अभिषेक नगर, नानाखेड़ा, उज्जैन (म.प्र.)

कांट्रैक्टर

अर्पण कुमार

सब अपने-अपने हिसाब से नौकरी करने आए थे। सब अपने-अपने हिसाब से नौकरी किए जा रहे थे। अगर देखा जाए तो आखिरकार कोई ऑफिस भला क्या होता है! राजनीति और कार्यनीति का अखाड़ा ही तो। एन.आई.सी.एल. भी कुछ वैसा ही ऑफिस था। बड़े पदों वाले बॉस आते-जाते रहते थे मगर कुछ स्थानीय लोग छोटे और मंझोले पदों पर वहीं जमा रहा करते थे। बॉस को भी आने से पहले हर बात की पूरी जानकारी रहा करती थी। कोई भी बॉस अपेक्षाकृत इस पिछड़े माने जानेवाले इलाके में अव्वल तो आना नहीं चाहता था, मगर जब उसकी एक भी न चलती थी, तो वह भाया भोपाल, इस इलाके में आ जाया करता था। उसे आने से पहले ही अपने जाने का इंतजार रहा करता था। उसे मालूम होता था, किसी तरह उसे सिर्फ तीन साल यहाँ बिताने हैं। समय के साथ, इस बड़ी संस्था का हरास हो रहा था। स्टॉफ एक साथ काइयाँ और बेचारे दोनों थे। काइयाँ इस मायने में कि सबकुछ देखकर भी वे चुप रहा करते थे। बेचारे इसलिए कि वे खुद भी हर तरह के समझौतों में आकंठ डूबे हुए थे।

कार्यालय-प्रमुख के रूप में रजिंदर मित्तल ने नया-नया कार्यभार सँभाला था। ऑफिस अपने हिसाब से चल रहा था। यह एक बीमा कंपनी थी और इसकी विभिन्न शाखाएँ अन्य राज्यों की तरह छत्तीसगढ़में भी फैली हुई थीं। रजिंदर मित्तल के कार्यभार ग्रहण करने के कुछ समय बाद ही उसी एन.आई.सी.एल. में विकास अधिकारी राकेश साहू भी नया नया नियुक्त होकर आया। नए नए आए रजिंदर मित्तल से सभी खूब डरा करते थे। वे एक तेज-तर्रार उच्च अधिकारी थे। महाप्रबंधक। पूरे सूबे में जी.एम.सर, जी.एम. सर के नाम से उन्हें हाथों-हाथ लिया जाने लगा। उनकी प्रशंसा में जितने गीत गाए जाते, वे उतना ही प्रसन्न हो जाया करते। मगर बाहरी रौब-दाब वाले अफसर के पीछे एक चालाक और मतलबपरस्त व्यक्ति भी था। आते ही पूरे राज्य को उन्होंने अपने नियंत्रण में लेने की कोशिश की। एक तरफ ऑफिस के लिए वे व्यवसाय ला रहे थे तो दूसरी तरफ अपने लिए कुछ निजी फायदों के जुगाड़ भी लगाने लगे थे। उन्हें अपने लिए हरेक सुविधाएँ मुफ्त में ही चाहिए होती थीं। वह चाहे फिर दफ्तर में दोपहर का भोजन हो या फिर शहर में अपनी श्रीमती के लिए शॉपिंग आदि की व्यवस्था करना, अपने जन्मदिन पर शानदार दावत देनी हो या फिर परिवार सहित कहीं सैर पर जाना हो, वे हर चीज के लिए या तो कार्यालय के संसाधनों का दोहन करते या फिर या फिर टीसीएस के ऊपर निर्भर होते। टीसीएस दिन-रात उनकी सेवा में लगे रहते । वे जानते थे कि रजिंदर पर बीस-पच्चीस हजार रूपए खर्च कर वे बड़े आराम से अपने चार-पाँच लाख का काम निकलवा सकते हैं। व्यावसायिक बुद्धि में टीसीएस का कोई सानी न था। एन.आई.सी.एल. के कुछ ऐसे शीर्ष प्रबंधन के लोगों को पटाकर ही वे आज इस मुकाम तक पहुँचे थे। उसे करीब से जाननेवाले पवन गुप्ता एक दिन राकेश साहू को बताने लगे, ''अरे साहू जी, यह जो टीसीएस है न, यह विकट चालू चीज है। ऊपर के कुछ अफसरों की चापलूसी करता है और हम सबके नाक में नकेल कसे रहता है, यार। भोपाल से आने वाले सभी जी.एम. को कभी बस्तर तो कभी अमरकंटक तो कभी रतनपुर घुमा लाता है। उनसे कोई पैसा नहीं लेता। और उसके बदले में, उनकी मार्फत हमारे यहाँ नए-नए वर्क ऑर्डर लेता रहता है।''

राकेश भला क्या बोलता, वह चुपचाप पवन गुप्ता की बातें सुनता रहा। बस इतना ही कहा, ''क्या कहें गुप्ता जी। हम लोग पॉलीटिशियन को दोष देते फिरते हैं और हमें खुद जहाँ मौका मिलता है, हम ऐसे टीसीएस पाल लेते हैं। आपको बताऊँ, जब मैं जबलपुर से यहाँ रायपुर आया था तो ये महाशय मेरे पीछे भी पड़ गए। मेरे घर के सामानों को जमाने के लिए कहने लगे। यार गुप्ता जी, मुझे बड़ा अजीब लगा। मान न मान, मैं तेरा मेहमान।''

पवन गुप्ता ने धीरे से राकेश के कानों में कहा, ''अरे यार साहू, तुम बच गए। नहीं तो तुम्हें ऑबलाइज करके तुम्हारा भी किसी न किसी रूप में वह फायदा लेता। और कुछ नहीं तो अपने कुछ पुराने एसी के पार्ट्स को इधर-उधर करके तुम्हारे घर में नया एसी कहकर लगवा देता। तुमसे रेट भी कुछ कम ले लेता और ऑफिस में उसी बहाने तुमसे जाने कैसे -कैसे काम करवा लेता!''

राकेश कुछ देर चुप रहा और फिर कहा, ''चलिए, जो होता है, अच्छा ही होता है, बॉस। मैं उसके चंगुल से बच गया। वैसे भी मुझे यह चीज कुछ समझ में नहीं आती है कि हम अपने पारिवारिक कार्यों में किसी कांट्रैक्टर को क्यों इंगेज कर लेते हैं। अपने काम में हम खुद सक्षम हैं, बॉस। हर तरह के ट्रांसफर और अलग-अलग जगहों पर रहने का हमारा अनुभव कोई कम है क्या! फिर हर जगह थाने की तरह हमारी शाखाएँ और कार्यालय हैं जिनके बंदों से हम सही राय ले सकते हैं। यार गुप्ता जी, मैं तो बमुश्किल दो सप्ताहों के अंदर किसी भी नए शहर में पूरी तरह ढल जाता हूँ। नया घर ढूँढने से लेकर गृहस्थी जमाने की सारी जगहों, दुकानों, बाजारों, लोग-बाग तक हर चीज का मुझे भलीभाँति आइडिया हो जाता है।''

ऑफिस की दूधिया रोशनी में पवन गुप्ता का गौर-वर्ण चेहरा दमक रहा था। उनके चेहरे पर हरदम मुस्कान खिली रहती थी और ललाट पर लगा लाल टीका उनके व्यक्तित्व को कुछ अधिक खास बना दिया करता था। जब वे हँसते थे तो उनके ललाट पर कई रेखाएँ बनती थीं। और फिर उस टीके की लंबाई कुछ कम और चौड़ाई कुछ अधिक हो जाया करती थी। सुनहरी फ्रेम वाले अपने चश्मे के शीशे से झाँकते हुए उन्होंने राकेश को देखा और कुछ गंभीर होते हुए बोले, ''यह ठीक है राकेश कि तुम इतना कुछ कर लेते हो। मगर ज्यादातर लोग तो यहाँ इस टीसीएस के भरोसे ही रहते हैं यार। अभी जगदलपुर में जहाँ अपना डिस्ट्रिक्ट लेवल का ऑफिस है, प्रमोशन लेकर और उसके हेड बनकर मनोज मिश्र यहीं से वहाँ गए। यहाँ भी उनका टीसीएस से पटता ही था। यह पट्ठा उनके जाने से पहले ही जगदलपुर में उनके लिए घर खोजकर रेडी था। सामान पहुँचने और जमने में कोई चार-पाँच दिन लग गए। तब तक टीसीएस की ओर से फ्री में दोनों टाइम पूरे परिवार के लिए खाना आदि की व्यवस्था थी। और जब सामान आया तो एसी, पलंग, आर.ओ. आदि का इंस्टॉलेशन भी फ्री में इसके लेबर द्वारा ही किया गया। और हाँ, बदले में वहाँ बंद पड़ी कैंटीन का टेंडर महीने भर के भीतर टीसीएस के फर्म को मिल गया। यह बहुत ऊँची चीज है यार। इससे पार पाना बहुत मुश्किल है। यह विकट खिलाड़ी है।''

राकेश चुपचाप पवन गुप्ता के धाराप्रवाह वक्तव्य को अपनी आँखें फाड़े सुनता रहा। पवन गुप्ता ने अपना पूरा केरिअर छत्तीसगढ़में रायपुर के आसपास के इलाकों में गुजारा था। अतः उन्हें यहाँ के चप्पे-चप्पे की जानकारी थी। रायपुर से लगे दुर्ग, राजनाँदगाँव, कांकेर, जगदलपुर, बिलासपुर, कोरबा, रायगढ़, अंबिकापुर आदि बड़े जिला-मुख्यालयों पर उद्घाटित और विकसित होते कई कार्यालयों और शाखाओं में से कुछ के साथ उनके सीधे संबंध रहे और कुछेक में तो उस अवधि में वे वहीं नियुक्त रहे। राकेश उनकी बातों को बड़े डूबकर सुनता। इनके पीछे बहती अनुभव की नदी की धारा में तरोताजा होकर बाहर निकलना उसे बड़ा अच्छा लगता। जब भी मौका मिलता, वह उनसे पुराने दिनों की कुछ बातें जरूर सुनता। उसे इससे इस ऑफिस को, यहाँ के लोगों को और कई जरूरी प्रसंगों को समझने में सहायता मिलती। पवन गुप्ता ने अपने चश्मे के शीशे के ऊपर से सीधे राकेश की आँखों में झाँकते हुए आगे कहना शुरू किया, ''आप तो अभी अभी आए हो राकेश जी, मगर हम लोग तो इसे शुरू से जान रहे हैं। रायपुर में टीसीएस सचमुच पहुँची हुई चीज है। एक समय तो यह हो गया था कि लोग अपनी यूनियन और ऐसोशिएशन से न कह कर ट्रांसफर जैसे कामों के लिए इससे संपर्क करने लग गए थे। अरे भइया, यह विकट तोप चीज है।''

राकेश, 'विकट' शब्द पर ध्यान देकर थोड़ा हँस पड़ा। उसने गौर किया कि पवन गुप्ता को अपने इस तकिया-कलाम से कुछ ज्यादा ही प्यार है। पवन गुप्ता रायपुर के पुराने वाशिंदे थे और काफी समय से इस इलाके में ही नौकरी करते रहे, सो वे टीसीएस के कई कारनामों के अंतरंग किस्सों से अवगत थे। वे भी टीसीएस के बारे में हर किसी से तो बात नहीं करते थे मगर राकेश के साथ-साथ बैठने और उससे कुछ घनिष्ठता हो जाने के कारण वे कभी-कभी रौ में आकर टीसीएस की कोई चर्चा उससे कर दिया करते। उस दिन भी पवन गुप्ता अपनी पूरी धुन में थे और शायद टीसीएस को रूई की तरह धुन कर रख देना चाहते थे।

----------''----------

वित्त-वर्ष का अंत होनेवाला था। कार्यालय में स्टॉफ वेलफेयर के नाम पर लगभग अस्सी हजार रूपए बचे हुए थे, जिन्हें किसी कार्यक्रम पर खर्च करना था। एक दिन रजिंदर मित्तल ने राकेश साहू को अपने केबिन में बुलाया। शुरू में उन्होंने राकेश के कार्यों की प्रशंसा की और बाद में असली मुद्दे पर आए, ''राकेश, अपने पास बच-बचाकर वेलफेयर के लिए अस्सी हजार रूपए बचे हुए हैं। इसे हम साठ लोगों पर खर्च करना है। देखो, कोई ढंग का एक कल्चरल प्रोग्राम बनाओ। और हाँ, मैंने टीसीएस को भी बोल दिया है। वह तुम्हारी सहायता करेगा। बाकी बातें आप महतो जी से समझ लो।''

''जी सर'', राकेश इतना बोलकर रह गया। बगल में ही एच.आर. के सेक्शन हेड हरिकिशन महतो भी बैठे हुए थे। हरिकिशन सेवानिवृत्ति के कगार पर थे और कई घाटों के पानी पीए हुए थे। राकेश ने उनकी ओर देखा मगर वे चुप और प्रतिक्रियाविहीन रहे।

राकेश ने उसी दिन सब कुछ पता करके अपना होमवर्क पूरा कर लिया। मगर वह जानबूझकर अपनी ओर से आगे बढ़कर हरिकिशन के पास नहीं गया। अगले दिन रजिंदर मित्तल ने पहले हरिकिशन को बुलाकर इस संबंध में हुई प्रगति के बारे में पूछा। मगर हरिकिशन की ओर से को उन्हें कोई अपडेट नहीं मिला। फिर उन्होंने राकेश को बुलाया और उससे पूछा। उसने अपनी पूरी तैयारी बता दी। हरिकिशन को यह अंदाज नहीं था कि कल का आया छोकरा इतनी जल्दी इतना कुछ करके बैठ जाएगा। मगर उन्होंने उल्टे रजिंदर मित्तल से राकेश की शिकायत लगा दी, ''मुझसे इन्होंने कुछ भी नहीं पूछा, सर। जो कुछ किया, अपनी मर्जी से ही किया।''

रजिंदर भी हरिकिशन के ढीलेपन से परिचित थे मगर राकेश पर नकली गुस्सा दिखाते हुए कहा,''आप दोनों मिलकर सब कुछ तय कीजिए। और हाँ, याद रहे, टीम स्पिरीट से।''

यह कहकर रजिंदर ने अपनी सिगरेट सुलगा ली और अपने केबिन से संलग्न टॉयलेट में चले गए। दरवाजा दोनों की चेतना और अहं पर जाकर ठक्क से लगा और बंद हो गया।

हरिकिशन, राकेश से एक पद वरिष्ठ थे और उन्होंने केबिन से बाहर निकलकर राकेश के आगे एक सीनियर की भूमिका में आते हुए कहा, ''राकेश, आओ, मेरी केबिन में। आगे का प्रोग्राम बनाते हैं।''

राकेश सोचने लगा। अच्छे फँसे। आज लगता है जैसे केबिन-केबिन का म्यूजिकल चेयर खेल रहा हूँ। कभी बिग बॉस के केबिन में जा रहा हूँ तो कभी एच.आर. हेड की केबिन में। लगता है कि आज का दिन इसी दौड़-धूप में बीत जाएगा। और फिर चाहे कितनी ही देर हो, अपनी सीट का काम तो खैर पूरा करना ही है। मरता क्या न करता, वह हरिकिशन के केबिन में गया। इस बीच फोन करके हरिकिशन ने टीसीएस को भी बुला लिया। टीसीएस का घर, एन.आई.सी.एल. के बगल में ही था। एच.आर. और कार्यालय प्रशासन को अपनी हथेली पर लेकर चलना टीसीएस को अच्छी तरह आता था। उन्हें मालूम था कि जी.एम. का केबिन, अगर एन.आई.सी.एल. में घुसने का दरवाजा है तो एच.आर. और कार्यालय प्रशासन दो ऐसी खिड़कियाँ हैं, जिनसे वे अपने बिलों के बड़े-बड़े गुब्बारों को आसानी से बाहर निकाल सकते हैं।

हरिकिशन ने तीन कप कॉफी का आर्डर दिया। कभी किसी पर एक पैसा खर्च न करनेवाला हरिकिशन, टीसीएस के आने पर उसे कॉफी जरूर पिलाता। टीसीएस के साथ बैठे होने के कारण कॉफी का एक प्याला बाइ-डिफॉल्ट उसे भी प्राप्त हुआ। सांस्कृतिक संध्या को लेकर बातचीत शुरू हुई। हरिकिशन ने कुछ नहीं किया। सीधे-सीधे अपनी जरूरतें टीसीएस को बतला दीं और उन्हें अपने बजट को लेकर भी आगाह कर दिया। आदतन, टीसीएस ने हाँ कह दिया। मगर राकेश को यह सब कुछ ठीक नहीं लग रहा था, अस्सी हजार रूपए बिना किसी डिटैलिंग के एक झटके में किसी को दे देना उसे जँच नहीं रहा था। वह हरिकिशन के शुष्क स्वभाव से परिचित था। उसने सीधे टीसीएस से पूछा, ''राव साहब, जरा स्टेप-बाई -स्टेप बतलाएँ, हम लोग किस-किस तरह से क्या-क्या इंतजाम करेंगे। क्यों न कुछ इस तरह व्यवस्था करें कि यह कार्यक्रम इस बार कुछ खास बन जाए!'' राकेश ने प्रोफेशनल अंदाज में अपनी बात रखी।

टीसीएस अंदर से बहुत अधिक विवरण में जाना नहीं चाह रहे थे, मगर राकेश की आँखों में दृढ़ता की चमक और कसावट देख वे कुछ सकते में आए। अनुभवी आँखें जान गई थीं कि यहाँ सिर्फ धुप्पलबाजी नहीं चलेगी। फिर भी आदत से मजबूर उन्होंने राकेश को कुछ तौलते हुए और धीमे से मुस्कुराते हुए कहा, ''आप बताइए, जैसा आप कहेंगे, वैसा कर देंगे।''

राकेश जान गया था कि वह कभी टीसीएस की तरह घाघ नहीं बन सकता है। उसने सहज भाव से कहा,''देखिए, अभी हमारी योजना है कि हम इस कैंपस में नीचे कार्यक्रम करेंगे। वहीं जहाँ रेडियो सिटी वालों ने अभी हाल ही में कार्यक्रम किया था। आप समझ रहे हैं न?''

सहज भाव से अपने दाएँ हाथ को उस तरफ करते हुए राकेश ने इशारा किया। टीसीएस को राकेश की तत्परता से कुछ लेना-देना न था। वह उसे स्थिर पलकों से देखता रहा। फिर उनकी निगाहें हरिकिशन की ओर गईं। आँखों ही आँखों में इशारा हुआ। सेकंड्स में टीसीएस ने अपने चेहरे पर भोलेपन का मुखौटा लगाते हुए जवाब दिया, ''हरिकिशन सर तो यहीं अपने मेन गेट के पास खाली पड़ी जगह पर कार्यक्रम करने के लिए कह रहे थे। अपने पास इसी फ्लोर पर कैंटीन भी है। लोगों को खाना सर्व करने में भी सुविधा हो जाएगी।''

किसी तरह की अंदरूनी राजनीति से अनजान मगर अपने होमवर्क में पक्के राकेश ने तत्काल पुरजोर ढंग से टीसीएस की बात काटी, ''अरे नहीं राव साहब, वहाँ कार्यक्रम नहीं हो सकता। आवाज इको करती है। कोई एक कार्यक्रम पहले हुआ था। चारों तरफ से ढँका हुआ है। वहाँ खूब गर्मी हो जाती है। कौन क्या बोल रहा है, कुछ पता ही नहीं चलता। और फिर वहाँ पर कार्यक्रम का कोई ग्रेस भी नहीं रह जाएगा।''

एक साँस में राकेश ने अपनी बात कह दी। टीसीएस ने हरिकिशन की ओर और हरिकिशन ने टीसीएस की ओर देखा। राकेश हरिकिशन की ओर मुखातिब होकर कहा, ''क्यों सर, आप क्या कहते हैं?''

हरिकिशन थोड़ा झल्लाते हुए बोले, ''अरे भा , आप सब कुछ जब खुद ही तय किए जा रहे हैं, तो मुझसे क्यों पूछते हैं?''

''मैंने तो सोनाक्षी मैडम से बात की थी। उन्होंने एक बार यहाँ ग्राहकों का सम्मेलन कराया था। उनका अनुभव ठीक नहीं रहा।''

ऑफिस टेबल पर पड़े पिन-स्टैंड से एक पिन निकालकर अपने दो दाँतों के बीच इधर उधर फँसे खाने के अवशेष को निश्शंक भाव से हटाते हुए और उसे बेझिझक अपने बाएँ हाथ की बीच वाली उँगली पर रखकर अपने अँगूठे से पीसते हुए हरिकिशन कुछ चिढ़कर बोले, ''अरे राकेश जी, आपको कोई अनुभव तो है नहीं। चले हैं प्रोग्राम कराने। हुँह!''

किसी खिसीयाने बिल्ले सा चेहरा बनाए राकेश चुप रहा। टीसीएस को मन ही मन खूब मजा आ रहा था। वे मन ही मन इस आपसी खींचतान का खूब आनंद

लेते रहे। हरिकिशन की बात अभी पूरी नहीं हुई थी। अपने स्टाइल में कुछ झूमते हुए उन्होंने कहा, ''डियर राकेश, क्या आपको यह बताने की जरूरत पड़ेगी कि कस्टमर और स्टॉफ के प्रोग्राम में अंतर होता है। दोनों अलग-अलग चीजें हैं। फिर ऐसी बेकार की तुलना आप क्यों करते हैं?''

राकेश अबतक हरिकिशन का लिहाज कर रहा था, मगर उसे लगा कि अब चुप रहना, जान-बूझकर अपनी तौहीन कराना है। वैसे भी, राकेश, हरिकिशन से एक पोस्ट ही नीचे था। कुछ तुनकता हुआ बोला, ''सर, मैं जानता हूँ, ग्राहक और स्टॉफ के कार्यक्रम में अंतर होता है। मैंने खुद जबलपुर जैसे बड़े और पुराने शहर के कई संभ्रांत कस्टमर्स के बीच कई बड़े-बड़े कार्यक्रम किए हैं। आपको शायद पता नहीं हो, इस लिए अर्ज कर रहा हूँ।''

अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को और बड़ा करते हुए और उच्चरित एक-एक शब्द को अपने दाँतों से पीसते हुए राकेश ने अपनी बात जारी रखी, ''और सुनिए हरिकिशन महतो सर, कार्यक्रम चाहे ग्राहकों के लिए हो या स्टॉफ मेम्बर्स के लिए, दोनों के कंफर्ट का ध्यान रखा जाना जरूरी है। आखिरकार जो बोल रहा है और जो सुन रहा है, दोनों के बीच को तारतम्य ही नहीं हो, तो ऐसे प्रोग्राम का क्या मतलब! क्राउड क्राउड होता है। आप तो ऐसी बात कर रहे हैं कि हमारे अपने स्टॉफ सदस्य कीड़े--मकोड़े हैं, जिन्हें कहीं भी बैठने और कुछ भी खाने-पीने का हुक्म दिया जा सकता है। सर, जरा सोचिए, सभी के परिवार के सदस्य आएँगे। पसीना चुहचुहाते वे लोग हमारी इस ग्लोरियस संस्था के लिए क्या सोचेंगे! हमारी ब्रांडिंग और इमेज का क्या होगा। क्या पसीना पोंछते लोग हमारी रही-सही इज्जत को भी पोंछ नहीं डालेंगे!''

टीसीएस और हरिकिशन दोनों को यह अंदाजा नहीं था कि राकेश इस सशक्त ढंग से अपना विरोध दर्ज करेगा। कुछ देर के लिए हरिकिशन हक्का-बक्का रह गए। जिस हरिकिशन के माध्यम से टीसीएस उछल-कूद कर रहे थे, उन्हीं की पतलून अपने एक जूनियर के आगे ढीली होते देख टीसीएस को तत्काल वहाँ से खिसक जाने में ही अपनी भला दिखी। जाते-जाते अपने सफेद कुर्ते की बाँह को मोड़ते हुए हरिकिशन और राकेश दोनों की ओर देखते हुए टीसीएस ने कहा, ''ठीक है, आप दोनों फैसला ले लीजिए। मुझे बता दीजिएगा।''

''नहीं, आप कुछ देर रूकिए, मैं जी.एम. सर से पूछ कर आता हूँ। मुझे समझ में नहीं आता कि हमलोग ऐनुअल प्रोग्राम के आयोजन को भी एक रूटीन ऑफिस वर्क की तरह सिर्फ निपटाने की मुद्रा में क्यों लिए रहते हैं! इससे तो अच्छा है कि ऐसा कोई कल्चरल प्रोग्राम हो ही नहीं।'' भनभनाता और तुनकता हुआ राकेश कुर्सी से उठा और रजिंदर मित्तल के केबिन की ओर बढ़चला।

इधर टीसीएस और हरिकिशन दोनों कानाफूसी में लग गए। पता नहीं क्या होगा! यह अंधा और जोशीला तूफान जाने क्या कर डाले! टीसीएस तो एक ठेकेदार था। उसे इस ऑफिस की ब्यूरोक्रेसी से कोई लेना-देना नहीं था। उसे तो बस इस लालफीताशाही का इस्तेमाल अपने फायदे में जारी रखने से मतलब था। उन्होने कई सारे निजी कार्य रजिंदर के लिए आगे बढ़कर किए थे। हर तरह के फरमाइशी कार्यक्रम उन्हें उपलब्ध कराए थे। अतः टीसीएस कहीं न कहीं महाप्रबंधक की ओर से निश्चिंत थे। मगर वे इतना जानते थे कि इन दोनों के झगड़े की आँच उनतक भी जरूर पहुँचेगी। साथ ही उन्हें यह भी मालूम था कि बड़े अधिकारी कांट्रैक्टर के होते हैं और न ही अपने स्टॉफ सदस्यों के। वे सिर्फ अपने बारे में सोचते हैं। उन्हें हरेक से मेल-मिलाप करना आता है और हरेक के बीच अपरिचय या राज की दीवार खड़ी करनी भी बखूबी आती है। इन्हें तो अपने ऑफिस के व्यवसाय से भी ऑफिशयली कमीशन मिलता है। अनऑफिशीयली सेवा-पानी देने के लिए तो हमारे जैसे कॉंट्रैक्टर तो खैर हैं ही। गहरे साँवले रंग के मालिक टीसीएस अपने झक्क सफेद कपड़ों में कुर्सी पर बैठे यही सब सोचते और तरह तरह के खयालों में डूबते-उतराते रहे । तभी उधर से कुछ तेजी में राकेश आया और मुस्कुराता हुआ पहले हरिकिशन और बाद में टीसीएस की ओर मुखातिब होता हुआ बोला, ''सर से मेरी बात हो गई है। कार्यक्रम नीचे ही होगा।''

हरिकिशन का चेहरा उतर गया और इधर विजेता भाव से राकेश ने प्लास्टिक के फोल्डर से एक कागज निकाला और हरिकिशन को दिखाता हुआ बोला, ''इसमें मैंने मिनट-टू-मिनट प्रोग्राम बना दिया है। कब क्या होगा, यहाँ हर आइटम दे रखा है। मंच की सजावट कैसी होगी, कौन कौन सी खेल-प्रतियोगिताएँ होंगी, किस किस श्रेणी में कैसे-कैसे पुरस्कार होंगे, गायन और नृत्य कार्यक्रम का क्या सिक्वेंस होगा, फीलर में किस प्रकार के आइटम होंगे आदि-आदि...इन सब की एक चेक-लिस्ट तैयार कर दी है। अभी सभी स्टॉफ सदस्यों के लिए मैं मेसेंजर को भेजकर नोटिस भी घूमवा देता हूँ। रही बात स्नैक्स / डीनर की तो यह आप दोनों तय कर लीजिए। सर ने यही कहा है।''

हरिकिशन की साँस में साँस आई। वे एक नवयुवक अधिकारी के आगे अपनी महत्ता पूरी तरह गँवाने से बच गए थे। कम से कम खाने के मेनू का अधिकार उनके पास था। उनके चेहरे पर तसल्ली के भाव स्पष्ट दिख रहे थे।

इस बीच राकेश के मोबाइल पर एक फोन आ गया। उसपर वह जरा व्यस्त हो गया। इधर टीसीएस उठकर जानेवाले थे, मगर इशारे ही इशारे में राकेश ने उन्हें कुछ देर बैठने के लिए कहा। वे कसमसा कर रह गए मगर मरता क्या न करता, चुपचाप बैठे रहे। अबतक बाहर हॉल में हरिकिशन को ही भाव देनेवाले टीसीएस को लगा कि सत्ता की चाटुकारिता के लिए कुछ नए चरण-पादुका भी शायद आ जमे हैं। यद्यपि राकेश साहू के समक्ष अपनी जिम्मेदारी ठीक से पूरा करने के लक्ष्य के अलावा और कुछ न था मगर टीसीएस की निगाह में वह भी एक सत्ता-केंद्र के रूप में उभरता हुआ दिख रहा था। फोन को बीच में ही काटकर राकेश ने टीसीएस की ओर रूख किया और अपने हाथ में पड़े एक कागज को दिखाते हुए कहना शुरू किया, ''सुनिए राव साहब, अभी सर से बात हुई है। ये पेपर देखिए। इसमें कुछ प्रोपर्टी हैं। ये आपको वहाँ निश्चय ही रखने हैं।''

''प्रोपर्टी?'' टीसीएस ने कुछ चौंकते हुए पूछा।

''ओह, क्या आपने कभी नाटक नहीं देखा है? वहाँ मंच पर जो कुछ भी सामान रखे जाते हैं, उन्हें प्रोपर्टी कहते हैं। समझे?'' इधर से राकेश ने समझाने की गरज से कुछ झल्लाते हुए कहा।

राकेश ने गौर किया, टीसीएस के अतिरिक्त इस बार हरिकिशन ने भी अपनी गर्दन हिलायी।

''मगर यहाँ तो कई सारे सामान हैं। इतने कम पैसे में यह सब कुछ कैसे होगा?'' कागज पर बारीकी से ध्यान देते हुए टीसीएस ने अगला सवाल दागा।

''देखिए, सामान तो ये सभी रहेंगे। अगर आप नहीं करेंगे तो हमें किसी और से यह काम करवाना पड़ेगा। और हाँ, अस्सी हजार रूपए इतने भी कम नहीं होते।''

इतना सुनते ही टीसीएस अपना आपा खो बैठे। अबतक किसी तरह शांत से दिख रहे टीसीएस का मुखौटा उनके मुँह से उतर चुका था या यह कि औपचारिक और विनम्र वेश-भूषा का उनका ऊपरी रंग एकदम से उतर बैठा । या फिर कुछ देर के लिए उनके अंदर का अरबपति जाग गया और जिस चमचागिरी से वे आज अरबपति बने हुए थे, कुछ देर के लिए उनका वह अपना चोला उन्हें असह्य लगने लगा। वे कुर्सी से उठते हुए बोले, ''ठीक है, साहू जी, आप यह काम किसी और से करा लीजिए। मुझे भी अपने घर से पैसा लगाकर इस कंपनी के लिए कुछ करने का शौक नहीं है। मैं किसी प्रोफिट में चल रही कंपनी के कल्चरल प्रोग्राम को आयोजित करने के लिए अपना घर क्यों फूँकूँ? खुद क्यों लॉस सहूँ!''

राकेश भी कुछ तैश में आ गया, ''राव साहब, यह कंपनी आपके लिए कितना कुछ करती है, जरा यह सोचिए। माना कि यह छोटा कल्चरल प्रोग्राम है, मगर जब हम बड़े काम आपको देते हैं, तो छोटा काम किसको देने जाएँगे?''

राकेश की बात टीसीएस को चुभी। वे बौखला गए, ''देखिए हुजूर, मैं साइकिल के टायरों की पंक्चर बनाते हुए यहाँ तक पहुँचा हूँ। अपनी मेहनत के

बल पर। जितना काम करता हूँ, उसके ऐवज में मेहनताना लाता हूँ।'' उनकी आवाज में गुस्से और झेंप का मिश्रित टोन था।

''तो क्या हमारी एन.आई.सी.एल. की मेहरबानी के भरोसे आपका यह साम्राज्य नहीं चल रहा!'' राकेश को भी ध्यान नहीं रहा मगर अचानक उसके मुख से यह पंक्ति निकल पड़ी। वह भी अपने स्वभाव के विपरीत जरा आक्रामक हो उठा था। राकेश को अंदाज नहीं रहा जबकि यह एक तरह से उसकी ओर से ब्रहास्त्र था, जिसका प्रयोग अबतक इस विष-बुझे ढंग से टीसीएस पर किसी ने नहीं किया था। खासकर किसी मध्यम श्रेणी के अधिकारी को उन्होंने यह स्पेस तो बिल्कुल ही नहीं दिया था।

टीसीएस कुछ धरती पर आए मगर प्रकटतः वे हार नहीं मान सकते थे। कल होकर कोई और मंझोला अफसर भी उनपर यूँ रौब गालिब कर सकता था। सो हर तरह के साम-दाम-डंड भेद में माहिर टीसीएस आखिरकार पूछ ही बैठे, ''चलिए, आपने जब इतना बोल ही दिया है तो आज बता ही दीजिए राकेश जी कि यह एन.आई.सी.एल. आखिरकार कैसे मेरा और मेरे बच्चों का पेट पालती है?''

राकेश को लगा कि वह टीसीएस को बता दे कि कैसे एक-एक करके उन्होंने एन.आई.सी.एल. के कई काम अपने जिम्मे करा लिए। पहले साफ-सफाई का टेंडर, फिर ऑफिस की चार-चार गाड़ियों का टेंडर, फिर पूरे राज्य में फैले डेढ़सौ से अधिक छोटे-बड़े कार्यालयों में जेनरेटर, ऐसी और कई जगहों पर फर्नीचर लगाने का टेंडर, जब-तब होनेवाली मीटिंग-मील के आयोजन का काम और इधर इन दिनों सभी के सिस्टम और उसकी वायरिंग का काम और ऐसे ही छोटे-बड़े कई दर्जनों काम। आखिर यह कैसे होता है कि ये सभी टेंडर उनके ही फर्म के नाम निकलते हैं! एक छोटे से फर्म से अपना काम शुरू करनेवाला टीसीएस इन पंद्रह-अठारह सालों में अंततः कैसे पाँच-छह फर्मों का मालिक बन गया!राकेश के मन में यह सबकुछ चल रहा था मगर वह चुप रहा। बस टीसीएस के सवाल पर अपने कुछ सख्त दिखते चेहरे पर टँकी बड़ी-बड़ी आँखों से उनकी ओर अविचल देखता रहा। हरिकिशन को बात के बतंगड़ होने का अबतक आभास हो चुका था। तत्काल मामले को सँभालना उन्हें आवश्यक लगा।किसी अर्जेंट फाइल को डील करने जैसा। अचानक से हरिकिशन के केबिन का तापमान किसी तपते रेगिस्तान के तापमान की भाँति उबलने लगा था। उन्होंने अपने फॉल्स सीलिंग की ओर देखा। ऊपर से लटक रहे ए.सी. की बत्ती हरी थी। फिर ए.सी. के रिमोट की ओर देखा। वहाँ 23 डिग्री का तापमान डिस्प्ले हो रहा था। मामले की नजाकत को सँभालने की गरज से हरिकिशन बोले, ''टेंपरेचर कुछ और कम कर देता हूँ। कूलिंग कम हो रही है। ए.सी. की सर्विसिंग भी ड्यू हो गई है। ऑफिस के काम से ही फुर्सत नहीं मिलती। इन चीजों की ओर किसका ध्यान जाए!''

टीसीएस और राकेश दोनों की ही ओर से दमघोंटू चुप्पी का माहौल था। टीसीएस के लिए वहाँ और रूकना संभव नहीं था। गंभीरता ओढ़े हुए वे बोले, ''मैं यह कागज रख लेता हूँ। और जरा जीएम सर से मैं भी मिल लेता हूँ। फिर आगे देखते हैं, क्या होता है!'' टीसीएस की आवाज में एक अप्रत्यक्ष धमकी थी, जिसकी गर्माहट की आँच राकेश तक पहुँची। मगर उसने स्वयं को इससे अप्रभावित ही रखा। प्रकटतः बोला, ''ठीक है, मैं जरा इसका एक स्नैप ले लूँ, ताकि मुझे भी इसके अनुरूप तैयारी करवाने में सुविधा हो।'' और तब राकेश ने उस कागज का एक फोटो अपने मोबाइल के कैमरे से उतार लिया। टीसीएस उस कागज को अपने हाथ में झुलाते हुए रजिंदर मित्तल के केबिन की ओर कुछ बेपरवाह से ढंग में बढ़गए। हरिकिशन ने डेस्कटॉप पर अपनी नजरें गड़ा लीं। राकेश अपनी सीट पर जाकर अपने रूटीन वर्क को पूरा करने में लग गया।

.....

इस कार्यालय में अधिकांश स्टॉफ राकेश से उम्र में बड़े थे। वे लोग भी जो उससे पद में कमतर थे। राकेश का मिलनसार और व्यावहारिक स्वभाव जानता था कि किसने किस कारण से पदोन्नति नहीं ली है और कौन एक या दो पदोन्नति लेकर अब आगे नहीं लेना चाहता है। राकेश का मानना था कि पोस्ट वगैरह अपनी जगह है और आदमी का मिजाज और उसकी विशेषता अपनी जगह। वह पद के महत्व को समझता था और अपने से वरिष्ठ अधिकारी का सम्मान भी करता था, मगर वह अपने से कनिष्ठ पदधारकों के साथ भी उतना ही मिलनसार था। इसलिए ऑफिस के सभी लोग उसे पसंद करते थे। मगर कुछ लोग उसकी लोकप्रियता से जलते भी थे। कुछ लोगों को उसकी साफगोई भी पसंद नहीं आती थी। खैर, राकेश धीरे-धीरे इन मिलीजुली स्थितियों और प्रतिक्रियाओं का अभ्यस्त हो चुका था और उसे इन सबसे निबटना कमोबेश अब आने लगा था। राकेश भी क्रमशः इन सबसे अप्रभावित रहने की कोशिश करता, मगर इसमें सफल होना कहीं से आसान नहीं था। खासकर, राकेश जैसे एक संवेदनशील व्यक्तित्व के लिए, जिसके पास अभी भी कई मूल्य और भावनाएँ शेष थीं। वह चमकते टाइल्स पर चलते हुए और शीशे के पार्टीशन वाले छोटे-छोटे क्यूबिकल में काम करते हुए भी एकदम से चिकना नहीं हो गया था। उसके भीतर से खुरदुरापन अभी गया नहीं था। धूप-छाँव, सर्दी-गर्मी का अनुभव उसे होता था और अपने साथियों के सुख-दुःख से वह खुश तो कभी दुखी हुआ करता था।

ऑफिस में राकेश ने इस कार्यक्रम में भागीदारी के लिए लोगों से नाम माँगने का काम शुरू किया। रायपुर एक ऐसा शहर है, जहाँ एक साथ कई प्रांतों के लोग रहते हैं और वहाँ मिश्रित संस्कृति देखने को मिलती है। एन.आई.सी.एल. के इस प्रशासनिक कार्यालय में भी एक साथ छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, बिहार, झारखंड, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, उत्तर-प्रदेश, आंध्र प्रदेश आदि राज्यों के लोग यहाँ काम कर रहे थे। राकेश ने अपने मिलनसार स्वभाव की बदौलत सभी के बीच अपनी एक खास पहचान बना ली थी। कुछ तो इसके पीछे उसकी अपनी गर्मजोशी थी और कुछ किसी कार्य या कार्यक्रम को जी-जान से लगकर पूरा कर देने की उसकी जिद। एक दिन किसी काम से राकेश कुछ देर तक जीएम. रजिंदर मित्तल के पीए बिकास चटर्जी से बात करता रहा। कुछ देर कार्यालय से संबंधित बातें होती रहीं। तभी बिकास ने अचानक से राकेश की प्रशंसा करनी शुरू कर दी। राकेश जरा झेंपने लगा। मगर बिकास चटर्जी, अपनी बारीक मूँछ में हँसते हुए अपनी बात कहते रहे। हर बात को बड़ी गंभीरता और कोमलता से और बांग्ला प्रभाव के साथ कहनेवाले बिकास चटर्जी बोल ही रहे कि तभी वहाँ पर लेखा अनुरक्षण अनुभाग के चरणजीत यादव आ गए। चरणजीत भी कुछ हँसते हुए बिकास की बात सुनने लगे। बिकास चटर्जी ने चरणजीत साहू को भी इस संवाद में जोड़ते हुए कहा, '' देखिए, चरणजीत जी, इस पूरे प्रशासनिक में ऐसे एक आदमी का नाम बताइए जो अपना कोई भी काम इतनी सफाई से और फोर्सफूली कर लेता हो। मैं तो सुबह से लेकर रात तक यहाँ बैठे सैकड़ों फोन अटेंड करता हूँ। अपने कितने कलीग को जीएम साहब से रोज मिलते हुए और उनमें से कइयों को डाँट खाता हुआ देखता हूँ। मगर जिस तरह राकेश जी, सर से बात कर लेते हैं और अपना कोई भी काम करा लेते हैं, वह एक बड़ी बात है।क्यों साहू जी, क्या मैं गलत कह रहा हूँ?''

राकेश हल्का सा मुस्कुराता हुआ चुप ही रहा। वह कुछ संकोच में भी आ रहा था। चरणजीत ने बिकास की बात को पूरी शिद्दत से आगे बढ़ाते हुए और पहले राकेश एवं बाद में बिकास चटर्जी की ओर देखते हुए कहा, ''आप बिल्कुल दुरूस्त कह रहे हैं दादा। सोलह आना सच। एकदम किसी खरे सोने के माफिक।''

राकेश ने अपनी प्रशंसा के लंबे होते चले जाते पुल को जरा ठहराव देने के उद्देश्य से ठिठोली करता हुए कहा, ''बिकास जी और चरणजीत जी, ज्यादा मीठा ठीक नहीं है। हमलोग सुबह से लेकर देर शाम तक यहाँ ऑफिस में बैठे रहते हैं। इतना मीठा स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं है।''

तीनों ने जोरदार ठहाके लगाए। तभी बिकास ने कैंटीन ब्वॉय को तीन कप

चाय लाने के लिए कहा। चरणजीत और राकेश बिकास की सीट के आगे रखी कुर्सियों पर बैठ गए और इधर-उधर की चर्चा के बाद सांस्कृतिक कार्यक्रम की तैयारी को लेकर बात शुरू हो गई। राकेश ने अबतक प्राप्त प्रतिभागियों के बारे में बताते हुए पूरे कार्यक्रम की रूपरेखा रखी, ''देखिए, इस ऑफिस के लगभग सभी स्टॉफ सदस्यों से मेरी बात हो गई है। अधिक से अधिक लोग सपरिवार इस कार्यक्रम में पहुँचें, इसे मैं स्वयं मॉनीटर कर रहा हूँ। वो जो नीचे दो टावर के बीच खुली जगह है, कार्यक्रम वहीं पर होगा। लिफ्ट के बगल से हम उसके भीतर जाते हैं। वहीं पर दोनों तरफ केले के दो स्तंभ खड़ा करके और उनसे पतली रस्सी को बाँधकर उस पर आम्रपत्रों को लटकाकर हम एक सुरूचिपूर्ण प्रवेशद्वार बनाएँगे। हमारे दो स्टॉफ सदस्य सुशोभिता मै'म और गगनजीत सिंह की बेटियाँ नीचे प्रवेश द्वार पर खड़ी रहेंगी और हरेक आगंतुक को गुलाब की एक-एक कली देंगी। फिर सभी अंदर जाएँगें। सभी के लिए सफेद रंग के कवर के साथ लगी गद्देदार कुर्सियाँ होंगी। सामने मंच सजा होगा, जिसके पीछे सफेद रंग के पर्दे होंगे। मंच की लंबाई-चौड़ाई हमने ठीक-ठाक रखी है, ताकि हमारे जो स्टॉफ सदस्य या उनके बच्चे कोई नृत्य प्रस्तुत करना चाहें या को लघु-नाटिका करना चाहें तो वे आराम से परफॉर्म कर सकें। मंच के एक कोने पर स्टैंडिंग रहेगा, जिसपर कुछ रखकर हमारे साथी कोई कविता, प्रहसन या कुछ और रूचिकर मैटर सुना सकेंगे। 'कराके' भी किराया पर मँगवा लिया है, ताकि हमारे गायक साथियों को गाने में सुविधा हो। पीछे टँगे सफेद पर्दे पर हमारी कंपनी का बैनर लगा होगा। पुरस्कार वितरण भी स्टेज पर ही होगा, ताकि इन छायाचित्रों में बैनर स्पष्ट रूप से आ सके। जो स्टेज बनेगा, उससे लगे दोनों किनारों पर ऊँचा से व्हाइट कलर के दो हेडमास्टलैंप होंगे। साथ में एक तरफ डिस्को-लाइट की भी पूरी व्यवस्था होगी। छोटे बच्चों के मनोरंजन के लिए हवाभरे गद्देदार उछलनेवाले कुशन भी होंगे।...''

''अरे दादा, इतना कुछ अरेंजमेंट। मान गए बॉस।'' चश्मे के पीछे की अपनी दोनों आँखों को और बड़ा करते हुए बिकास ने राकेश को बीच में ही टोका।

''अरे बंधु, बहुत हो गया। आपने तो खूब व्यवस्था की है। अच्छा यह बताइए कि खाने के मेनू में क्या-क्या है?'' इस बार हँसते हुए चरणजीत ने पूछा।

अब तक कैंटीन ब्वॉय ने लाकर चाय रख दी थी। चाय के सीप का आनंद लेते हुए राकेश ने आगे कहना जारी रखा, ''मेनू की जिम्मेदारी हरिकिशन सर के जिम्मे है। अब वे जैसा करवाएँ।''

चरणजीत को भी इस ऑफिस में कार्य करते काफी समय हो गया था। वे भी यहाँ की राजनीति से भलीभाँति परिचित थे। छूटते ही कहा, ''लो, तब तो कल्याण ही हो गया। कार्यक्रम की तैयारी आसमान पर तो खाने की व्यवस्था जमीन पर। इतना अंतर हो जाएगा दोनों में।'' कुछ उचटते हुए चरणजीत ने अपनी बात समाप्त की।

राकेश गंभीर बना रहा , ''चरणजीत जी, वे कुछ भी हों, हैं तो हमारे यहाँ एच.आर. के हेड ही न!...

राकेश की बात को बीच में ही काटते हुए बिकास ने कहना शुरू किया, ''यही तो रोना है। इस झक्की और निगेटिव आदमी को जाने किसने हमारा एच.आर. हेड बना दिया। पहले स्टॉफ के बिल जहाँ एक-से दो दिन में निकल जाते थे, वहीं अब दो-दो सप्ताह तक कुछ नहीं होता। इस आदमी ने पूरे एच.आर. सेक्शन को किसी सड़े हुए तालाब में मानो तब्दील कर दिया है। यह पूरा मैकेनिकल आदमी है। बस खानापूर्ति के लिए साहब के पास जाएगा और कुछ-कुछ डिस्कश करके वह काम टीसीएस को दे देगा। इसको क्वालिटी के लिए को 'पेन' लेना ही नहीं है और ना ही इसके लिए औरों की राय का कोई महत्व है। इसके लिए बस दो लोग इमपॉर्टेंट हैं। एक साहब और दूसरा टीसीएस। हमलोगों के सैकड़ों के बिल में भी दस कमियाँ निकालेगा, वहीं टीसीएस के हजारों के बिल बिना को चूँ-चपड़ किए पास करेगा।''

तभी चरणजीत पुनः चर्चा में कूदा, ''दो नहीं दादा, तीन लोग। साहब, टीसीएस और यह खुद।''

चरणजीत ने जिस गंभीर तरीके से यह बात कही, राकेश और बिकाश दोनों ठठाकर हँस पड़े। पीछे से चरणजीत भी।

चाय का अंतिम सीप लेते हुए राकेश ने कुछ गंभीरतापूर्वक कहना शुरू किया, ''जो भी हो यार, कुछ तो जिम्मेदारी उन्हें भी देनी होगी। जीएम सर ने सोचकर ही तो यह फैसला लिया होगा''।

चरणजीत और बिकास रहस्यमयी अंदाज में मुस्कुरा दिए।

अब तक चाय समाप्त हो गयी थी। सभी अपनी-अपनी डेस्क पर चले गए।

....

टीसीएस राव मूल रूप से आंध्रप्रदेश के गुंटुर जिले के थे मगर उनके जन्म के कुछेक महीने बाद ही उनके पिता रायपुर में आ बसे थे। शहर के अंतिम छोर पर स्थित यदुनंदन नगर में उन्होंने एक छोटे मकान की बरसाती किराए पर ले ली। उस मुहल्ले से कोई दो किलोमीटर की दूरी पर स्थित बाइपास के एक किनारे साइकिल पार्ट्स और पंक्चर ठीक करने की एक छोटी सी दुकान भी किसी तरह करके उन्होंने किराए पर ले ली। संयोग अच्छा रहा कि साइकिल की उनकी दुकान कम ही समय में ठीक-ठाक चल पड़ी। बालक टीसीएस स्कूल के एक नगर-निगम स्कूल में पढ़ा करता था और पढ़ाई समाप्त करके दुकान पर आ जाया करता था। पिता का हाथ बँटाता और धंधे का हुनर भी सीखता। उसका मन जल्दी ही पढ़ाई से उचट गया। किसी तरह पिता के भय से उसने आठवीं तक पढ़ाई की, मगर दम्मे के मरीज उसके पिता अचानक एक दिन खाँसते-खाँसते इस दुनिया से विदा हो गए। इकलौते बेटे टीसीएस के ऊपर विपत्ति का पहाड़ गिर पड़ा। उससे छोटी दो बहनें थीं, जिन्हें पढ़ाना-लिखाना, जिनका लालन-पालन करना और जिनकी शादी करनी थी। टीसीएस ने पिता की दुकान सँभाली और साइकिल की मरम्मत करना, उसके टायर के पंक्चर ठीक करना जैसे काम करना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे बालक टीसीएस किशोर होता गया और मौके को भाँप लेने की अपनी हुनर से कुछेक ही वर्षों में उसने मोटरसाइकिल का काम भी करना आरंभ कर दिया। मोटरसाइकिल की सर्विसिंग, क्लीनिंग, उसके टायरों में हवा भरना आदि। काम निकलते ही उसने अपने मुहल्ले के कुछ और लड़कों को भी काम पर रखना शुरू कर दिया। जो मोटरसाइकिल उसके पास ठीक होने के लिए आते, उन्हें ठीक करने के बाद वह किसी हीरो जैसे उसपर सवार हो हवा से बातें करने लगता। उसकी इसी अदा पर मुहल्ले की एक लड़की गौरी विश्वकर्मा ने उसे अपना दिल दे दिया। वह टीसीएस के पड़ोस में ही रहती थी। नहीं, टीसीएस उनके पड़ोस में रहता था। अबतक टीसीएस किराए का मकान छोड़कर अपने घर में रहने लगा था। वहीं पर दोनों का प्यार हुआ। दोनों के परिवार की जाति, संस्कृति और आर्थिक हैसियत भिन्न थी, मगर अपनी बेटी की खातिर गौरी के माता-पिता अंततः मान गए थे। टीसीएस का परिवार इस शादी के लिए पहले से ही तैयार था। बाहर से आए टीसीएस के परिवार को इस स्थानीय गठबंधन से कुछ लाभ ही हुआ। टीसीएस शुरू से मेहनती था और काफी कम उम्र में बाजार में आ जाने के कारण उसके भीतर का संकोच टूट गया था। वह अंदर से दृढ़हो गया था। उसे हर हाल में बड़ा आदमी बनना था और इसके लिए उसने धीरे-धीरे करके कई उल्टे-सीधे काम करने शुरू कर दिए। और फिर किसी तरह जब एन.आई.सी.एल. जैसी बड़ी कंपनी में उसका प्रवेश हुआ तो कमीशनबाजी के बल पर धीरे-धीरे वे ऊपर उठते चले गए। संयोग ऐसा था कि वर्ष 2000 में जब छत्तीसगढ़समेत कुल तीन राज्यों का निर्माण हुआ, तब यहाँ छत्तीसगढ़में भी एक साथ कई चीजें बदलनी शुरू हुईं। अब तक अलग-थलग माने जाते शहरों का महत्व बढ़ा। सत्ता, राजनीति और प्रशासन के बीच कई नई संधियाँ निर्मित हुईं। कई नए समीकरण बनने शुरू हुए। उस समय कई सरकारी दफ्तर, सरकारी-निजी कंपनियाँ धड़ल्ले से या कहें कुछ हड़बड़ी में रायपुर में खुलीं। ऐसे में उनके ऑफिस से लेकर

निवास तक कई तरह के काम निकलने लगे। ऐसे में कुछ तेज-तर्रार लोगों ने अपने लिए भी मौके तलाशे। टीसीएस भी तबतक अपने व्यवसाय में जम चुके थे, मगर उन्हें लगा कि सिर्फ एक दुकान से घर तो चलाया जा सकता है, घर को भरा नहीं जा सकता है। सो, झूठ-सच करके उन्होंने कई दिशाओं में हाथ-पाँव मारे। तब रायपुर में जमीन कुछ सस्ती थी और यही कोई सात-आठ लाख में उन्होंने लगभग चार हजार वर्ग फीट जमीन ली और उसपर एक साथ तीन मंजिलें ठोक दीं। व्यावसायिक बुद्धि से लैस राव ने अपने घर को हॉस्टल के रूप में ढाल दिया। उसे जिस बीमा कंपनी का काम मिला, वहीं आनेवाले कई नए स्टॉफ को उन्होंने अपने घर में टिकाना शुरू किया। धीरे-धीरे उनकी जरूरत के हिसाब से अपने घर ही में लाउंड्री वाले, साफ-सफाई वाले और रसोइए को भी रखना शुरू किया। एन.आई.सी.एल. का रायपुर में राज्य स्तरीय कार्यालय खुला तो उसकी साफ-सफाई, एसी संस्थापन, जेनरेटर, कैंटीन आदि के अलग-अलग टेंडर निकाले गए। उस समय के कार्यालय प्रमुख संजीव घोष से टीसीएस की खूब छनने लगी थी। रात में दोनों हमप्याला भी होने लगे थे। संजीव घोष ने शादी नहीं की थी मगर बड़े ऐय्याश किस्म के अधिकारी थे। मांस-मदिरा से उनका रोज का नाता था। और नशे के बाद वे बहकने लगते थे। टीसीएस के होस्टल की कोई-न-कोई महिला कर्मचारी चौबीस घंटे उनकी सेवा में तैनात रहती थी। उन्हें टीसीएस की ओर से अलग से और पैसे दिए जाते थे। संजीव घोष की टीसीएस ने खूब सेवा की और बदले में अलग-अलग फर्मों के नाम से एन.आई.सी.एल. के अधिकाधिक टेंडर अपने पाले में झपटते चले गए। हालत यह हो गई कि प्रदेश मुख्यालय रायपुर सहित प्रदेश की सभी शाखाओं में एक ही ठेकेदार टीसीएस राव के जेनरेटर लगे हुए थे। पूरे सूबे में उनका दबदबा था। धीरे-धीरे उन्होंने अपने पाँव और अधिक फैला लिए थे। और यही क्रम कोई पंद्रह सालों से अनवरत जारी था। नए आनेवाले बड़े अफसर से पुराने अफसर द्वारा टीसीएस के बारे में टिप्स मिल जाया करते थे। यहाँ तक कि उस बीमा कंपनी का प्रदेश-मुखिया भी उनकी बातों में ज्यादा टाँग नहीं अड़ाता था। हाँ, उनकी सेवा-पानी में वे कोई कसर नहीं छोड़ते थे। हमेशा लकदक सफेद क्रीच कुर्ते-पायजामे में लैस राव को अपने साँवले शरीर से कुछ अधिक ही प्यार था। वे हमेशा उसे चमकाकर रखना चाहते थे। उनका व्यवहार बड़ा शालीन था और किसी को उनके वैभव का अंदाजा नहीं हो पाता था। उनका काम सही से चलता रहे, उनकी व्यावसायिक बुद्धि को बस इसी से लेना-देना था। अपने होस्टल की उन्हीं महिलाओं से इस कंपनी की साफ-सफाई कराने लगे। एन.आई.सी.एल. की ओर से जो पैसे मिलते थे, वे सीधे उनके खाते में जाते थे। मगर वह उनसे अपने पूरे हॉस्टल की भी साफ-सफाई करवाता था। उसके पास दस से अधिक ऐसी महिलाएँ थीं। टीसीएस चाहते थे कि एन.आई.सी.एल. के स्टॉफ सदस्य उसकी सफाई-कर्मियों से ज्यादा बात न किया करें। जाने कब कौन उसके खिलाफ क्या उगल दे।

.....

जिस दिन सांस्कृतिक संध्या का आयोजन था, सुबह से ही गहमागहमी शुरू हो चुकी थी। टीसीएस अपनी आदत के मुताबिक ऑफिस में इधर-उधर घूमता फिर रहा था। राकेश भी अपने कार्यालयी कार्यों के साथ नीचे की जा रही तैयारी का मॉनीटर कर रहा था। दोनों दो दिशाओं में व्यस्त थे। मामूली से दुआ सलाम के बाद दोनों अपने-अपने काम में व्यस्त थे। राकेश ने दो दिन पहले ही बैनर वाले वेंडर चंदर कश्यप को अपनी सीट पर बुलाकर बैनर बनाने से लेकर माला, चंदन, कपूर, पोस्टर आदि कई सामग्री लाने के कुछ छोटे-मोटे काम दे दिए थे। ऑफिस में कुछ निश्चिंत भाव से वह एक-एक सभी कार्यक्रमों की सूची को क्रमवार अंतिम रूप दे रहा था। कई सारे शे'र भी उसने मौके के अनुरूप छाँट रखे थे ताकि दो प्रतिभागियों के बीच की कड़ी कोई प्रभावी और आकर्षक रूप से जोड़ा जा सके। लंच के बाद वह कार्यालय के पास ही स्थित सुषमा गिफ्ट सेंटर से कुछ आकर्षक गिफ्ट प्रतिभागियों के लिए चयनित कर रहा था। उसने वहीं से चंदर को बुलाने और बैनर लगाने एवं अन्य सामानों को जमाने के लिए फोन किया। उसे आश्चर्य हुआ कि वह फोन नहीं उठा रहा था। राकेश के साथ में उसका एक सहकर्मी चरणजीत भी था। कुछ शक व्यक्त करते हुए राकेश के दाएँ कान के पास अपना मुँह करके चरणजीत बुदबुदाया, ''यार राकेश, कहीं टीसीएस ने उसे भड़का तो नहीं दिया! न आने से मना कर दिया हो, ताकि हमारा प्रोग्राम खराब कर सके।''

राकेश को शुरू में कुछ अजीब लगा। उसने चरणजीत की ओर अपना मुँह बनाते हुए कहा, ''आप भी बॉस, बड़े शक्की हो। क्या टीसीएस इतना नीचे गिर कर पॉलीटिक्स करेगा कि किसी वेंडर को भी हमारे खिलाफ भड़का दे। हो सकता है कि कश्यप बाइक चला कर इधर ही आ रहा हो और ट्रैफिक के शोर में हमारा फोन नहीं उठा पाया हो।''

यह कहकर राकेश ने उसे दुबारा फोन किया। इस बार उसका फोन बंद मिला। राकेश ने चरणजीत की ओर संदेहभरी नजरों से देखा और कहा, ''यार चरणजीत जी, उसका मोबाइल बंद आ रहा है।''

चरणजीत ने अपने अंदेशे के सही सिद्ध होने की खुशी में लगभग चीखते हुए कहा, '' मैं कह रहा था न बॉस, वही बात निकली।''

राकेश के आगे यह एक नई चुनौती आ खड़ी थी। ऐन समय पर वह क्या करे! बैनर तो चाहिए ही था। साथ ही सजावट और गेम्स के कई आइटम उसी के पास थे। वह उधेड़बुन में पड़ गया। दोनों उसके न आने की स्थिति से निपटने की तैयारी में लग गए। गिफ्ट का आर्डर देकर दोनों वापस कार्यालय में आ गए। राकेश को यह अंदाजा हुआ कि क्या पता चंदर उसे नीचे मिल जाए। लगभग आधे घंटे के बाद उसने चंदर को फिर फोन किया। इस बार फोन का रिंग गया मगर पूर्ववत उसने फिर से कोई रेस्पॉस नहीं दिया। चरणजीत राकेश के पास ही बैठा था। अब राकेश को भी यकीन हो चुका था कि चंदर हो-न-हो किसी गेम-प्लान के अंतर्गत ही ऐसा कर रहा हो। तभी इनके समक्ष टीसीएस आया और यूँ ही किसी शुभचिंतक की तरह राकेश से पूछा, ''क्या हुआ राकेश जी, कुछ परेशान लग रहे हैं?''

राकेश ने इस बार अपने विरोधी को एक मौका देने की गरज से पूरी बात टीसीएस को बता दी। टीसीएस ने तभी चंदर को फोन किया और उसे किसी गुंडे की तरह फोन पर डाँटा। फिर राकेश की ओर मुखातिब होता हुआ बोला, ''बस आ ही रहा है वह। और बताइए, इस गरीब के लायक कोई सेवा!'' राकेश ने भी अपने होंठों पर मुस्कुराहट लाने की कोशिश करते हुए टीसीएस को धन्यवाद दिया। किसी विजेता की तरह सफेद कुर्ता-पाजामा लहराता हुआ और अपने श्याम हाथों में सफेद रंग का एप्पल का महँगा मोबाइल लिए टीसीएस आगे बढ़गया। राकेश ने अपनी बड़ी आँखों को और बड़ी करते हुए चरणजीत से कहा, ''मान गए बॉस, आप बिल्कुल सही थे। यह 'देवदूत' तो किसी भी हद तक जा सकता है। हमारे अपने लोग ही नहीं, बल्कि कुछ बाहर के भी लोग टीसीएस के इशारे पर नाचते हैं। अब तो आगे से मैं चंदर को कोई काम नहीं दूँगा। और मुझे ऐसा कोई काम आगे से मिलेगा, मैं साफ साफ मना कर दूँगा। इस नीचता तक मैं नहीं उतर सकता, बॉस।'' इतन कहकर एक साँस में राकेश ने अपनी मेज पर रखे पानी से भरे गिलास कोखाली कर दिया।

....

शाम तक किसी तरह राकेश के मनमाफिक सारी तैयारी हो चुकी थी। राकेश ने जान-बूझकर चंदर से अपने गुस्से का इजहार नहीं किया। टीसीएस, हरिकिशन आदि सभी से वह हँस-हँसकर बातें कर रहा था। उसे कार्यक्रम को सही तरीके से संपन्न कराना था। एक सामाजिक उद्देश्य के आगे अपने निजी पूर्वाग्रहों या इस बीच पता चले कुछ नग्न यथार्थों को एक तरफ रखना ही उसे उचित लगा। सांस्कृतिक कार्यक्रम जो साढ़े सात बजे शुरू हुआ तो लगभग साढ़े दस बजे तक बेधड़क चला। इस बार ऐसे स्टॉफ सदस्य भी मंच पर आए जो पहले कभी नहीं

दिखे। कई नई प्रस्तुतियाँ हुईं। गणेश वंदना से लेकर समवेत स्वर में गाए जानेवाले एन.आई.सी.एल. के कॉर्पोरेट गीत तक सभी कुछ अच्छे से संपन्न हुआ। बच्चों, महिलाओं और बड़ों ने खूब मजे किए। इस पूरे कार्यक्रम में राकेश ने हरेक के लिए कुछ-न-कुछ सोच रखा था। गेम भी चुन चुनकर रोमांचक और सर्वसमावेशी तैयार किए गए थे।कार्यक्रम के अंत अंत तक चारों ओर से राकेश की वाहवाही होने लगी। रजिंदर मित्तल ने भी मंच पर सार्वजनिक रूप से उसकी पीठ थपथपायी।

0000000000000000000

हाँ, खान-पान में कुछ कमी रह गई थी, जिसका अंदाज राकेश को था। मगर यहाँ उसके हाथ बँधे हुए थे। इसका जिम्मा उसके पास नहीं था। ऐसे में जो लोग इस मुद्दे को लेकर राकेश के पास आए, उसे राकेश ने सादर हरिकिशन के पास भेज दिया। पूरे कार्यक्रम के दौरान हरिकिशन का चेहरा लटका रहा। हरिकिशन से मीठा बनकर टीसीएस ने उसे ही अच्छे से 'मामू' बना दिया था। गोलगप्पे, चाउमीन और आलू की टिक्की ऐन समय पर खत्म हो गई थी। कुछ आइटम अच्छे थे, मगर वे खाना खाने के समय तक ठंडे हो चुके थे। उन्हें गर्म रखने का समुचित इंतजाम नहीं किया गया था।

....

अगले दिन कार्यालय के अधिकारी-कर्मचारी राकेश के पास आ-आकर व्यक्तिगत रूप से उसे बधाई दे रहे थे। व्यक्तिगत रूप से सभी को जोड़ कर चलने की उसकी प्रकृति की हर जगह खूब प्रशंसा हो रही थी। तभी राकेश को जी.एम. रजिंदर मित्तल के केबिन में उपस्थित होने का बुलावा आया। वह उत्साहित मन से अंदर गया। वहाँ पहले से टीसीएस और हरिकिशन बैठे थे। रजिंदर मित्तल ने जान-बूझकर राकेश को बैठने के लिए नहीं कहा। राकेश उनकी बड़ी सी रिवॉलविंग चेयर के सामने खड़ा रहा। राकेश ने गौर किया...इस समय उसके बॉस बिल्कुल अलग मूड में ही थे। उसे लगा, कोई कार्यालयी उलझन होगी। वह अपनी सीट से जुड़े कार्यों के लंबित मामलों को याद करने लगा। उसे आश्चर्य हुआ, यहाँ मुद्दा ऑफिस का नहीं, बल्कि सांस्कृतिक संध्या की आड़ में चल रहे आरोपो-प्रत्यारोपों का था। कुछ देर तक कल के कार्यक्रम की चर्चा होती रही। राकेश को लगा, इस बार पुनः उसके बॉस उसकी प्रशंसा करेंगे। मगर यहाँ बैठा रजिंदर मित्तल कल के रजिंदर मित्तल से अलग था। वह पुनः एक खूंखार जीएम में बदल चुका था। अचानक रजिंदर मित्तल ने अपना सख्त चेहरा बनाए हुए राकेश से कहा, ''देखो राकेश, रात गई बात गई ।...अभी तुम्हें बहुत आगे जाना है। यह ऑफिस कई लोगों के टीम वर्क के साथ चलता है। देखो आखिर टीसीएस के सहयोग से इतना अच्छा कार्यक्रम हो सका। तुम्हें हरिकिशन ने भी कितना गाइड किया!''

यह सब सुनकर राकेश हक्का-बक्का रह गया। उसे लगा, किसी ने उसकी सारी मेहनत का बैंड बजा दिया हो। सारा श्रेय ये दोनों महानुभाव लेने पर उतारू थे। उसे अब तक आभास हो चला था कि ये दोनों मिलकर अच्छी और सुपाच्य खिचड़ी मित्तल के आगे पका चुके हैं। अब वह अकेला था। उसकी लोकप्रियता का पहाड़ यहाँ इस तिकड़ी के सामने टुकड़े-टुकड़े टूटता चला जा रहा था। रजिंदर की कड़कती आवाज उसके कानों में पिघले शीशे की तरह पड़ रही थी और उसकी चुभती आखों की तपिश उसे बेहाल किए जा रही थी। रजिंदर ने आगे कहा, ''तुमने अपनी हद से आगे जाकर टीसीएस को बहुत कुछ सुनाया है। तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। इनसे सॉरी कहो।''

टीसीएस और हरिकिशन की ओर देखता हुआ राकेश ने कहा, ''सर, मैंने कोई गलती नहीं की है। मुझे इन दोनों महानुभावों से न के बराबर सहयोग मिला है। उल्टे, इन्होंने मेरे काम में रोड़े ही डाले हैं। इस कार्यक्रम को असफल करके ये मुझे बदनाम कर देना चाहते थे। यह प्रोग्राम कैसे संपन्न हुआ है, यह मैं ही जानता हूँ।''

हरिकिशन ने अपनी कर्कश आवाज में कहा, ''अरे वाह, एन.आई.सी.एल. के सबसे कमाऊ पूत मानो आप ही हैं न! जैसे कि हमलोग निठल्ले बैठे हुए थे।और आप यह मत भूलिए मिस्टर राकेश साहू, आप घर में नहीं, अपने ऑफिस में हैं। अपने सीनियर से बात कर रहे हैं। ऐसे बेहूदा आरोप-प्रत्यारोप से जरा बचें। यह कार्यक्रम, आप अकेले का नहीं था, इससे हम सबकी प्रतिष्ठा जुड़ी थी।माना कि आपने अच्छी मेहनत की, मगर क्या हमलोगों ने कुछ नहीं किया!''

राकेश फीकी हँसी हँसता चुप रह गया। वह कहना चाहता था, ''यह तो आप अपने आप से ही पूछिए सर या बाहर हॉल के किसी भी स्टॉफ सदस्य को यहाँ बुलाकर पूछवा लीजिए।''

मगर इस समय उसे कुछ न बोलना ही मुनासिब लगा।

अचानक रजिंदर मित्तल की रोबीली आवाज पूरे केबिन में गूँज पड़ी, '' राकेश, तुमने मन से काम किया। इसका मतलब यह नहीं कि अपने सीनियर्स से बात करने की तमीज भूल जाओ। मुझे मालूम है, तुमने राव जी का भी खुलेआम अपमान किया है।''

''लेकिन सर, जरा राव साहब से पूछिए, ये मुझसे किस लहजे में बात कर रहे थे!'' इस बार राकेश चुप रहना नहीं चाह रहा था।

बीच में ही टोकते हुए रजिंदर ने राकेश की तीखी फटकार लगाई, ''यह कोई मछली बाजार नहीं है। बिहैव यूओरसेल्फ, मिस्टर राकेश।''

राकेश कुछ सकते में आ गया और चुप ही रहा। राकेश को मिली इस डाँट से टीसीएस संभवतः कुछ उत्साहित हुए और इस उत्साह में अपनी ओर से कुछ कहना चाह रहे थे, मगर रजिंदर ने उन्हें इशारों से ही चुप रहने को कहा। वापस राकेश की ओर मुखातिब होते हुए बोले, ''राकेश, टीसीएस से सॉरी बोलो और इस मामले को समाप्त करो।''

मरता क्या न करता, राकेश ने धीमे से सॉरी कहा और केबिन से बाहर निकल गया। अंदर से तीनों की समवेत हँसी का स्वर, राकेश की धमनियों भीतर जहर की तरह उतर रहा था।

.....

देखते-देखते एक साल और बीत गया। रजिंदर मित्तल का तीन वर्षों का कार्यकाल पूरा हो चुका था। एक आदेश जारी हुआ और रजिंदर मित्तल रायपुर से दिल्ली के लिए रवाना हुए। जाते-जाते भी टीसीएस ने उनकी सेवा में कोई कमी नहीं छोड़ी। उनके पीछे उनके घर का एक-एक सामान मूवर्स एंड पैकर्स वाले के साथ मिलकर पैक करवाया और उन्हें दिल्ली पहुँचाया।

इस बार रायपुर में भोपाल से स्थानांतरित होकर वरूण मिश्र ने कार्यालय-प्रमुख का कार्यभार सँभाला। सदा की भाँति टीसीएस करबद्ध उन्हें गुलदस्ता देने के उद्देश्य से ऑफिस पहुँच गए। पी.ए. बिकास चटर्जी को अंदर जाकर सूचित करने के लिए बोले। कुछ देर में बिकास चटर्जी बाहर आए और उन्हें अंदर जाने को कहा। सगर्व भाव टीसीएस गुलदस्ता सहित अंदर जाने को उद्यत हुए। तभी बिकास ने उन्हें टोकते हुए कहा, ''राव साहब, यह गुलदस्ता आप यहीं छोड़ दीजिए। साहब को गुलदस्ता वगैरह लेना पसंद नहीं है।''

कुछ देर के लिए टीसीएस का चेहरा उतर गया मगर साठ वसंत देख चुके राव को अपने अंदर की भावना को बखूबी छुपाना आता था। वे इस स्थिति को सँभालने की गरज से मुस्कुराए और खिसीयानी हँसी हँसते हुए उन्होंने बिकास से कहा, ''चटर्जी जी, यह गुलदस्ता आपके लिए। साहब न लें तो साहब के पी.ए. ही सही।'' मगर बिकास ने हाथ जोड़ लिए, ''राव साहब, हमारे साहब ने हममें से किसी को भी कोई गिफ्ट लेने से मना किया है।''

अचानक से एक बॉस के आने से उन्हें यह सब सुनना पड़े, एकबारगी टीसीएस तिलमिला गए मगर अपने ड्राइवर के हाथ में गुलदस्ता पकड़ाते हुए बोले, ''जा बेटा भगत, इसे गाड़ी में रख दे। साहब लोग आज कुछ उखड़े-उखड़े नजर आ रहे हैं।''

केबिन में जाकर अपना परिचय देते हुए टीसीएस ने चिर-परिचित अंदाज में कुछ धीरे से रूक-रूक कर बोलना शुरू किया , ''सर, कैसे हैं? यहाँ रायपुर में मेरा पूरा जीवन गुजरा है। मेरे रहते किसी तरह की कोई दिक्कत नहीं होगी, सर। आप बताएँ सर, मैं आपके लिए निवास किधर ढूँढ़ूँ? और आप जब तक गेस्ट हाउस में हैं, आपके लिए यहाँ ऑफिस में लंच आ जाएगा, सर। मैंने अपने स्टॉफ को बोल दिया है।''

वरूण मिश्र ने राव के ऐसे प्रस्तावों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। वे अपने टेबल पर लगे कंप्यूटर पर कुछ-कुछ काम करते रहे। तब तक टीसीएस चुपचाप बैठे रहे। कुछ देर में वरूण मिश्र मुस्कुराते हुए राव की ओर मुखातिब हुए और बोले, '' हाँ, तो क्या नाम हुआ आपका?''

कुछ देर के लिए राव झेंप गए मगर फिर सहज होने का प्रयत्न करते हुए बोले, ''सर, मैं टीसीएस राव हूँ। छत्तीसगढ़में आपके इस ऑफिस की जितनी ब्रांचेज हैं, उनमें मेरा ही जेनरेटर लगा हुआ है सर। साथ ही यहाँ मीटिंग के दिन जितने हाई-टी होते हैं, उसकी व्यवस्था यह सेवक ही करता है, सर। आपकी इस ऑफिस में दो गाड़ियाँ लगी हैं, वे मेरी ही ओर से प्रोवाइड कराए जाते हैं, सर।''

''ठीक है।'' वरूण मिश्र ने अपनी ओर से कुछ अतिरिक्त उत्साह नहीं दिखाया।

''आप कुछ लेंगे, चाय...कॉफी?'' कंप्यूटर के स्क्रीन पर नजर गड़ाते हुए औपचारिकता वश वरूण ने टीसीएस के अनुभवी कानों को निमंत्रण के पीछे की शुष्कता को समझने में देर नहीं लगी। पूरे केबिन को टावर एसी ने भरपूर ठंडा कर रखा था। मगर इस शीतल माहौल में भी उनके चेहरे पर पसीने चुहचुहा आए। उन्होंने एसी की ओर देखा। यह ऐसी और ये कुर्सियाँ-टेबल, केबिन की साज-सज्जा सब उन्होंने ही तो करवाया था। हर सामान के पीछे भरपूर कमीशन कमाया था उन्होंने। उन्होंने एक निगाह उसी एसी की ओर डाली। वरूण मिश्र ने मामले को भाँपते हुए कहा, ''एसी की कूलिंग और बढ़ाऊँ क्या? ''ठीक है। मैं निकलता हूँ।''

फिर कुछ देर रूकते हुए बोले, ''मेरे लायक कोई सेवा हो तो जरूर बताएँ सर।'' अबतक टीसीएस की आवाज में हकलाहट का स्पष्ट बोध होने लगा था।

'' ''

सामने की ओर से कोई जवाब न मिलता देख, टीसीएस कुछ असहज हो रहे थे। कुर्सी से उठते हुए उन्होंने कहा, ''चलता हूँ सर।''

और फिर वरूण की ओर थोड़ा मुँह झुकाते हुए उन्होंने अपनी ओर से ब्रहास्त्र फेंका, ''कोई घर ढूँढ़ना है क्या सर?''

वरूण मिश्र संयत स्वर में बोले, ''नहीं आपको तकलीफ करने की कोई जरूरत नहीं है। एक ऑनलाइन वेबसाइट पर जाकर मैंने कुछ घर देखे थे। आज शाम उन्हें देखने जाऊँगा। उन्हीं में से कोई एक घर फाइनल कर लूँगा।''

वरूण मिश्र को हर चीज में यूँ टीसीएस का किसी स्टॉफ की तरह घुसना पसंद नहीं था। उन्होंने अपने पी.ए. बिकास को बुलाया और उन्हें स्पष्ट ताकीद दी, ''पहले के बॉस की छोड़ो बिकास। मैं बिल्कुल अलग किस्म का हूँ। तुम अबतक जान गए होगे। मेरा मिजाज कुछ हटकर है। मैं न तो स्वयं किसी की खुशामद करता हूँ और न ही किसी से अपनी करवाना चाहता हूँ। ये टीसीएस जैसे लोग, मुझसे अधिक से अधिक दूर ही रहें।''

.....

यह टीसीएस के लिए एक नई बात थी। इतना बड़ा अफसर उसे घास नहीं डाल रहा था और अपने सारे काम वह बड़ी चतुराई से संपन्न किए जा रहा था। टीसीएस एक मँजे हुए ठेकेदार थे और अबतक इस कंपनी के कुछ बड़े अधिकारियों को मिलाकर वे इस पूरी कंपनी पर जाने कितने सालों से राज करते चले आ रहे हैं। वे अमूमन पूरे ऑफिस में कुछ चुनिंदा लोगों से जरूर मिलते थे, मगर उस दिन बिना किसी से मिले ऑफिस से बाहर निकल गए। ऑफिस के कॉरीडोर में तृतीय तल पर लिफ्ट को आने में कुछ वक्त लग रहा था। टीसीएस ने अपने सहयोगी साले से कहा, ''चलो अनूप। आज साली लिफ्ट को भी आने में देरी हो रही है। जाने हमलोग किस मुहुर्त में निकले थे!''

''हउ जीजाजी, आज का दिन ठीक नहीं रहा। चलो, सीढ़ियों से ही चलते हैं। कुछ वजन ही कम होगा।''

टीसीएस ने अपनी आँखें तिरछी करते हुए अपने साले की ओर देखा और चेहरे पर क्रोध के कुछ भाव लाते हुए पूछे, ''क्या मतलब अनूप? तुम क्या कहना चाह रहे हो? मेरा वजन तुम्हें कहाँ से ज्यादा लग रहा है? क्या तुम मुझसे चिढ़ते हो?''

अनूप उम्र में टीसीएस से कोई पंद्रह साल छोटा था और अपनी बहन से 11 साल। कुछ झेंपता और रहस्यमय तरीके से मुस्कुराता हुआ उसने जवाब दिया,''कैसी बात करते हैं जीजाजी, मेरी इतनी मजाल !''

अनूप अभी 45 वर्ष का था और साठ साल पूरा कर चुके अपने बहनोई के व्यवसाय में हाथ बँटाता था। अनूप के बाकी दो भाई अपनी-अपनी नौकरियों में आ गए थे और वे धीरे-धीरे टीसीएस से दूरी बना चुके थे। उन्होंने अपने छोटे भाई अनूप को भी कई बार टीसीएस के चंगुल से बाहर निकालने की कोशिश की मगर वे कामयाब नहीं हुए। बेरोजगार अनूप शुरू से ही टीसीएस की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गया था। वे दोनों कई बार साथ-साथ हमप्याला भी होते थे। टीसीएस ने धीरे-धीरे उसे अपने प्रभाव में ले लिया था। पहले उन्होंने उसे उसके परिवार से अलग किया और फिर उसका अपने हिसाब से इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। अनुप को कुल व्यवसाय से होनेवाले लाभ का एक छोटा हिस्सा मिलता था और वह उसके लिए काफी था। टीसीएस ने उसे ऐसी पट्टी पढ़ा कि वह अब शादी भी नहीं करना चाहता था। क बार दोनों को हमबिस्तर होता हुआ भी देखा गया था, मगर टीसीएस के किले में सभी चुप रहते थे। आँखें खुली रख सकते थे, मगर जुबान को बंद ही रखना होता था। मानसिक तनाव की किसी अवस्था में टीसीएस खासकर बड़ा आक्रमक हो उठते थे और वे अपना सारा पुरूषार्थ अनूप पर निकालते थे । उस रात भी देर तक दोनों हमप्याला हुए। टीसीएस ने वरूण मिश्र को मनभर गाली दी। अपने मन की पूरी भड़ास उन्होंने अनूप पर उड़ेल दी। सुबह लस्त-पस्त जीजा-साला दोनों देर तक सोते रहे। जीजा हल्का होकर अपने घर बनाम होस्टल में इधर-उधर घूम रहा था तो दूसरी ओर मंद-मंद कराहता और लंगड़ाता साला, घर-भर में सभी से खासकर अपनी बहन से नजरें बचाता फिर रहा था।

अर्पण कुमार

काव्य-संग्रह : 'नदी के पार नदी' (2002), 'मैं सड़क हूँ' (2011) एवं 'पोले झुनझुने' (2018) प्रकाशित।

उपन्यास : 'पच्चीस वर्ग गज' (2017) प्रकाशित।

कहानी : कई कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में और कुछ संपादित कहानी-संग्रहों में प्रकाशित और संकलित।

आलोचना : कुछ सुदीर्घ आलोचनापरक आलेख विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित।

संपर्क : arpankumarr@gmail.com

भोपाल में होगा साहित्य और कलाओं का विराट समागम- 'विश्वरंग'

भोपाल।हिन्दी और भारतीय भाषाओं के बीच वैचारिक संवाद तथा सांस्कृतिक आपसदारी का विराट समागम 'विश्वरंग' 7 से 10 नवंबर तक भोपाल में आयोजित किया जा रहा है। रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय की पहल पर टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र तथा वनमाली सृजन पीठ के मुख्य संयोजन में परिकल्पित इस अंतर्राष्ट्रीय साहित्य तथा कला महोत्सव में भारत सहित दुनिया के तीस देशों के पाँच सौ से भी अधिक प्रतिनिधि-हस्ताक्षर शिरकत करेंगे। लगभग पचास सत्रों के आसपास संयोजित यह विश्व कुंभ साहित्य, संस्कृति, शिक्षा, सिनेमा, पत्रकारिता, पर्यावरण सहित अनेक विषयों का अनूठा मंच होगा। म.प्र. की सांस्कृतिक राजधानी भोपाल में 'विश्वरंग' की गतिविधियाँ मिंटो हॉल, भारत भवन तथा रवीन्द्र भवन में होगी। अपने किस्म के इस पहले अनूठे समारोह के सुचारू संयोजन को लेकर व्यापक स्तर पर तैयारियाँ की जा रही है।

यह जानकारी टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति, सुप्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृतिकर्मी संतोष चौबे ने एक संवाददाता सम्मेलन में दी। इस मौके पर आकाशवाणी महानिदेशालय के पूर्व निदेशक तथा कवि लीलाधर मंडलोई, वनमाली सृजन पीठ भोपाल इकाई के अध्यक्ष कथाकार मुकेश वर्मा, आईसेक्ट के निदेशक सिद्धार्थ चतुर्वेदी और टैगोर विश्वकला केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय ने भी 'विश्वरंग' की गतिवधियों का ब्योरा प्रस्तुत किया।

श्री चौबे ने बताया कि 'विश्वरंग' में विश्वभर से नोबल विजेता, बुकर सम्मान विजेता और भारतवर्ष के साहित्य एकेडमी, पद्म भूषण एवं पद्मश्री जैसे सम्मानों से विभूषित सौ से अधिक रचनाकारों और विचारकों के साथ-साथ विश्व के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर और छात्रों के भाग लेने की संभावना है। इस महोत्सव में देश और प्रदेश के कई शासकीय साहित्यिक-सांस्कृतिक उपक्रमों के साथ ही अन्य विश्वविद्यालय और संस्थान/संस्थाएँ भी हिस्सेदारी कर रहे हैं।

⊙ विचार एवं विश्व कविता सत्र

श्री चौबे ने कहा कि इस बहुरंगी महोत्सव में हिन्दी सहित भारतीय तथा विदेशी भाषाओं के कवियों के साथ ही थर्ड जेंडर और सिनेमाकर्मी कवियों का रचना पाठ होगा। लेखक से मिलिये, टैगोर कला कृतियों की प्रदर्शनी, नाट्य-संगीत प्रस्तुति, पुस्तक चर्चा और किताबों का लोकार्पण भी आकर्षण का केन्द्र होंगे। वैचारिक सत्रों में गांधी और टैगोर की विरासत, साहित्य, संस्कृति तथा कलाओं के अन्तर्संबंध, शिक्षा, मीडिया तथा पर्यावरण जैसे मुद्दों पर वैश्विक संवाद होगा। श्री चौबे ने बताया कि यह महोत्सव छोटे गाँव-कस्बों से लेकर महानगर तथा सुदूर देशों के बीच एक साझा रचनात्मक अभियान की शक्ल लेगा, जिसमें नवोदित लेखक और अग्रणी शख्सियतें एक साथ शामिल हो रही हैं। महोत्सव के प्रमुख सलाहकार लीलाधर मंडलोई ने बताया कि 'विश्वरंग' की ही एक महत्वपूर्ण गतिविधि के रूप में 11 अक्टूबर को नई दिल्ली में केन्द्रीय साहित्य अकादेमी के सहयोग से एक सारस्वत समारोह होगा। उन्होंने जानकारी दी कि विभिन्न विधाओं में सक्रिय भारतीय भाषाओं के चर्चित विद्वान मनीषियों के साथ चीन, जापान, अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, इंग्लैंड, डेनमार्क, नीदरलैंड, रशिया और उज्बेकिस्तान-कजाकिस्तान जैसे कई मुल्कों के रचनाकार तथा शोधार्थियों की सहमति प्राप्त हो चुकी हैं।

⊙ भारत का पहला 'कथाकोश' होगा जारी

⊙ वनमाली सम्मान से विभूषित होंगे कथाकार

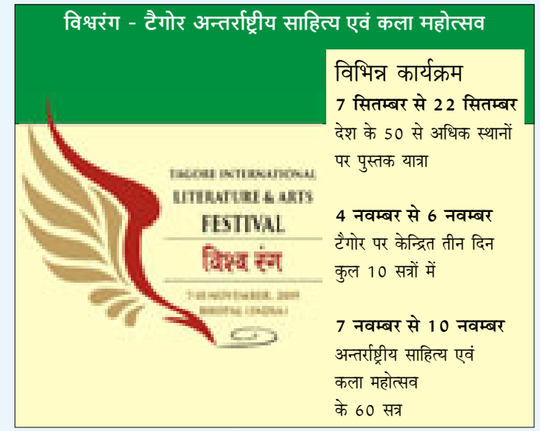

संवाददाताओं से चर्चा के दौरान मुकेश वर्मा ने जानकारी दी कि भारत के किसी भी शैक्षणिक संस्थान की पहल पर होने वाला यह पहला विश्व स्तरीय साहित्य-कला महोत्सव है। टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल इस दृष्टि से एक कीर्तिमान रच रहा है। उन्होंने बताया कि महोत्सव में वनमाली राष्ट्रीय कथा सम्मान से देश के चयनित श्रेष्ठ कथाकार को अलंकृत किया जाएगा।इसी अवसर पर देश की दो सौ वर्षों की कथा परंपरा एवं लगभग 600 रचनाकारों को समेटते, 18 खंडों में प्रकाशित, 'कथादेश' का लोकार्पण तथा प्रतिष्ठित वनमाली कथा सम्मान का आयोजन भी किया जा रहा है। इस आयोजन में कथादेश के सभी लेखक विशेष रूप से आमंत्रित हैं।

आईसेक्ट के निदेशक सिद्धार्थ चतुर्वेदी ने कहा कि युवा पीढ़ी के लिए यह महोत्सव संवाद और मनोरंजन का अनूठा मंच होगा। कविता पाठ और कला प्रस्तुतियों से लेकर चर्चित और चहेती शख्सियतों से मुलाकात का एक रोचक सिलसिला इस दौरान तैयार हो सकेगा। उन्होंने जानकारी दी कि भारत सरकार के विभिन्न सांस्कृतिक उपक्रमों के साथ ही इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, केन्द्रीय भाषा संस्थान, नेशनल बुक ट्रस्ट, सूचना प्रसारण मंत्रालय, भारत भवन, म.प्र. शासन संस्कृति विभाग, पर्यटन विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा तथा टेक्नालॉजी के क्षेत्र में सक्रिय माईक्रोसॉफ्ट और इंटेल जैसी प्रतिष्ठित कंपनियां एवम् भोपाल की सभी प्रमुख स्वयंसेवी सांस्कृतिक संस्थाएँ 'विश्वरंग' की गतिविधियों में सहयोगी होंगी।

⊙ देश भर में पुस्तक यात्राओं का आयोजन

पुस्तक संस्कृति की अलख जन-जन में जगाने के लिए इसके पूर्व टैगोर के नाटक, कविता और रवीन्द्र संगीत पर आधारित तीन दिवसीय समारोह 4 से 6 नवंबर तक भोपाल के रवीन्द्र भवन में तथा 8 सितम्बर अंतर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस पर पुस्तक यात्रा का आयोजन टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल द्वारा एन.बी.टी., नई दिल्ली के सहयोग से किया जाना है। पुस्तक यात्रा आईसेक्ट समूह द्वारा संचालित सभी पांचों विश्वविद्यालयों द्वारा भोपाल (म.प्र.), बिलासपुर (छत्तीसगढ), खंडवा (म.प्र.), वैशाली (बिहार), हजारीबाग (झारखंड) से 8 सितम्बर को प्रारंभ होकर 19 सितम्बर 2019 तक विभिन्न जिलों के 50 स्थानों पर भ्रमण करेगी।

विश्वरंग से संबंधित अधिक जानकारी और पंजीयन के लिए वेबसाइट www.tagorelitfest.comij पर संपर्क किया जा सकता है।

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र द्वारा जारी

महात्मा गाँधी : भाषा, साहित्य और लोक संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में केंद्रित राष्ट्रीय संगोष्ठी संपन्न

उज्जैन। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के 150 वें जयंती वर्ष के अवसर पर विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के गाँधी अध्ययन केन्द्र और हिन्दी अध्ययनशाला के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित त्रि-दिवसीय राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी का शुभारंभ वरिष्ठ समालोचक एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो रामकिशोर शर्मा के मुख्य आतिथ्य और कुलपति प्रो बालकृष्ण शर्मा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। सारस्वत अतिथि छत्तीसगढ़राजभाषा आयोग के पूर्व अध्यक्ष प्रो विनयकुमार पाठक, बिलासपुर थे।

प्रो रामकिशोर शर्मा ने अपने वक्तव्य में कहा कि गांधी जी के माध्यम से सम्पूर्ण भारतीयता से परिचित हो सकते हैं। भारत की तीन पहचान हैं - गीता, गंगा और गांधी। वे सिद्धान्तों को जीने वाले व्यक्तित्व थे। कुलपति प्रो बालकृष्ण शर्मा ने कहा कि गांधी जी की विश्व सभ्यता को देन बहुमुखी है। उन्होंने जीवन के सभी क्षेत्रों में न दिशाएं दी हैं।बीज वक्तव्य देते हुए मुख्य समन्वयक एवं विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो शैलेंद्रकुमार शर्मा ने कहा कि आज जब हाशिये के

समाज की बात की जा रही है, उसके मूल सूत्र गांधी जी के यहां मौजूद हैं। उन्होंने साम्प्रदायिक और जातीय समरसता की अलख जगा थी। प्रारम्भ में अतिथि स्वागत मुख्य समन्वयक एवं हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो शैलेंद्रकुमार शर्मा, प्रो प्रेमलता चुटैल,प्रो गीता नायक, डीएसडब्ल्यू डॉ राकेश ढंड ने किया। स्वागत भाषण प्रो प्रेमलता चुटैल ने किया। संचालन डॉ जगदीश शर्मा ने किया। आभार प्रो गीता नायक ने माना।

शुभारंभ समारोह के पश्चात दो तकनीकी सत्र हुए, जिनमें बीस शोध पत्रों की प्रस्तुति हु । सत्रों की अध्यक्षता वरिष्ठ साहित्यकार प्रो रामकिशोर शर्मा, इलाहाबाद और डॉ शिव चौरसिया ने की। सत्रों में प्रमुख वक्ता के रूप में डॉ सत्यकेतु सांकृत, न दिल्ली, डॉ जवाहर कर्नावट, मुंब , डॉ हरीश प्रधान, डॉ रामचन्द्र ठाकुर, महिदपुर, जीवनसिंह ठाकुर, देवास, श्रीराम दवे, प्रो गीता नायक, डॉ देवेंद्र जोशी, डॉ प्रभु चौधरी, महिदपुर आदि ने विचार व्यक्त किए। संचालन हीना तिवारी और संदीप पांडेय ने किया। संगोष्ठी में दस राज्यों के विशेषज्ञ विद्वान एवं शोधकर्ताओं ने सहभागिता की। राष्ट्रीय संगोष्ठी में दूसरे दिन हुआ गांधी जी के बहुमुखी योगदान और लोक पर प्रभाव पर विमर्श मे सर्वश्री महात्मा गांधी के 150 वें जयंती वर्ष के अवसर पर आयोजित त्रि-दिवसीय राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी में दूसरे दिन वाग्देवी भवन स्थित राष्ट्रभाषा सभागार में गांधी जी के विविधमुखी योगदान और लोक जीवन पर प्रभाव पर गहन विमर्श हुआ। संगोष्ठी में दूसरे दिन तीन तकनीकी सत्र हुए। मुख्य अतिथि वक्ता प्रो अनिलकुमार जैन (जयपुर) ने अपने वक्तव्य में कहा कि हिंदी कविता में गांधी के जीवन, मूल्य और प्रतीकों की व्यापक अभिव्यक्ति हु है। भारतीय भाषाओं के अनेक उपन्यासों और कहानियों के चरित्र और प्रसंगों पर गांधी जी का स्पष्ट प्रभाव दिखा देता है। वैश्विक हिंदी सम्मेलन के संस्थापक डॉ एम एल गुप्ता (मुंबई) ने कहा कि गांधी जी ने मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा पर बल दिया। वे शिक्षा को अन्तर्निहित शक्ति के विकास का मूल आधार मानते हैं, जो विदेशी भाषा के माध्यम से संभव नहीं है। डॉ विनायक पांडेय (इंदौर) ने कहा कि गांधी जी का चिंतन आतंकवाद और भ्रष्टाचार से मुक्ति की राह दिखाता है। उन्होंने प्राणिमात्र के कल्याण का मार्ग दिखाया है। हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो शैलेंद्रकुमार शर्मा ने कहा कि तुलसी कृत रामचरितमानस गांधी जी के लिए काव्यादर्श और जीवनादर्श रहा है। उन्होंने तुलसी के आदर्शों के अनुरूप समस्त मनुष्यों से दूसरों के गुणों को अंगीकार करने और दोषों से दूर रहने का आह्वान किया है।

छत्तीसगढ़राजभाषा आयोग के पूर्व अध्यक्ष डॉ विनय पाठक (बिलासपुर) डॉ पूरन सहगल (मनासा) और डॉ बहादुर सिंह परमार (छतरपुर) ने क्रमशः छत्तीसगढ़ी, मालवी और बुंदेली लोक जीवन और साहित्य पर गांधी जी के प्रभाव को अनेक उदाहरणों के साथ प्रस्तुत किया।

तकनीकी सत्रों में पच्चीस से अधिक शोध पत्रों की प्रस्तुति हुई। सत्रों की अध्यक्षता वरिष्ठ साहित्यकार डॉ पूरन सहगल, डॉ अनिलकुमार जैन (जयपुर) एवं डॉ कला जोशी, इंदौर ने की। सत्रों में प्रमुख वक्ता के रूप में डॉ चन्द्रकुमार जैन (राजनांदगांव), डॉ प्रभातकुमार दुबे (नागपुर), डॉ पुष्पेंद्र दुबे (इंदौर), डॉ सत्यकेतु सांकृत (नईदिल्ली), डॉ राकेश ढंड, डॉ शिशिर उपाध्याय (बड़वाह), डॉ सी एल शर्मा (रतलाम) आदि ने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ जगदीश शर्मा, डॉ अजय शर्मा एवं राम सौराष्ट्रीय ने किया।

राष्ट्रीय संगोष्ठी के समापन दिवस पर चार सत्र हुए गांधी जी के 150 वें जयंती वर्ष के अवसर पर समापन दिवस पर वाग्देवी भवन स्थित राष्ट्रभाषा सभागार में गांधी जी के विश्वव्यापी प्रभाव पर चर्चा के साथ काव्य एवं संगीत के माध्यम से भावांजलि अर्पित की गई । समापन समारोह के मुख्य अतिथि जबलपुर के प्रो त्रिभुवननाथ शुक्ल ने अपने वक्तव्य में कहा कि महात्मा गांधी के विचार संपूर्ण मानवता के लिए हैं। मनुष्यता से जुड़ा ऐसा कोई पक्ष नहीं है, जिस पर उन्होंने प्रयोग न किया हो। अध्यक्षीय उद्बोधन में कुलपति प्रो बालकृष्ण शर्मा ने कहा कि महात्मा गांधी सच्चे अर्थों में ऋषि हैं। भारत के विश्व गुरू होने की प्रक्रिया में गांधी के योगदान को कभी विस्मृत नहीं किया जाएगा। गीता में कहा गया है कि जो भी श्री से युक्त है वह कृष्ण का रूप है, गांधी जी का व्यक्तित्व इसी प्रकार का है।इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रो राम किशोर शर्मा ने कहा कि गांधी जी मात्र पूजा के प्रतीक न बनें, उन्हें जीवन में उतारने की आवश्यकता है। पहले तकनीकी सत्र में डॉ.शैलेन्दमुंबईकुमार शर्मा, प्रो प्रेमलता चुटैल, डॉ जगदीश चंद्र शर्मा आदि ने विचार व्यक्त किए। अध्यक्षता वरिष्ठ साहित्यकार डॉ त्रिभुवननाथ शुक्ल ने की। सत्र का संचालन डॉ भेरूलाल मालवीय ने किया। अंतिम सत्र मे आठ भाषाओं की कविताओं और संगीत के माध्यम से गांधी जी को भावांजलि अर्पित की गई । कविताओं में महात्मा गांधी की अनुगूंज कार्यक्रम में देश के प्रतिष्ठित कवि श्रीराम दवे, डॉ देवेंद्र जोशी (हिंदी), प्रो त्रिभुवननाथ शुक्ल (संस्कृत), डॉ बी आर धापसे, औरंगाबाद (मराठी),डॉ रफीक नागौरी, श्री हमीद गौहर, डॉ विजय सुखवानी (उर्दू), डॉ शिव चौरसिया (मालवी), डॉ शिशिर उपाध्याय, श्रीमती जयश्री उपाध्याय बड़वाह (निमाड़ी), डॉ बहादुर सिंह परमार, छतरपुर (बुंदेली) और डॉ चंद्रकुमार जैन, राजनांदगांव (छत्तीसगढ़ी) ने अपनी सरस रचनाओं के द्वारा गांधी जी के प्रति भावांजलि अर्पित की। लोक गायक श्री सुंदरलाल मालवीय द्वारा गांधी जी के प्रिय भजन वैष्णव जन तो तेणे कहिए और मालवी गीत अमर हुई गया बापूजी, जिनके याद करे संसार की प्रस्तुति कर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। काव्य पाठ का संचालन श्री शिशिर उपाध्याय ने किया।प्रारम्भ में अतिथि स्वागत मुख्य समन्वयक एवं हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो शैलेंद्रकुमार शर्मा, प्रो प्रेमलता चुटैल,प्रो गीता नायक, डीएसडब्ल्यू डॉ राकेश ढंड ने किया। स्वागत भाषण प्रो प्रेमलता चुटैल ने किया। संचालन डॉ जगदीश शर्मा ने किया। आभार प्रो गीता नायक ने माना। इस अवसर पर वरिष्ठ मुद्राशास्त्री डॉ.आर.सी. ठाकुर और डाक टिकट संग्राहक श्री शिशिर उपाध्याय के संयोजन में अस्सी से अधिक देशों के डाक टिकट एवं मुद्राओं में महात्मा गांधी पर रेखांकन में महात्मा गांधी पर प्रदर्शनी भी लगाई गई थी।

प्रस्तुति : डॉ.शैलेन्द्रकुमार शर्मा

संतोष सुपेकर

'वह विल'

'पैंतालीस की उमर के बाद हेल्थ इंश्योरेंस ले ही लेना चाहिए और साठ के बाद विल, वसीयत तैयार करवा ही लेना चाहिए।' ट्रेन में बैठा मध्यमवर्गीय ग्रुप चर्चारत था, 'क्यों रामधनजी?' बोलता स्वर अब विनोदी हो उठा, 'आप तो सिक्सटी प्लस में चल रहे हैं न? आपने तैयार करवाई, वसीयत?' 'नहीं भाई, अभी नहीं करवाई पर करवा लूँगा जल्दी ही' रामधनजी ने मुस्कुराते हुए बात को एक नया मोड़ दे दिया, 'पर हाँ, मैंने एक बात बच्चों को लिखकर दे रखी है, बकायदा स्टाम्प पेपर पर... कि किसी दुर्घटना या बीमारी के कारण मैं गंभीर हालत में आ जाऊँ तो...चाहे कुछ भी हो जाए, रिपीट...कुछ भी हो जाए, मुझे वेंटीलेटर पर मत रखना, ये मेरी अंतिम इच्छाओं में से एक है, कोई कुछ भी कहे, उसे ये 'विल' दिखा देना। मैंने देखा सुना है कि आजकल ज्यादातर अस्पतालों में गंभीर मरीज वेंटीलेटर पर रख दिया जाता है और परिजनों को गहरे आर्थिक संकट में डाल दिया जाता है। परिवार तो सड़क पर आ ही जाता है, अक्सर मरीज भी बच नहीं पाता है। मेरे बच्चे वैसे भी साधारण आर्थिक स्थिति वाले हैं। मुझे खुशी है कि ऐसी कोई स्थिति आने पर मैंने अपने बच्चों को संभावित धर्म और अर्थसंकट से बचा लिया है और सख्त हिदायत दे दी है कि मेरी इस 'विल' का पालन किया जाए।

'सिवाय हमारे'

'सवाल ही नहीं उठता' दर्शन की कतार में खड़ा सोनू फोन पर अपने साथी से बात कर रहा था ' मेरा टारगेट तो मैंने अचिव कर ही लिया है फ्यूचर में भी कोई मुझसे आगे कभी कोई नहीं जा सकता, मैंने प्लानिंग ही ऐसी करी है, वैसे भी बाय नेचर, मैं किसी को अपने से आगे जाता

नहीं देख सकता...ए भाई क्या है?' तभी एक भिखारी ने सोनू के सामने हाथ फैलाए तो फोन पर हाथ रखकर बिफरकर बोला, 'चल बढ़यहाँ से, आगे चल, बोला न, आगे जा...' 'हे हे हे, सुना' सोनू की फटकार सुन उस भिखारी ने अपने साथी से कहा, 'सुना इन पढ़े लिखे, भरे पेट वालों की बातों को, ये किसी को अपने से आगे नहीं जाने देते, सपने में भी नहीं...' 'सिवाय हमारे' ठठाकर हंसते हुए उसका साथी बोला, 'सिर्फ हम भिखारियों को ही ये कह सकते हैं- आगे जा, आगे जा, बाकी किसी को नहीं!'

संतोष सुपेकर 31, सुदामा नगर, उज्जैन (म.प्र.) मोबाइल - 9424816096

कमलेशव्यास 'कमल'

पचास के दशक में।

गिरधारी लाल- 'क्यों रे कैलाश! पास हुआ कि फेल?'

कैलाश (पिता के पैर छूते हुए) - 'जी-पिताजी! मैं पास हो गया।'

गिरधारी लाल- 'शाबाश! जा, मंदिर में जाकर प्रसाद चढ़ा आ...ले पैसे।

अस्सी के दशक में।

कैलाशनाथ- 'बेटा गोपाल! कौन से डिवीजन में पास हुआ?'

गोपाल (दूर से ही धीमी आवाज में) - 'बाबूजी सेकण्ड डिवीजन बना है, पाँच नम्बर से फर्स्ट डिवीजन रह गया। 'कैलाशनाथ (सांत्वना देते हुए)- 'चलो कोई बात नहीं, अगली बार और अच्छे-से तैयारी करना। और सुन...तेरी माँ से बोल, आज कुछ मीठा बना ले।'

बीस साल पहले।

गोपालदास - 'कितना पर्सेंट बना निखिल?'

निखिल- 'पापा! एट्टी नाइन पर्सेंट बना।'

गोपालदास - 'ठीक है, अबकी बार नाइंटी क्रास होना चाहिए...तेरी मम्मी को बोल देना शाम को बाहर खाना खाने चलेंगे।'

वर्तमान में।

निखिल- 'कौन-सी पोजिशन बनी क्लास में?'

जिमी (बड़े अफसोस के साथ) - 'पास! सिर्फ पाइंट वन से रह गया, नहीं तो फर्स्ट पोजिशन बनती...मेरा नाइंटी सेवन फाइव बना और और नंबर वन का पाइंट सिक्स।'

निखिल (उदास लहजे में) - 'ओह....शिट....तुमने मुझे अपसेट कर दिया...कोई पूछेगा तो क्या कहूंगा?'

जिमी की मॉम फेसबुक चलाते हुए दार्शनिक अंदाज में सोच रही थी...'खुशील और गम के बीच सिर्फ 'पाइंट वन' का ही डिफरेंस रह गया... इसके बाद आगे क्या होगा...?

20/7, कांकरिया परिसर,
अंकपात मार्ग, उज्जैन (म.प्र.) पिन-456006
मो.9893009932

पावस व्याख्यानमाला में श्री कौशल की फोटो प्रदर्शनी

भोपाल। म.प्र.राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की पावस व्याख्यानमाला के अवसर पर वरिष्ठ छायाकार पूर्व अपर संचालक जनसंपर्क, भोपाल श्री जगदीश कौशल की फोटो प्रदर्शनी आयोजित की गई। प्रदर्शनी का उद्घाटन केन्द्रीय संस्कृति राज्यमंत्री श्री प्रहलाद पटेल और मध्यप्रदेश की संस्कृति मंत्री डॉ.विजयलक्ष्मी साधो ने किया। मंत्री द्वय ने श्री कौशल द्वारा छायांकित महाप्राण निराला, महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पन्त, सेठ गोविन्द दास आदि अनेक वरिष्ठ हिन्दी साहित्यकारों, कवियों आलोचकों के छायाचित्रों की सराहना की और श्री कौशल को इस असाध्य कार्य के लिए बधाई दी। दो दिवसीय इस छायाचित्र प्रदर्शनी में श्री जगदीश कौशल ने वर्ष 1960 से लेकर वर्ष 2000 तक के दर्जनों हिन्दी साहित्य के शीर्ष कवियों, लेखकों के 50 छायाचित्रों को प्रदर्शित किया है। इनमें महाप्राण पं.सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का हारमोनियम बजाते हुए होली की फाग गाते हुए फोटो तथा महादेवी वर्मा जी का रीवा के चचाई प्रताप पर भावपूर्ण मुद्रा वाला फोटो सभी दशकों एद्वारा बहुत सराहा गया। सुप्रसिद्ध कला समीक्षक श्री प्रयाग शुक्ल नईदिल्ली, डॉ.मीनाक्षी जोशी, भण्डारा, श्री सूर्यकान्त नागर इन्दौर, श्री रमेश दवे, श्री ध्रुव शुक्ल, सन्तोष चौबे, मुकेश वर्मा, श्री महेन्द्र गगन, नरेन्द्र दीपक के अलावा अन्य सभी दर्शकों ने कौशल जी के वर्षों साधना के उपरान्त संकलित छायाचित्रों की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। इस अवसर पर श्री कौशल ने हिन्दी भवन को महादेवी कक्ष के लिए चचाई प्रताप पर देवी जी का बहुचर्चित फोटो भेंट किया। प्रस्तुति - डॉ.लता अग्रवाल

संतोष चौबे के बहुचर्चित उपन्यास 'जलतरंग' पर जिन विद्वान लेखकों ने अपने विचार व्यक्त किए उनमें एक सुपरिचित, सुख्यात नाम हिन्दी और उर्दू के पसंदीदा लेखक श्री श्याम मुन्शी का है। उन्होंने इस उपन्यास को एक अलहदा ढंग का पठनीय उपन्यास निरूपित करते हुए संगोष्ठी में कहा कि जब ये उपन्यास मुझे मिला, संतोष साहब ने मुझसे पूछा था कि आपको कैसा लगा और कि खास बात - इसमें पठनीयता है या नहीं? मैंने कहा कि ये उपन्यास मुझे अभी दो घण्टे पहले मिला है और इसको पूरा पढ़ने के बाद ही मैंने आपको टेलीफोन किया है। जब तक वो पूरा नहीं हुआ, उस किताब को मैंने अपने पास से अलग नहीं किया। ये इस बात का सबूत है कि इसमें पठनीयता कितनी है।

ये बिल्कुल सही बात है। दरअसल बात कहने का अन्दाज, बहुत महत्त्वपूर्ण होता हैं। यूँ तो संगीत और उसके साहित्य पर हम बहुत सी किताबें पढ़ते हैं। लेकिन उन तमाम चीजों को, जो संगीत की महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ हैं, उनको इकट्ठा करना, मुताला करना, जगह-जगह से किताबें हासिल करना, उसके लिए घूमना, लोगों से मिलना, तमाम मालूमात हासिल कर उनको फन के जरिये एक कहानी की शक्ल देना मामूली बात नहीं है।

ये जितनी जानकारियाँ इस किताब के अन्दर संतोष साहब ने पेश की हैं, संगीत से मुताल्लिक, यूँ तो सारी किताबों में मौजूद हैं क्योकि जाहिर है कि उन्होंने भी वहीं से हासिल किया है। लेकिन उस सबको हासिल करने के बाद कितने सहल अन्दाज में. इस ढंग से पेश करना कि वो आदमी के जेहन में चस्पां हो जाएँ, यह वाकई कठिन काम है क्योंकि संगीत बहुत मुश्किल सब्जेक्ट है। उसकी बारीकियों को समझना आसान नहीं है।

एक बहुत ही मुश्किल बात संतोष साहब ने पहले पैराग्राफ में ही कह दी है कि इलेक्ट्रॉनिक तानपुरा जैसे ही छेड़ा, षड्ज और पंचम का स्वर उसके अन्दर लगाया तो गन्धार की ध्वनि उसमें से निकलनी लगी। ये बहुत मुश्किल है। पहला तो यह कि तानपुरे को स्वर में सही मिलाना बहुत मुश्किल काम है। और अगर सही मिल जाता है, तो उसके बाद अगर षड्ज 'स' और पंचम यानी 'प' इसको एक साथ आप छेड़ेंगे तो उसमें से गन्धार यानी 'ग' की ध्वनि अपने आप पैदा होती है। इसको पहचानना हरेक के वश का नहीं है। संगीत के बहुत से विद्यार्थी भी शायद यह नहीं जानते होंगे कि षड्ज और पंचम को छेड़ने के बाद गन्धार निकलती है। संतोष साहब ने पहले पैराग्राफ में ही उसको पेश कर दिया। इस उपन्यास में इस किस्म की बहुत सी चीजें हैं।

दूसरी चीज, 'जलतरंग' मेरे ख्याल से जलतरंग का मतलब लहर से है- पानी की लहर। ये उपन्यास बिल्कुल अपने नाम के अनुरूप है। लहर जिस वक्त और जहाँ से शुरू होती है तो किनारे तक आकर ही खत्म होती है। कितने ही अवरोध आएँ, वो रूकती नहीं है। उन सबको बहाती हुई किनारे तक पहुँचती है। ये उपन्यास भी दुनिया भर की चीजें अपने साथ समेटता हुआ अपने अन्त तक पहुँचता है।

यह भी कि मुझे जो बहुत बाद में पता चला। दरअसल संतोष साहब खुद बहैसियत एक मुसीकार जलतरंग बजाया करते थे। जाहिर है कि उसी पसंद की वजह से उन्होंने अपने उपन्यास का नाम रखा, लेकिन ये नाम मेरी नजर में सार्थक है।

इस उपन्यास में इतिहास, खासतौर से संगीत का इतिहास, उसके ऊपर संतोष साहब ने काफी मेहनत की है और वो इतिहास, उसका अपना अध्ययन जो बयान किया गया है बहुत दिलचस्प ढंग से। एक अलग तरीका अख्तियार किया है- इतिहास को बताने का, जो वाक काबिले-तारीफ है।

और एक खास बात यह कि चूँकि मौसिकी की बात है, पिछले काफी अर्से से कोशिश की जाती रही है। हालांकि बहुत ही घिनौनी, बहुत ही हकीर हरकत है। संगीत को भी दो हिस्सों में विभाजित करने की कोशिश की जा रही है। यानी हिन्दू मूसीकार और मुस्लिम मूसीकार। ये क्या बेहूदा बात है? क्या कोई कला या कोई फन किसी धर्म का मोहताज है? कलाएं धर्म से बहुत पहले वुजूद में आ चुकी थीं। धर्म बहुत बाद में आया है।

पूछना चाहता हूँ। फर्ज कीजिए कि क्या एक हिन्दू कलाकार मालकौंस के पाँच स्वरों के अलावा कोई और स्वर लगायेगा या कोई मुसलमान अगर मान लीजिये, मालकौंस ही गा रहा तो क्या उस हिन्दू कलाकार से अलग स्वर लगायेगा? ये इस तरह की जो बेहूदगियाँ पैदा की जा रही हैं, शर्मनाक हैं। अब तानसेन के गाने को तो एक तरफ रख दिया गया। बात हो रही है वो हिन्दू थे, नहीं-नहीं ब्राह्मण थे, किसी ने कहा नहीं, शूद्र थे। गाने पर इसका कौन-सा असर पड़ गया? संगीतकार का धर्म संगीत है। कतई वास्ता नहीं है कि वो किस मजहब से है। आप जब आवाज सुनते हैं किसी की, तो क्या ये पूछते हैं कि आवाज किसकी है, हिन्दू की या मुसलमान की है?

इस तरह की बातें कई किताबों के अन्दर आ चुकी हैं। किसी मुसलमान को इस आधार पर रिजेक्ट किया जाता है कि वह मुसलमान है। हमारे संगीत को दूषित बताया जाता है कि जब से मुसलमान आये हमारा संगीत दूषित हो गया। क्या खराबी हुई ? क्या षड्ज बेसुरा हुआ या पंचम और गन्धार बेसुरा लगने लगा? यह कि ध्रुपद पहले था और खयाल गायिकी जो आयी, उससे संगीत भ्रष्ट हो गया। कैसे? कहना तो बहुत आसान है, लेकिन ये भी तो बताइये कि क्या भ्रष्टता आ गयी है, कौन-सी खराबी आ गयी है?

देखिए, संगीत के दो आधार हैं- एक स्वर, दूसरा ताल। अगर कोई साहब बेताले या बेसुरा गा रहे हैं, तो वो संगीत नहीं है। संगीत वो है जिसमें स्वर सही हों जो लयबद्ध हो, ताल में हो। आप किसी संगीत को बुरा नहीं कह सकते- अगर वो सुर और ताल में है। जहाँ तक शास्त्रीय की बात है, गाने का हमारा जो राग का फ्रेम है, उस फ्रेम के अन्दर रहकर सारी, जो कुछ भी उठापटक, कुश्तम-पछाड़ करना है, उस फ्रेम के अन्दर रहकर कीजिये। उसका जो डिसिप्लिन है, उसको मानिये । लेकिन बेसुरा नहीं, बेताला नहीं।

तो इस तरह की बहुत-सी ऐसी बातें जो आजकल की जा रही हैं, किताबों में भी, इस नॉविल में नहीं हैं लेकिन संतोष साहब की एक-दो बातें हैं उसके अन्दर, जिनसे मैं सहमत नहीं हूँ। लेकिन उसके लिए मैं संतोष साहब को कसूरवार नहीं ठहराता। क्योंकि वो बातें संतोष साहब ने कहीं से लेकर लिखी हैं, जो संतोष साहब का ख्याल नहीं है। संतोष साहब ने अपनी तरफ से पूरी ईमानदारी के साथ नॉविल लिखा है। मैं उन्हें बहुत-बहुत मुबारकवाद पेश करता हूँ और ये मेरी गुजारिश है कि इस तरह के वो और भी लिखें और लोगों को अपनी जानकारी और मालूमात से परिचित करायें। स

मुकेश वर्मा

मोबाइलः 94250-14166

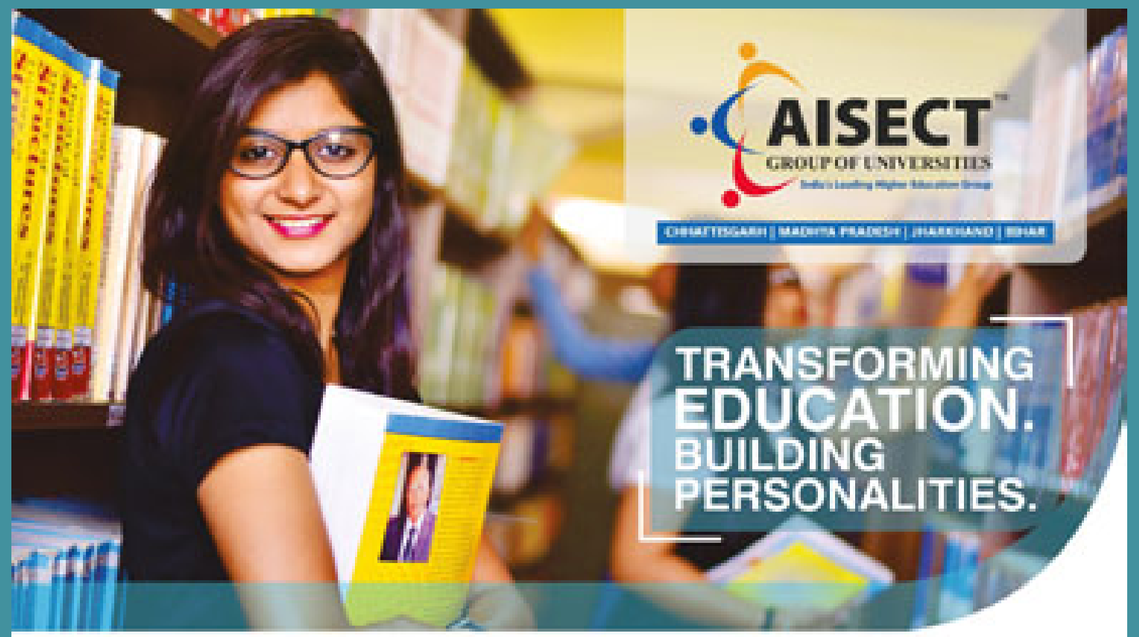

Our Universities

Rabindranath TAGORE UNIVERSITY

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY

AISECT UNIVERSITY

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY

The **AISECT Group of Universities** is India's leading higher education group whose mission is to establish world-class and affordable universities at locations that are in dire need of quality higher education. The Group's core ideology across all its higher education endeavors has been to groom its students into responsible, proficient and ethical professionals. With over three decades of unparalleled experience in skill development and job placement, the Group offers its students immense opportunities through its extensive industry linkages and expertise in entrepreneur development.

Academic Achievements

- Huge in-house funding to promote research
- 9 advanced research centres of excellence
- Registered 8 patents in 2018
- Over 800 research papers and 50 books written by faculty and scholars
- 2 In-house UGC approved Copernicus indexed research journals

Global University Linkages

- ICE WARM (Australia)
- University of IGGN (Germany)
- NCTU (Taiwan)
- Rensselaer Polytechnic Institute (USA)
- KAIST (South Korea)
- KNTU University (Ukraine)
- Tribhuvan University (Nepal)
- Benaka Biotechnologies Inc (USA)
- Moi University Eldoret (Kenya)

Awards

National Excellence Award 2018 | World Education Summit 2017 (Dubai) | Most Innovative University of Central India Award 2018 | ASSOCHAM Excellence in Education Award 2014 | Rajiv Gandhi Achievers Award 2013 For Education | Shiksha Ratna Award 2012

Rankings

Microsoft Ed Vantage (National Partnership) Microsoft | Exclusive Campus Radio Channel 98.4

AISECT Group of Universities Headquarters : RNTU Campus, Bhopal-Chiklod Road, Near Sangrawa Chouraha, Bhopal, MP, India. Ph. : 0755-2700400, 2700413, E-mail : aisect@aisect.org, Web : www.aisect.org

For more information, call : 09893350135, 09993233374, 09111342042, 09827948482, 09131636795

चित्रों में स्व. डॉ. शिव शर्मा